सम्मेलन-पत्रिका

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की मुख-पत्रिका

कार्तिक, मार्गशीर्ष २००२

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन

प्रयाग

सम्मेलन-पत्रिका : कार्तिक मार्गशीर्ष २००२

सम्पादक—श्री रामचंद्र टंडन

विषय-सूची

भाग ३३, संख्या १, २ : कार्तिक, मार्गशीर्ष २००२

सम्मेलन-पत्रिका

*राष्ट्रभाषा हिन्दी का स्वाभाविक विकास

इससे पूर्व भी गुजरात ने इस सम्मेलन को दो सभापति दिये थे। एक गुर्जर-नरेश सयाजीराव गायकवाड़ और दूसरे विश्ववन्द्य महात्मा गांधी। पर न तो मैं नरेश हूँ और न नेता। मैं तो आप सब की तरह सरस्वती के मंदिर का एक सामान्य पुजारी हूँ। मैं अपने जीवन की उन घड़ियों को सबसे अमूल्य घड़ियाँ गिनता हूँ जिनमें मैं अपनी साहित्य शक्ति को भारती के चरणों में समर्पित करता रहा हूँ।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन का यह ३३ वाँ अधिवेशन इतिहास-मशहूर नगर उदयपुर में हो रहा है। चित्तौड़ के काँगुरे काँगुरे पर वीरों के आत्म-बलिदान और सतियों के जौहर के स्मरण अंकित हैं। यहाँ के शृंग शृंग से अप्रतिरथ प्रताप की पुकार का प्रतिशब्द सुनाई पड़ता है। सदियों से श्रद्धा के पात्र केसरिया जी यहाँ विराजते हैं। मध्यकालीन भागवद्धर्म के इष्टदेव श्रीनाथ जी सकल भारत की वन्दना को आकर्षित करते हुए यहाँ बैठे हैं। शूरवीर सिसोदिया के इष्टदेव एकलिंग जी का पुण्यस्मरण भी यहाँ है। हल्दीघाटी यहाँ से हिन्द की अडिग वीरता की घोषणा करती है।

पत्र-व्यवहार

आज मेरे हृदय में खिन्नता का संचार हो रहा है। महात्मा गांधी जी आज सम्मेलन से अलग हो गये हैं। इन्दौर में वही मुझे सम्मेलन में लाये थे। उनकी प्रेरणा और सहायता से मैंने स्वर्गीय प्रेमचन्द जी के साथ 'हंस' चलाया था। नागपुर में भारतीय परिषद् की हमारी योजना का उन्होंने स्वागत किया था और उसके प्रमुख पद को सुशोभित किया था। आज जब आप लोगों ने इस सम्मेलन का अध्यक्ष पद मुझे दिया, तब मुझे प्रेरणा और शक्ति का पयपान कराने के लिए वह नहीं हैं। यह कमी मुझे आज शल्य सी वेधती है।

मैंने महात्मा जी तथा टंडन जी का पत्र-व्यवहार ध्यानपूर्वक पढ़ा। इसमें दो अटल श्रद्धावान पुरुषों की धर्मनिष्ठा झलकती है। गांधी जी मानते हैं हिन्दी और उर्दू का

*उदयपुर सम्मेलन में अध्यक्ष श्री मुन्शी के भाषण का सारांश।

समन्वय न केवल इष्ट है, वरन् शक्य भी है। टंडन जी मानते हैं यह शक्य नहीं, सम्मेलन के लिये इष्ट भी नहीं।

गाँधीजी तो आदर्श के स्रष्टा हैं। वह उसे सिद्ध करने के लिए अपनी समग्र शक्तियों को एकाग्र करने में अपने जीवन की सार्थकता समझते हैं। उन्हें हिन्द की राष्ट्रीयता का सृजन करना है। इसका पाया हिन्दूमुस्लिम एकतापर रखनेके लिए उन्होंने भगीरथ तपश्चर्याकी है। उनका मंतव्य है—"राष्ट्र भाषा वह है जिसमें नागरी और उर्दू लिपि को स्थान दिया जाता है और जो भाषा न फारसी है, न संस्कृतमयी है।" श्री टंडन जी ने जवाब में लिखा—"सम्मेलन हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानता है। उर्दू को वह हिन्दी की शैली मानता है जो विशिष्टजनों में प्रचलित हैं।" भाषा की स्वभाव-सिद्ध लिपि नागरी हो सकती है यह भी उनका मंतव्य है।

हिन्द की राष्ट्रभाषा नागरी हिन्दी (नागरी में लिखी जानेवाली हिन्दी) है। यह इस समेम्लन का मुख्य सिद्धान्त है। ३३ वर्षों से इसी श्वास और प्राण पर इसका यह जीवन निर्भर है।

गाँधी-राष्ट्र स्रष्टा हैं। हिन्दू मुसलमान दोनों दो लिपियाँ सीखें और हिन्दुस्तानी के व्यवहार से एकता सिद्ध करें, ऐसा मार्ग वह दरसा रहे हैं।

जहाँ तक मैं देख सकता हूँ ये दोनों सत्य भिन्न भिन्न हैं। इनका समन्वय सरल नहीं। परन्तु—'**स्वधर्मेनिधनं श्रेयः।**"

सम्मेलन और गाँधीजी दोनों अपना स्वधर्म पारस्परिक उदारता से अनुसरण करें, इसी में मुझे लाभ दिखाई देता है। यदि सम्मेलन का सत्य खरा होगा तो गाँधीजी उसे स्वीकार करेंगे और जो सम्मेलन समझेगा कि उनका सत्य खरा है तो उसे स्वीकार करने में सम्मेलनको संकोच नहीं होगा। गाँधीजीने सम्मेलन से त्यागपत्र दिया है पर वह उसे छोड़ नहीं गये हैं। उन्हों ने स्वयं लिखा है—"जैसे मैं कांग्रेस में से निकला तो कांग्रेस की ज्यादा सेवा करने के लिये, उसी तरह अगर मैं सम्मेलन से निकला तो भी सम्मेलन की अर्थात् हिन्दी की ज्यादा सेवा करने के लिए निकलूँगा।"

राष्टभाषा के प्रश्न का समाधान सहल नहीं। इसके लिए तो अटूट श्रद्धा उत्साह और त्याग की आवश्यकता है। क्या सम्मेलन इन शक्तियों को प्राप्त करेगा ? यदि हाँ तो फिर गाँधीजी को जीत लेने में उसे देर नहीं लगेगी।

राष्ट्रभाषा के विषय पर अपने विचारों को मैंने गतवर्ष राष्ट्रभाषा परिषद् के प्रमुख-पद से प्रकट किया था। मुझे हिन्दी-हिन्दुस्तानी के बिना दूसरी कोई राष्ट्रभाषा शक्य प्रतीत नहीं होती।

१९३४ में नागपुर में जब गाँधीजी ने भारतीय साहित्य परिषद् की स्थापना की तभी उन्होंने हिन्दी-हिन्दुस्तानी शब्द को प्रचलित किया। परन्तु यह शब्द नया नहीं है।

भूदेव मुकर्जी ने १८६२ से पहले इस शब्द का प्रयोग किया था। मैं इसे स्वभाव--सिद्ध राष्ट्रभाषा मानता हूँ। सदियों से यह मध्य प्रदेश की बोलचालकी भाषा रही है। नागरी हिन्दी उसका स्वाभाविक तथा विकसित रूप है। उर्दू इस की फ़ारसी अरबी शैली है।

मध्यदेश का महत्व

जब तक भारत में मध्यदेशका स्थान नहीं समझा जाता तब तक हिन्दीका महत्व समझा नहीं जा सकता। मध्यदेश भारत का उत्तमाङ्ग है। वहीं उसका संस्कार जन्मा, विकसा, परिपक्व हुआ। उसकी मूलभाषा तो संस्कृत। उस का आत्मा ब्रह्मावर्त ने घड़ा। सरस्वती, गंगा और जमुना ने इसके जीवन-प्रवाह को झोला। श्रीकृष्णकी मथुरा इसका प्राचीन मध्यबिंदु। जनमेजय परीक्षित का आसिद्वन्त इसकी पुरानी राजधानी। संस्कृत इसकी वाणी। पालि भी, उसीकी भाषा पर रची हुई साहित्य-भाषा। पश्चिमी हिंदी की यह मातामही।

मध्यकाल (५५० ई० से १००० ई०) में कन्नौज उसकी राजधानी। राजशेखर उसका कवि-सम्राट्। वह कहता है कि मध्यदेश के लोग तो सभी भाषाओं में निषष्णात थे।

"यो मध्ये मध्यदेशं निवसति स कविः सर्वभाषानिषण्णः

संस्कृत उनको प्रिय थी। पांचाल के कवि सर्वश्रेष्ठ थे। उनकी शैली को शोभा देनेवाली उनकी वाणी थी। उनकी शब्दरचना सुन्दर थी। उनकी कृतियाँ नियमानुसार थीं। उनका उच्चारण मधु-सा मीठा था। पांचाल के लोग आर्यावर्त के भूषण थे। उनकी स्त्रियाँ अद्भुत थीं। कवि कहता है उनकी ढव-छब देशभर के लोगों के लिए अनुकरणीय थी।

"यो मार्गः परिधानकर्मणि गिरां या सूक्तिमुद्राक्रमे
भङ्गिर्या कबरीचयेषु रचनं यद्भूषणालीषु च।
दृष्टं सुन्दरि कान्यकुब्जललना लोकैरिहान्यच्च य-
च्छिक्षन्ते सकलासु दिक्षु तरसा तत्कौतुकिन्यः स्त्रियः।"

(बाल रामायण १०, ९०)

कन्नौज ५०० वर्षों तक हिन्द की राजधानी रही। सन् ८०० से ९५० ई० तक प्रतिहार गुर्जरेश्वर सम्राटों ने इस पर राज्य किया। राजशेखर कहता है कि इस वंश के महान नरेश मिहिर भोज, महेन्द्रपाल और महीपाल को आर्यावर्त का महाराजाधिराज कहा जाता था।

नमितमुरलमौलिः पाकलो मेकलानां, रणकलितकलिङ्गः केलितट केरलेन्दोः।
अजनि जितकुलूतः कुन्तलानां कुठारः हट्टाहृतरमठश्रीः श्रीमहीपालदेवः।

तेन च रघुवंशमुक्तामणिनाऽऽर्यावर्तमहाराजाधिराजेन श्रीनिर्भयनरेन्द्रनन्दनेनाधिकृतः सभासदः सर्वान् ।"

(बाल-भारत १, ७—८)

मेवाड और गुर्जरत्रा (आज का मारवाड़) इन सम्राटों का उत्पत्ति-स्थान। वाप्पारावल का वंशज हर्षराज तो सम्राट् मिहिरभोज का सामंत। उसका पुत्र गुहिल द्वितीय सम्राट् की आज्ञा से बंगाल के राजा देव पाल के घोड़े को पकड़ लाया।

इस मध्यदेश की साहित्यिक भाषा शौरसेनी प्राकृत। इसकी देश-भाषा का साहित्यिक रूप शौरसेनी अपभ्रंश। पश्चिम मध्यदेश की देश-भाषा का नाम 'गुर्जरी'। मेवाड़ी तथा स्वाट और काश्मीर के गूजरों की बोली 'गुर्जरी' उसका अवशेष। इस समय उत्तर पूर्व मध्यदेश और मथुरा के आस पास शौरसेनी अपभ्रंश से मिलती-जुलती बोल-चाल की भाषा। इस शौरसेनी देशभाषा के नमूने का पता नहीं। पर गुर्जरी 'अउ' कारान्त भाषा—शौरसेनी 'आ'कारान्त। दोनों के बीच बोलने समझने में अधिक भेद नहीं।

अपभ्रंश

अपभ्रंश साहित्य की राष्ट्रभाषा थी। प्रान्त प्रान्त में देश-भाषा के छोटे-मोटे भेदों से इसमें भेद पड़ता गया। 'सप्तविंशत्यपभ्रंशाः'। गुजरात से आसाम तक यह प्रचलित थी। इसकी साक्षी पूर्व बंगाल के दोहों में मिलती है। छठी सदी के आसपास के 'जोइन्दु' के 'परमात्मप्रकाश' के दोहे लेता हूँ :—

जासु ण वण्णु ण गन्धु रसु जासु ण सद्दु ण फासु।
जासु ण जम्मणु मरणु ण वि णाउ णिरंजणु तासु॥
जासु ण कोहु ण मोहु मउ जासु ण माय ण माणु।
जासु ण ठाणु ण झाणु जिय सो जि णिरंजणु जाणु॥

(जिसका वर्ण न गँधरस जिसका शब्द न स्पर्श।
जिस का जन्म न मरण है नाम निरञ्जन तस्य॥
जिस को क्रोध न मोह मद जिस को माय न मान।
जिस का स्थान न ध्यान जिव उसे निरञ्जन जान।)

अभी मैं काश्मीर के गुर्जरों का लोक गीत ले आया हूँ। ये लोग सन् १००० में राजस्थान से ऊपर की तरफ गये। हजार वर्षों से उन्होने अपनी भाषा रखी है उसका एक नमूना यहाँ देता हूँ—

अय पारो पारी ज्याँदाँ पैया, गाल सुणी जा खडो के।
बंदी दुखाँ मारी गले लगसाँ में रो-के।

चेडियांनी छे माइयाँ, चड मुकेनी महिने।
खबरां नहिं आईयां, सजणी मोर के भिने॥

भावार्थ—

"भाई, रुक कर, मेरी बात तो सुनो मैं दुःख की मारी हूँ। तेरे गले पड़ रोती हूँ, पकड़कर मैं दुःखी हूँ, वे जब से गये हैं, बहुत महीने बीत गये, तब से कोई खबर नहीं, वे जिन्दे हैं या नहीं।"

दसवीं सदी के धनपाल की 'भविष्यकथा' का उदाहरण......।

"सुहियहिं हियउ णाहिं अप्पिवउ, परिमिउं थोउ थोउ जंपिवउ।
अत्थु विढप्पइ विविहपयारिहिं वंचिवि करसन्नासंचारिहिं"।
(सुहृद को हृदय नाहीं आपिये। परिमित थोड़ुं थोड़ुं बोलिये।
अर्थ बधारिये विविध प्रकारे वंचना से या कर संचार से॥)

बारहवीं सदी में तो राष्ट्रभाषा के अनेक उदाहरण मिलते हैं :—

अम्हे थोवा, रिउ बहुअ कायर एम्व भणन्ति।
मुद्धि निहाल हि गअण यलु कइ जण जोण्ह करेन्ति।
(हम थोड़े हैं रिपु बहुत, कायर ऐसा बोलें।
मूढ निहार तू गगन में कइ जन जोत करें)।

(सिद्धहेम ८·४·३१६)

बंगाल विहार की सहजियापंथ की एक पुस्तक में यह दोहा है—

"जहि मण पवण न संचरइ, रवि ससि णाह पवेश।
तहि बढ चित्त बिसाम करु, सरहे कहिअ उएस।"
"लोअह गव्व समुव्वहइ हउ परमत्थे पवीण।
कोडिह मज्झें एक्कु जइ होइ णिरञ्जण लीण॥
(जहाँ न मन अरु पवन रवि ससि का नहीं प्रवेश।
तहाँ चित्त विश्राम कर, सरहा का उपदेश॥
लोगनि को तो गर्व है, मैं परमार्थ प्रवीन।
कोटि कोटि में एक ही, होय निरंजन लीन)॥

उसी काल के एक अलभ्य ग्रंथ 'मुंजप्रबंध' के कुछ अवशेष दोहे मैंने एकत्र किये हैं—

" मुंज भणइ मुणालवइ जुव्वण गयुं न झूरि ।
जइ सक्कर सय खंड थिय सो ईस मीट्ठी चूरि ।"
बाह विछोडवि जाहि तुहुं हउं तेवंइ को दोसु ।
हिअयहिउ जइ नीसरहि जाणउं मुञ्ज सरोसु ॥

मुंज कहे मृणालवती मत रो जीवन को
जो सक्कर सौ खंड हो तो भी चूरन मीठ " ।
बाँह छुड़ांकर जाता है तू, यह किसका दोष
हृदय से जो निसरेगा तो, मैं जानूंगी तेरा रोष ॥

जब तुर्कों ने दिल्ली में सल्तनत स्थापित की तब—

(१) समस्त भारत में संस्कार, साहित्य और धर्म की एक मात्र भाषा संस्कृत थी ।

(२) नर्मदा के उत्तर में भद्र लोगों की, दक्षिण में विद्वन्मण्डली की राष्ट्रभाषा संस्कृत थी ।

(३) नर्मदा के उत्तर से मथुरा तक गुर्जरी, उत्तर में बनारस तक शौरसैनी, उसके आगे अवधी और विहारी देशभाषायें प्रचलित थीं । पूर्व बिहार में और उड़ीसा में यही भाषा बंगाली में मिश्रित होती जा रही थी ।

(४) तुर्की सल्तनत के कारण दिल्ली प्रदेश, पूर्व पंजाब और पश्चिम संयुक्तप्रान्त में फ़ारसी बोलनेवाले तुर्कों और हिंदियों के बीच व्यवहार की एक नई भाषा प्रकट हुई ।

तुर्कों के आक्रमण के समय नर्मदा के उत्तर में सबके समझने लायक, और प्रत्येक प्रान्त के विद्वानों के लिखने लायक ऐसी राष्ट्रभाषा प्रचलित थी और संस्कृत की सतत की प्रेरणा से भारत की आत्मा के दर्शन का वाहन बनी थी ।

तुर्क आये । पंजाब और दिल्ली में पड़ाव डाला और व्यावहारिक भाषा का जन्म हुआ । उस समय अपभ्रंश के मुख्य विभाग में पंजाबी पश्चिमी, पूर्वी (अवधी बाघेली और छत्तीसगढ़ी, बिहारी,) (भोजपुरिया मैथिली, मगधी, छोटा नागपुरी) राजस्थानी (मारवाड़ी, जयपुरी, मालवी, मेवाडी और गुजराती) ये सब, सब के समझने लायक स्वरूप थे । धीरे धीरे व्रजभाषा, कन्नौजी बुंदेली और मेरठ, रोहिलखंड और अंबाला की भाषा इन बोलचाल की भाषाओं से तुर्कों और हिंदियों के बीच व्यवहार की गई । दिल्ली तुर्कोंकी मुख्य राजधानी बनी । उसके आस-पास इस भाषाका व्यवहार होने लगा । पर दिल्ली की राजभाषा फारसी थी । प्रारंभिक हिन्दी तो बाजारू थी ।

सल्तनत के प्रदेश के बाहर संस्कृत और व्रजभाषाकी प्रेरणा से साहित्यिक भाषा विकसने लगी और व्यवहारकी भाषा जैसी की तैसी एक ही रही। हिंदकी एक राष्ट्रभाषा न थी, यह भ्रमपूर्ण है।

क्रमागत विकास

आपका कुछ अधिक समय लेने के लिए क्षमा माँगते हुए मैं आप लोगों के समक्ष ६ ठी से २० वीं सदी के साहित्यके उद्धरण रचना चाहता हूँ। इन उद्धरणों से यह सिद्ध हो जायगा कि भारतमें जैसे संस्कृत शिष्टोंकी राष्ट्रभाषा थी, वैसी जनसाधारणकी एक दूसरी भी राष्ट्रभाषा थी जिसे सब समझते थे और जिसके भिन्न भिन्न रूपों में वह प्रतिबिंबित होती थी।

आंध्र

'नलदमयन्तुलिद्दरु मनःप्रभवानलदह्यमानलै
सलिपिरि दीर्घवासरनिशलविलसन्नवनन्दनम्मुनन्।
नलिनदलम्मुलन्, मृदुमृणालन्, घनसारपांसुलन्
तलिरुलशैत्यलन्, सलिलवर्तनन्दनचारुचर्चलन्॥
११०० नन्नयभट्ट, पूर्व चालुक्य सम्राट के राजकवि)

राजस्थान

भाद्रवि भरिया सर पिक्खेवि सकरुण रोअइ राजलदेवि।
हा एकलडी मइ निरधार किम ऊवेषिसि करुणासार'।

('नेमिनाथचतुष्पादिका' विनयचंद्र सूरी १३ वीं शताब्दी)

दिल्ली

'वह आवे तब शादी होय, उस बिन दूजी और न कोय।
मीठे लागें वाके बोल, ऐ सखि साजनना सखि ढोल॥

(मीरखुसरो की पहेली—१४ वीं शताब्दी)

संयुक्तप्रांत

'संस्कृतहिं पंडित कहै, बहुत करै अभिमान,
भाषा जानि तरक करै, ते नर मूढ़ अजान॥
संस्किरत है कूपजल, भाषा बहता नीर
भाषा सतगुरु सहित है, सतमत गहिर गँभीर॥

(कबीर,—१५ वीं शताब्दी)

राजस्थान

मुझ सिरकमल मेच्छपय लग्गइ, तु गयणङ्गमणि भाण व उग्गइ।
जा अम्बरपुडतलि तरणि रमइ, तां कमधजक्कन्ध न धगड नमइ।
वरि वडवानल तण झाल शमइ, पूण मेच्छ न आपूं चास किमइ।
(रणमल्लछन्द, श्रीधर—१५ वीं शताब्दी)

विजयनगर

अटजनि काञ्च भूमिसुरु अम्बरचुम्बिशिर:सरज्झरि—
पटलमु डुर्मु डुम्लुंट अभङ्ग तरङ्ग मृदङ्ग नि:स्वन—।
स्फुटनानुकूल परिह्न रुकलापिजालमुन्
घटकचरत्करेणुकरचम्पितजालमु शीतशैलमुन् ॥
(१५००, अल्लसापेद्द विजयनगर के राजकवि)

गुजरात

देह-राखवा कयुं उपाय; कोइ दुष्ट मुझ सरखु राय।
श्रांत थकां मि नवि हींडाय, विषम वाट; तनु धूलि भराय;
दु:खातुर अति थाका चरण; घणूं इ वांछू नावि मरण।
आवि अंधारूं लोचंन, धूजि रिदि; न चालि मन;
पीडि पिपासा; कोलूं वारि, ढली ढली पडूं, श, तिणि ठारि
('कादम्बरी, भालण १५ वीं शताब्दी)

नाचइ गोपीवृंद, वाइ मधुर मृदंगे
मोडइ अंग सुरंग सारंगधर वाइल महूयरि हे
कुलपरी हे महुयर हे।
(नतर्षि—फागु १५ वीं शताब्दी)

राजस्थान

जिहां पूजइ शालिग्राम, जिहां जपीइ हरिनुं नाम
जिणि देसि कीजइ जाग, जिहां विप्रनइ दीजइ त्याग
जिहां तुलसी पिपल पूजइ, वेद पुराण धर्म बूझइ
जिणि देसि सहु तीरथ जाइ, स्मृतिपुराण मांहिइ गाइ
माधव म्लेच्छ आणीया तहिं
(पद्मनाभ 'कान्हडदे प्रबंध', १६ वीं शताब्दी)

मिथिला

सखि कि पुछलि अनुभव मोय
से हो पिसि अनुराग बखानिए तिल तिल नूतन होय
जन्म अवधि अमे रूप निहरला नयन मे निरपित मेल
सेहो मधुबोल श्रवनहि सूनल श्रुतिपथ परस न मोल

(विद्यापति, सं० १४३०)

गुजरात

हार ते मार मू उरवरि, सइरि शृङ्गार अंगार
जिस हरइ नवि चन्दन, चन्द नहि मनोहार

(वसन्त विलास, १५ सदी)

राजस्थान

जो तुम तोडो पिया मय नहीं तोडुं-
तेरी तोडी प्रीत कृष्ण कोन संग जोडुं-
तुम भयो तरुवर मैं भइपंछीयां
तुम भये सरवर मैं तेरी मछीयां-

(मीराबाई, सं० १५००)

बंगाल

वधू तुमि सो आमार प्रान
देहमन आरि, तोहारे संपोछि, कुल शील जाति मान
अखिलेर नाथ तुमि हे कलिया, योगीर आराध्य धन
गोप गोवालिनी हामकुनिदीना ना जानि भजने पूजन
पीरीत सागरे, शलि तनुमन, हियाछि तोमार पाय।

(चंडीदास १५ सदी)

लाट

कहितु कालिज माहा घरूं राखु हृदय मझारि
मूझिनि भूकी माधवा पगलुं रखो पधारि
आविस माधवउ आंखि माहां आणि काल देसि
पागि लागूं छाऊं पीउ तुइन मम जाइसि परदेसि
(गणपति माधव, कामंदकुन्दला दोग्धक प्रबंध.)

२

गुजरात

जो दीठे तनमन हसो नयणां धरो सनेह
ते भागस नवि मूकिये प्राण तजे जो देह.
(नयसुंदर, १६ वीं शताब्दी)

मारवाड

पंथि एक संदेशडो ढोलानो समजय
जो तुं ढोला नावीयो श्रावण पहिली तीज
सैहरा बजेसी, बीजली, मुंघ मरेसी बीज
जिण दिस तू साजन बसै तिणदिस मोहिसलाम
जबथी हम तुम बिछड़े तबथी निंद हरांम
(कुशललांभ, मारूढोला चौपाई, १६ वीं शताब्दी)

संयुक्तप्रान्त

तन चित उर मन राजा कीन्हा,हिंय सिंघल बुधि पदमिनि चीन्हा।
गुरु सूआ जो पंथ दिखावा बिनु गुरु जगतको निरगुन पावा
(पदमावत, मलिक महम्मद जायसी, १६ वीं शताब्दी)

अवध

तु दयालू दीन हौं; तु दानि हौं भिखारी
हौं प्रसिद्ध पातकी तू पाप-पुंजहारी
नाथ तु अनाथ को अनाथ कौन मोसो
मो समान आरत नहीं आरतिहर तोसो
(तुलसीदास जी १६ वीं शताब्दी)

ब्रज

हमारे प्रभु अवगुन चित ना धरो
समदरसी है नाम तिहारो चाहो तो पार करो
इक नदिया इक नार कहावत मैलोहि नीर भरो
जब दोउ मिलि एक वरन भये सुरसरि नाम परो
(सूरदास जी, १६ वीं सदी.)

दिल्ली

जाको जस है जगत में, जगत सराहै जाहि
ताके जनम सकल है, कहत अकब्बर साहि

पीथल सो मजलिस गै, तानसेन सो राग
हंसिवउ खेलवऊ बालि वऊ, गयऊ बीरबल साथ,
(शहानशाह अकबर, १७ वीं सदी)

पंजाब
हरिबिनु तेरा कौन सहाई
काकी मातु पिता सुत बनिता को काहु को भाइ
धनधरति अरु सम्पति सगरो जो मान्यो अपनाइ
तन छूटे कछू संग न चालै कहा ताहि लपटाइ
(गुरु नानक, १७ वीं सदी,)

संयुक्तप्रान्त
वेद राखे विदित पुरान राखे सारयुत
रामनाम राख्यो अति रसना सुघरमें ।
हिन्दुन की चोटी, रोटी राखी हैं सिपाहिन की
कांधे में जनेऊ राख्यो माला राखी गर में ॥
(भूषण कवि, १७ वीं शताब्दी)

पंजाब
पानी परस पुरुष पग लागो
सोवत कहा मोहि निद्रा में कबहुँ सुचित हो जागो
औरन कहँ उपदेशत हैं पशु तोहि प्रबोध न लागो
सींचत कहा परे विषयन कहँ कबहुँ विषयरस त्यागो
केवल कर्म भर्म से चिन्हउ धर्म कर्म अनुरागो ।
(जपजी, १७ वीं शताब्दी)

महाराष्ट्र
पवित्र ते कुल पवन तो देश जेथें हरिच दास जन्म घेती
कर्म धर्म त्याचे जाला नारायण त्याचेनि पावन तिन्हीं लोक
(तुकाराम, १७ वीं शताब्दी)

पंजाब
'तभी गीतमंगल फतहि के सुनाऊँ, तुमन कउ सिमर दुख सगले मिटाऊँ ।
यहि आस पूरण करहु तुम हमारी, मिटे कष्ट गऊअन छुटै खेद भारी ॥

फतह सत गुरू की सबन सिऊँ बुलाउँ, सबन कउ शबद वाहिं वाहे ढहाऊँ।
(गुरु गोविन्द सिंह १८ वीं शताब्दी)

कन्नड

अन्नदानवन्नुमाडदिद्दव होलेय। होन्नु हण गलिसि कुडिहवने होलेय
कन्निके यन्नु मारिकों बुव हो लेय। होणिगन वरणक्के सोलुवने होलेय

जो अन्नदान नहीं करता वह हीन है। जो सोना और धनका उपार्जन करता है केवल गाड़कर रखनें के लिये, वह हीन है। जो कन्या को बेचता है, वह हीन है। जो कन्या के रूप से जीता जाता है, वह हीन है।

(विजयदास १८ वीं शताब्दी)

गुजरात

मंगल मंदिर खोलो दयामय, मंगल मंदिर खोलो
जीवनवन अति बेगे बटाव्युं द्वार उभो शिशु भोलो
तिमिर गयुं ने ज्योति प्रकाश्यो शिशु ने उरमां लोलो
नाम मधुरतम रट्यो निरंतर, शिशु सह प्रेमे बोलो।
(नरसिंह राव २० वीं शताब्दी)

संयुक्तप्रान्त

सब देवन के देव प्रभु, सब जग के आधार
दृढ राखो मोहि धर्म में, बिनवौं बारंबार ॥
चंदा सूरज तुम रचे, रचे सकल संसार
दृढ राखो मोहि सत्य, बिनवौं बारंबार।
घटघट प्रभु तुम एक अज अविनाशी अविकार।
अभय दान मोहि दीजिये बिनवौं बारंबार

' मालवीय जी '

बंगाल

तुमि बंधु तुमि नाथ निसिदिन तुमि आमार।
तुमि सुख तुमि शान्ति तुमि हे अमृत पाथार।
तुमि हो आनन्द लोक जुडाओ प्राण नाशो शोक।
ताप हरण तोमार चरण, असीम शरण दीनजनार।

' रवींद्रनाथ '

गुजरात

एक ज्वाला जले तु ज नैनन मां रसज्योत निहालि नमु हुं नमु ।
एक बीज जगे नभमंडलमां रसज्योत निहालि नमुं हुं नमुं ।
(नानालाल)—

करेल—

गीतक्कुमाताावाय भूमिये दृढ़ मितु, मतिरियोरु कर्मयोगिये प्रसविक्कू ।
हिमद्विन्ध्याचल मध्यदेशत्तेक्काणू, शममे शीलिच्चेलुमितरम् सिंहत्तिने ।
गंगयारोलुकुन्न नाट्टिले शरिक्किन्न, मंगलम् कायकुम् कल्पपादपमुण्टायूस्न ।
नमस्ते गततर्ष ! नमस्ते दुराधर्ष ! नमस्ते सुमहात्मन् ! नमस्ते जगद्गुरो !
कविवर वल्लाथोल

'गीता की मातृभूमि ही ऐसे योगी को प्रसव दे सकती है । हिमगिरि और विंध्याचल के मध्यदेश में ही ऐसा शम और शीलवान सिंह दिखाई पड़ सकता है । गंगा नदी की भूमि में ही ऐसा मंगल फलदायी कल्पतरु उत्पन्न हो सकता है । नमस्ते गत तर्ष ! नमस्ते दुराधर्ष ! नमस्ते सुमहात्मन् ! नमस्ते जगद्गुरो !'

आंध्र

विपुल निशब्दा गर्भिन् वेल, विजान सीम,
मौन मुद्रांकित चिन्त गदुर तारकाद्गयि
तारापथमुद बरपि ओ मनस्वि !
सांधि चेडि योगमेदि ?

के. अन्नमराजु शर्मा

(विपुल निःशब्द मे स्वासक विजन सीम (प्रदेश) में बैठकर मौन मुद्रांकित चिन्तायुक्त तारक द्वय (नयन द्वय) को तारापथ की तरफ लगाकर, हे मित्र, किस योग की साधना कर रहे हो) ।

आसाम

शत निराशारे भरा हृदयर आशार प्रतिमा
प्रिया चारु मोर अकालत काढि निला दयामय
करिला ये मोक छलना थोर ।

(हे ईश्वर ! तूने अकाल में रात निराशा से भरे हुए मेरे हृदय की आशा प्रतिमा स्वरूप चारु को छीन कर मुझ से छल किया) ।

उत्कल

धन्यका जोरी तो तीर नीलिए परिचित्र
देखि के ॐ—मूड मानस न हुअई पवित्र।

गोपबन्धुदास

ये दृष्टान्त गत पन्द्रह सौ वर्षों के साहित्य से लिये हैं। इन के रचयिता हिन्दू हैं, मुसलमान हैं, सिख हैं। ये सब सरलता से समझे जा सकते हैं। इनकी भाषा तथा साहित्य विषयक मौलिक-तत्त्व एक ही हैं। १३ वीं सदी के पहले ये गुण अपभ्रंश में थे, उस के बाद व्रजभाषा में थे, आज हिन्दी में हैं। इस रीति से यदि हम भिन्न भिन्न भाषा और साहित्य का लघुत्तम निकालें, तो हिन्दी निकले।

कुछ सूत्र —(१) प्राचीन काल में कृष्णानदी के उत्तर में, भारत में एक ही भाषा के विविध रूप प्रयुक्त होते थे, और इन रूपों की मध्यदेश की भाषा सब से अपूर्व थी।

(२) इतिहासकाल से पहले याने ईसा से ७०० वर्ष पूर्व मध्यदेश भारतीय, राजकीय, सामाजिक और सांस्कारिक जीवन में प्रधान बल रहा है।

(३) मध्यदेश की पहली देशभाषा संस्कृत बनी और तब से मध्यप्रदेश की भाषा संस्कृत के साथ निकट संबंध रखती है।

(४) संस्कृत सन् १३०० तक समस्त भारत में राजसभा और संस्कार-केन्द्रों की भाषा रही और तत्पश्चात् दोसौ वर्षों तक दक्षिण में संस्कार की भाषा थी।

(५) सन् हजार से तेरह सौ तक कृष्णानदी के उत्तर में अपभ्रंश जनसाधारण की भाषा थी और इस में ही साहित्य रचा जाता था। उस के बाद आठारह सौ पचास तक उत्तर भारत में व्रजभाषा साहित्य की श्रेष्ठ भाषा स्वीकारी जाती थी। बिहारी, अवधी, हिन्दी, पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती, पालि और मराठी के ऐसे रूप थे, जो सरलता से समझे जा सकें।

(६) जिस भाषा की सांस्कारिक प्रेरणा सब से अधिक स्वाभाविकता का बल देती है, उसे यदि राष्ट्रभाषा कहा जाय तो संस्कृत हमारी राष्ट्रभाषा है।

(७) उन्नीस सौ इकतीस की जनगणना को ध्यान में लें तो ३४, ६८,८८००० मनुष्य हिन्द और वर्मा में हिन्दी और वर्मी भाषा बोलते थे। इन में से २५,३७,१२००० संस्कृत-कुल की भाषाओं को व्यवहार में लाते थे। ४,६७,१८००० संस्कृत-प्रधान द्राविड़ी भाषा को काम में लाते थे। इस वर्ष की गणना को लें तो एक सौ भारत-वासियों में—

(अ) ६६ प्रतिशत भारतीय भाषायें बोलते हैं।

(आ) ३५ प्रतिशत की भाषा हिन्दी-हिन्दुस्तानी है।

(इ) ३४ प्रतिशत की भाषा हिन्दी-हिन्दुतानी के साथ संबंध रखती है।

(ई) १३ प्रतिशत संस्कृत-प्रधान भाषायें बोलते हैं।

(उ) ६ प्रतिशत संस्कृत-प्रचुर भाषायें बोलते हैं।

(ऊ) ३३ प्रतिशत की भाषा देवनागरी लिपि में लिखी जाती है।

(ए) २७ प्रतिशत की भाषा देवनागरी के किसी स्वरूप में लिखी जाती है।

(ऐ) २० प्रतिशत की भाषा द्राविडी लिपि में लिखी जाती है।

(८) इन आँकड़ों की हकीकत देखते हुए जो भाषा संस्कृतप्रधान हो, वही राष्ट्र-भाषा हो सकती है।

(९) हिन्दी की प्राचीन राष्ट्रभाषाओं की अखंड पीढ़ी में हिन्दी उतर आती है। इसकी शब्द-समृद्धि ८८ प्रतिशत बोलनेवालों के लिए बहुत-कुछ परिचित है। इनके बोलने वाले तथा सरलता से बोल सकनेवाले उनहत्तर प्रतिशत हैं।

फलतः हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाना नहीं है, वह तो राष्ट्रभाषा है ही।

राष्ट्रभाषा का समान रूप

इन सब प्रसिद्ध दृष्टान्तों से क्या सिद्ध होता है? सन् १००० से लेकर अंग्रेजों के यहाँ आने तक एक राष्ट्रभाषा थी जिसके भिन्न भिन्न स्वरूप नर्मदा के उत्तर तीरपर साहित्य में प्रयुक्त होते थे और सामान्य जनता के लिए सुगम हो गये थे।

१६ वीं सदी में दक्षिण में उत्तर से आये हुए मुस्लिम कवियों ने फारसी लिपि में साहित्य-रचना शुरू की। इनका मूल तो उत्तर की हिन्दी में ही था। लेकिन इसमें ब्रज-भाषा की समृद्धि न थी। उत्तर भारत के मुसलमानों की भाषा 'शीमाली' उर्दू कहलाई। दक्षिण के मुसलमानों की भाषा 'दक्खिनी' कहलाई। इस प्रकार हिन्दीका 'हिन्दुस्तानी रूप' शुरू हुआ। कवि 'वली' सन् १७२३ के आसपास दिल्ली में आकर बस गया, तब उसने उर्दू कविता को प्रचलित किया। हिन्दी भाषा की उर्दू शैली बनती गई। उस को 'जायनी' और 'पावनी' कहा जाने लगा। यह 'हिन्दुस्तानी' भी कहलाई। उसके बाद ब्रजभाषा और हिन्दुस्तानी का मिश्रण भी शुरू हुआ। यह दिल्ली सल्तनत की भाषा गिनी जाने लगी। जिन्हें उस राज्याश्रय की जरूरत थी, वे हिन्दू भी उसे सीखने लगे।

दिल्ली प्रदेश में यह व्यवहार की भाषा 'खड़ी बोली' कहलाई। ब्रजभाषा, अवधी वगैरह 'पड़ी बोली' हो गई। पड़ी बोलियों को छोड़कर १८ वीं सदी के अन्त में मुन्शी सदासुख, लल्लू लालजी और सदलमिश्र खड़ी बोली' को समृद्ध करने लगे।

दक्षिण से हिन्दुस्तानी भाषा उत्तर में आई, उससे पहले मुसलिम कवि ब्रजभाषा अथवा हिन्दी में लिखते। यह व्यवहार की भाषा थी।

जब मुन्शी सदासुख और लल्लूलाल जी खड़ी बोली को समृद्ध करने लगे तब वे

संस्कृत की मदद लेने लगे। उर्दू केवल दक्षिण के कवियों की शैली थी। पर जिसे राष्ट्रभाषा कह सकें वह न थी उर्दू, न थी हिन्दुस्तानी। वह तो ब्रजभाषा, राजस्थानी, अवधी और बिहारी के वेश में विहरती पुरानी राष्ट्रभाषा थी। यह लोगों की भाषा थी, यह साहित्य की भाषा थी, यह संस्कार की भाषा थी। इसी के द्वारा प्रांत प्रांत में संस्कार-विनिमय होता था अमरत्वदायिनी संस्कृत इसे पीढ़ी पीढ़ी में नवजीवन देती थी।

यह ऐतिहासिक घटना भूलनी नहीं चाहिए। उर्दू मुसलमानों की सेवी हुई हिन्दी की एक शैली थी। हिन्दुस्तानी दिल्ली प्रदेश के आसपास की बाजारू बोली थी। हिन्दी तो शौरसेनी अपभ्रंश की दौहित्री, यह तो ब्रज की पुत्री। उत्तर भारत की भाषा के साथ एकाकारता इसने साधी। संस्कृत ने इसे सदा से समृद्ध बनाया। यह तो जैसे कन्नौज-काल में अपभ्रंश थी, वैसे उत्तर-भारत की राष्ट्रभाषा थी।

हिन्दी राष्ट्रभाषा को आज समस्त भारत स्वीकार कर रहा है। ऐतिहासिक कारणों से यह भाषा ही राष्ट्रभाषा होने के लिए निर्मित हुई है।

१ इसका बाजारू स्वरूप हिन्दुस्तानी समस्त भारत में समझी जा सकती है। इसी रूप में प्रान्त प्रान्त में वह जुदा रूप लेती है। इस व्यवहारू भाषा का मूल असली अपभ्रंश में है। इसकी घड़न दिल्ली-प्रदेश में होने के कारण यह हिन्दू-मुसलमानों के व्यवहार का साधन है।

२ संस्कृत, शौरसेनी प्राकृत, शौरसेनी अपभ्रंश और ब्रजभाषा में से यह क्रमशः उतरती आई है। इसलिये अपने पूर्वज के अधिकार से यह राष्ट्रभाषा है।

३ उत्तर भारत की समस्त भाषाओं की एकता जैसे सन् १८०० से पूर्व ब्रजभाषा में प्रतिबिंबित थी, वैसी ही आज इस में प्रतिबिंबित है।

४ इस में नैसर्गिक लक्षण हैं। संस्कृत की समृद्धि होने के कारण यह हिन्द की संस्कृत-प्रधान और संस्कृत-प्रचुर भाषाओं का संगम हो सकती है। द्राविड़ भाषा बोलनेवाले भी इसे सरलता से स्वीकार कर सकते हैं।

५ नागरी लिपि हिन्द में प्रतिशत ६० के लिए परिचित है। इसलिए इसे राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करने में कम से कम प्रयत्न की जरूरत पड़ती है।

मैं अपना एक साधारण सा अनुभव कहता हूँ। मेरा है, इसलिए इसे असाधारण नहीं कहा जा सकता। मुझे गुजराती और संस्कृत आती है। जब मैं नानकाना साहब में गया तब मैं पंजाबी समझ सका था। मद्रास में तेलगू और मलायालम के व्याख्यान मैं कुछ समझ सका था। बंगाली और उड़िया भी थोड़ी-बहुत समझी जा सकती है। जब अरबी शाही उर्दू सुनता हूँ, तब भी अर्थ समझ में आता है। आज का समृद्ध गुजराती जाननेवाला पुश्तू और तामिल के सिवाय हिंद की सभी भाषाओं को समझ सकता है।

हिन्दी की सरलता

दूसरी दृष्टि से हिन्दी राष्ट्रभाषा के रूप में मैं सरलता से बोल सकता हूँ। मैंने हिंदी सीखी नहीं, फिर भी सरलता से पढ़ सकता हूँ। मैं अपनी गुजराती के आधार पर हिंदी बोलता रहता हूँ। श्रीनगर से मद्रास तक मैं राजनीतिक, सामाजिक या धार्मिक विषयों पर अपनी टूटी-फूटी हिंदी बोल चुका हूँ और सबको अपने विचार समझा सका हूँ। मैंने मुसलमानों के साथ भी इस भाषा का व्यवहार किया है, और वे मेरी बात न समझ सकें, ऐसी बात नहीं।

इसका कारण क्या ? इसका कारण यह है, कि हिंदी भारतीय भाषाओं के समान तत्वों से बनी है। खासतौर पर सीखे बिना भी टूटी-फूटी हिंदी द्वारा सभी भाषाओं के बोलनेवालों के साथ बातचीत हो सकती है। इसीलिए यह राष्ट्रभाषा है।

संस्कृतमय हिंदी कृत्रिम है, हिंदुओं की बनाई हुई है, इस में साम्प्रदायिक हेतु है—यह सत्य से परे है। सन् १८२५ में गुजराती गद्य बिलकुल ग्राम्य था। इसका विकास होने लगा और स्वाभाविक रूप से इस में संस्कृत की समृद्धि आने लगी। सन् १८५६ में हिंदू और पारसी एक ही गुजराती लिखते। दोनों इसका विकास करने लगे। पारसियों के लिए संस्कृत सुगम न थी। उन्हों ने अंग्रेजी की मदद से गुजराती का विकास किया। हिंदुओं ने स्वाभाविक रूप से संस्कृत की प्रेरणा पाई। इस से गुजराती समृद्ध, सुन्दर और शक्तिशालिनी बनी है। आज अंग्रेजी मिश्रित 'पारसी गुजराती' एक बोली है।

राममोहनराय ने बंगाली गद्य की नींव डाली। इसकी अभिवृद्धि हुई। बंकिम और और रवीन्द्र ने इसे अपूर्व लालित्य से भरा—संस्कृत की समृद्धि से।

मराठी लो, कन्नड लो, तेलगू लो, मलायालम लो—अरे तामिलभी लो, संस्कृत की शक्ति बिना इन में समृद्धि और सरसता आ ही नहीं सकती। यह कोई नई बात नहीं। यदि मैं विकास प्राप्त करता हूँ तो अपनी शक्तियों के प्रताप से ही। इसी प्रकार भारतीय भाषा विकास पाये, संस्कृत की मदद से ही—दूसरा कोई मार्ग नहीं।

हिंदी संस्कृत-बिना समृद्ध नहीं हो सकती। संस्कृत की प्रेरणा के बिना यह सरसता का वाहन नहीं बन सकती। संस्कृत इस की जननी है। इस जननी से मुझे शरम नहीं आती। मैं अपनी इस माँ से प्रेरणा लेता हूँ, इसलिए मैं किसी से माफी नहीं माँगता—माँगूगा भी नहीं।

भारत एकमात्र योजनों का निर्जीव समूह नहीं। यह ढोरों के रखने का पिंजरापोल नहीं। यह तो महासमर्थ, जीवित ज्योति प्रचण्ड व्यक्ति है। इस का भू-विस्तार ही स्थूल देह है। इस के स्त्रीपुरुष इस के अंग हैं। इस का जीव इस का संस्कार है। इस के श्वास और प्राण इन के संस्कार के मूल में रहनेवाली भावना है। यह जीता है-इन भावनाओं से।

यह शक्ति चाहता है-इन भावनाओं को सिद्ध करने के लिए। यह तपश्चर्या करता है स्वातंत्र्य के लिए— इन भावनाओं का जगत् में विस्तार करने के लिए।

व्यावहारिक पहलू

अब मैं व्यवहार के प्रश्नों पर आता हूँ। हिन्दी राष्ट्रभाषा हो तो मुसलमानों का क्या? पंजाब के हिन्दुओं का क्या? उर्दू का क्या? यह प्रश्न भाषा-विज्ञानका नहीं। साहित्य के विकास का नहीं। यह तो राजनीतिक प्रश्न है। राष्ट्रीय दृष्टि से हिंदू-मुसलिम-विरोध को टालने के लिए इस प्रश्न की चर्चा होती है। आज के जमाने के सभी प्रश्न राजनीतिक भ्रमरों के चक्रमें पड़कर गँदले हो जाते हैं। अब वास्तविक दृष्टि से इस प्रश्न की छानबीन करना चाहता हूँ।

(१) आज राजकारण में हिंदू-मुसलिम एकता जल्दी होनी मुश्किल है।

(२) हिंदू मुसलमानों की एकता का क्षेत्र कम होता जाता है।

(३) हिंदुओंके लिए फारसी अरबी की समृद्धि पानी कठिन है; मुसलमानों को संस्कृत की समृद्धि मिलनी मुश्किल है।

(४) अरबीशाही उर्दू को हिन्दुओं द्वारा स्वीकार करवाने में मुसलमान अपना साम्प्रदायिक विजय मानने लगे हैं। इस प्रकार की उर्दू स्वीकार करनेमें हिन्दुओंका सम्मान भंग होना है।

(५) हिंदू संस्कृत-विहीन हिंदुस्तानी को जो राष्ट्रभाषा माने तो राष्ट्रीय साहित्य की अभिवृद्धि पीढ़ियों तक कुंठित हो जायगी। मुसलमान और पंजाब के हिन्दू जो अफारसी हिन्दी लिखें तो सुंदर साहित्य की रचना न कर सकें।

हिन्दी उर्दू का प्रश्न हिन्दू-मुसलमानों का नहीं है। इस में काश्मीर और पंजाब के उर्दू बोलनेवाले हिन्दुओं की दिक्कतों का भी सवाल है। पर आज यह प्रश्न हिंदू-मुसलमानों के विरोध का एक कारण होगया है। जब तक मुसलिम जनता का आक्रमण-विलासी विभाग हिन्दुओं और उन के संस्कार तथा उन के साहित्य के प्रति मान की वृत्ति धारण करना न सीखे, तब तक मुश्किलें कैसे हटें, यह मेरी समझ में नहीं आता। जिस दिन मुसलमान और हिन्दू स्वातंत्र्य, संस्कार और साहित्य के विषयों में पारस्परिक मान रखकर भागीदारी स्वीकारें उस दिन यह प्रश्न स्वयमेव हल हो जायगा।

पर जरूरत इस बात की है कि हिंदी-उर्दू का प्रश्न राजनीतिक क्षेत्र से हटाकर साहित्य क्षेत्र में ले जाया जाय। कांग्रेस की नीति के अनुसार हिन्दी-हिन्दुस्तानी व्यवहार की राष्ट्रभाषा रहे और राजनीति में हिन्दी और उर्दू दोनों शैलियों को बिना टीका-टिप्पणी, बिना संकोच खिलने की छूट दी जाय। ऐसा करने से दो में से एक शैली का उपयोग करना चाहिए,

या दोनों का मिश्रण करना चाहिए, यह दुबिधा स्वयमेव मिट जायगी। भारत की आज की परिस्थिति में हिन्दी और उर्दू दोनों के विकास का अवसर है। एक न एक दिन इन दोनों विकसित शैलियों का एकीकरण स्वयमेव होगा। आज होना अशक्य है। इन का समन्वय आज हो जाय और हिन्दू-मुसलमान एक भाषा स्वीकारें, यह मेरी दृष्टि में शक्य नहीं।

तुलसीदास के राम-राज्य का वर्णन लीजिए।

राम राज बैठे त्रैलोका। हरषित भये गये सब लोका।
बयरु न कर काहू सन कोई। राम—प्रताप विषमताखोई॥
बरनाश्रम निज निज धरम निरत वेदपथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग॥

'दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहिं काहुहि व्यापा।
सब नर करहिं परसपर प्रीती। चलहिं स्वधर्मनिरत स्तुतिरीती॥
चारिहु चरन धरम जग माहीं। पूरि रहा सपनेहु अघ नाहीं।
राम-भगति-रत सब नर नारी। सकल परमगति के अधिकारी॥

रामचरितमानस (उत्तरकाण्ड)

इसकी हिन्दुस्तानी कैसे हो सकती है? अगर की भी जाय तो इस का प्रतिशब्द अपनी आत्मा में कैसे सुनाई पड़ेगा? उस के लिए मर मिटने के लिए शक्ति कैसे आयगी? इस में तो शताब्दियों का हमारा जीवन बुना गया है। इस को आज एकदम बदला जाय तो जीवन का झरना खारा हो जाय।

पर महात्माजी मानते हैं कि आज हिंदी उर्दू का समन्वय शक्य है और इष्ट भी है। यदि महात्माजी अशक्य को शक्य बना सकें तो हमें उसका स्वागत करना ही होगा। मेरे जीवनकाल में यदि यह चमत्कार हो जाय तो मैं अपना जीवन धन्य समझूँ। इतनी तो मैं आशा रख सकता हूँ कि दोनों प्रवृत्तियों के लिए स्थान है। दोनों के बीच में विरोध या वैमनस्य हो जाय तो जरूर हानि होगी। महात्माजी के इस सिद्धान्त को मानने वाले और सम्मेलन परस्पर सहिष्णुता से अपने अपने धर्म का अनुसरण करें।

सम्मेलन का मार्ग तो सरल है। नागरी हिंदी का विकास, विस्तार और प्रचार यही उसका स्वधर्म है। इस स्वधर्म सिद्धि में ही उस के जीवन का साफल्य है।

रेडियो की नीति

रेडियो की नीति से हिन्दीभाषी जगत् में तीव्र विरोध उठा है। रेडियो की भाषा हिन्दुस्तानी नहीं, हिन्दी नहीं, उर्दू नहीं वह तो अरबी शाही उर्दू है। इसका तीन चौथाई भाग

तो मुझे समझ नहीं पड़ता। गुजराती, मराठी, पंजाबी, तामिल सब में खबरें आवें, पर हिन्दी में कभी न आवें, यह हठ रेडियो-अधिकारियों का है। यह हठ निर्दोष नहीं है। हिन्दी भाषा है ही नहीं, अगर है तो इसे बहुत कम लोग समझते हैं, इससे ऐसी ध्वनि निकलती है। इतने इतने प्रयत्न हुए परन्तु ये अधिकारी अभी तक डिगे नहीं। इसलिये यह नीति ससंकल्प निश्चित की गई है, ऐसा मानना ही पड़ता है।

ऐसे बालिश प्रयत्नों से हिन्दी मरनेवाली नहीं। इसका मूल तो भारत के हृदय में है। अधिकारियों की असहिष्णुता अक्षम्य है। यह नीति केवल विरोध से बदली नहीं जा सकती। इसके लिये तो आपकी स्थायी समिति को अविरत प्रयत्न करना पड़ेगा।

हिन्दी विद्यापीठ

एक महत्वपूर्ण विषय की ओर आपका ध्यान आकर्षित करने की आज्ञा चाहता हूँ। कई वर्षों से हिन्दी विद्यापीठ की योजनायें बनाई गईं पर उसे अभीतक किसी ने क्रियात्मक रूप नहीं दिया। जब तक किसी एक विद्यापीठ में उच्चतम शिक्षण का माध्यम हिन्दी नहीं बनती तब तक हिन्दी का पूर्ण विकास नहीं होगा।

जबतक हिन्दी विद्यापीठ की स्थापना नहीं होती, तब तक हिन्दी का अध्ययन गौड़ ही रहेगा। उच्च विचार और विद्या का साधन भी यह पूर्णरीति से नहीं बनेगी। हिन्दी शब्दकोश और प्रान्तीय भाषाओं का एकीकरण भी नहीं होगा।

राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति के विषय में भी आप को निर्णय करना पड़ेगा। अब तक गाँधीजी हिन्दी साहित्य सम्मेलन, राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति और दक्षिणभारत हिन्दी प्रचार सभा को एक सूत्र में बाँधते थे। गाँधीजी अलग हो गये हैं। उनकी प्रवृत्तियों में बाधा डाले बिना सम्मेलन का यह कर्त्तव्य हो गया है कि राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति की अधिक व्यापक पुनर्घटना करे।

राष्ट्रभाषा हिन्दी एकमात्र संयुक्तप्रान्त की स्वभाषा नहीं है। राजस्थान की भी है। राजस्थान के अनखुले भंडारों की समृद्धि अभी इस में लानी है। जैसे पहले गौर्जरी और शौरसेनी अपभ्रंश एक दूसरे को अधिक सुन्दर बनाते थे वैसे ही राजस्थानी और हिन्दी का समन्वय प्रथम सिद्ध करना चाहिए। हिन्दी को यदि राष्ट्रभाषा होना है तो राष्ट्र की अन्य भाषाओं की शक्ति और सौन्दर्य इस में लाना चाहिए।

हिन्दी राष्ट्रभाषा हो यह एक बात है। पर व्यवहार और राजनीति के लिए भी मुझे 'भारती' भाषा चाहिए—जिसे सभी भारतीय लिखें; जिस में सब बोलें, जिस में समस्त भारत साहित्य का सृजन करे। जैसे इंगलैण्ड की भाषा अंग्रेजी, फ्रांस, की फ्रेंच वैसे ही भारत की भाषा 'भारती' कब बने इस की मुझे झंखना होती है। हिन्दी 'भारती' रूप कब ले मैं इसकी बाट जोह रहा हूँ।

जैसे अपभ्रंश के सत्ताईस रूप थे वैसे ही शुरू में इस के भी सत्ताईस रूप हों। इस 'भारती' भाषाका विकास करने के लिए हिंदी भाषा भाषियोंको उदारता से दूसरी भाषाओं की विशिष्टतायें अपनानी पड़ेंगी। जो 'भारती' भाषा, मेरी नजरों के सामने आती है, वह हिंदी नहीं, पर प्रांत प्रांत की शक्ति से प्रफुल्ल भारत की भाषा—जिस में प्रत्येक विद्यापीठ में उच्च शिक्षा दी जाती हो; जिस में अपने विचार और व्यवहार, विज्ञान और कल्पनायें, संस्कार और सरसता मूर्तिमान् होता हो, जिस में संस्कृत प्रधान होने पर भी अरबी, फारसी, अंग्रेज़ी की दौलत हो; जिससे अपनी संस्कृत का पाठ जगत् को पढ़ा सकें। आप कहेंगे कि यह स्वप्न है–तो स्वप्नद्रष्टा रहने में ही मैंने अपना धर्म माना है। आप कहेंगे कि यह अशक्य है–तो अशक्य यदि शक्य न बनता तो मानव-प्रयत्न का अर्थ मुझे दिखाई नहीं पड़ता।

भारत जीवित, स्वतंत्र और सशक्त बने तो उसे 'भारती' द्वारा ही आत्मसिद्धि प्राप्त होगी। इस भाषा का सृजन भारतीयों का ध्येय होना चाहिए।

इस ध्येयसिद्धि का प्रथम प्रयत्न तो प्रत्येक प्रान्त में, प्रत्येक विद्यापीठ में, हिन्दी का सर्वदेशीय अध्ययन ही होना चाहिए। उच्चतम शिक्षा के लिए सामग्री तैयार करनी चाहिए, और एक संस्था ऐसी बनानी चाहिए जो अपने प्रत्येक भाषाका साहित्य हिंदी में हमेशा प्रकाशित करे। ऐसे ही उद्देश्य से मैंने 'हंस' निकाला था और 'भारतीय साहित्य परिषद' की स्थापना करने में भाग लिया था। आज इसी उद्देश्य से मैं छोटीसी 'सर्व भाषा मंदिर' की योजना बना रहा हूँ।

इस के लिए भी हिन्दी विद्यापीठ की जरूरत है। आज राजस्थान में अनेक राजा है। क्या ऐसा स्थान नहीं मिलेगा जहाँ हिन्दी विद्यापीठ की स्थापना हो सके? क्या हमारे राजाओं और धनाढ्यों की मनोदशा इतनी सकुचित हो गई है कि ऐसे विद्यापीठ की स्थापना नहीं हो सकती? यदि संम्मेलन पाँच वर्षों तक एकाग्र चित्त से प्रयत्न करे तो ऐसा विद्यापीठ अवश्य स्थापित हो सकेगा। श्रद्धा और उत्साह से क्या शक्य नहीं है?

मैं आप सब से—जिन तक मेरी आवाज पहुँच सकती है उन सब से–बिनती करता हूँ कि अन्य सब प्रवृत्तियाँ गौण हैं। भारत को 'भारती विद्यापीठ' की जरूरत है।

राजस्थान, मालवा, मध्यप्रान्त और गुजरात—कन्नौज के प्रतिहारों का 'जुभ्' अथवा गुर्जरदेश, की स्वाभाविक राष्ट्रभाषा तो हिन्दी है। पर इन की हिन्दी राजस्थानी अंशों से समृद्ध होगी। इसलिए विद्यापीठ की योजना राजस्थान अथवा मध्यप्रान्त में हो तो राष्ट्रभाषा का विकास जल्दी हो।

साहित्य भी

यह सम्मेलन केवल हिन्दीभाषा सम्मेलन नहीं है,—साहित्य सम्मेलन भी है। यह साहित्य-सेवियों का समारंभ है। आज भारत के प्रान्त प्रान्त में सुंदर साहित्य प्रकट हो रहा

है। अभी यह सब अन्य प्रान्तों के लिए सुलभ नहीं, तथापि इन सब की विकास—रेखायें एक सी हैं।

पिछले पचहत्तर वर्षों से सांस्कारिक पुनर्घटना का युग चल रहा है। भारतीय साहित्य और यूरोपीय साहित्य के परस्पर संघर्ष से हम लोगों ने एक नई प्रणाली चलाई है। उपन्यास, गद्य-नाटक, कहानी, जीवन-चरित, आत्मकथा, गीति-काव्य, पद्यनाटक, खण्डकाव्य आदि नये साहित्य के रूप में रचना शुरू की है।

बंकिम के ऐतिहासिक उपन्यास, रवींद्रनाथ और इकबाल के काव्य, नान्हालाल के उर्मिगीत, प्रेमचन्द के सामाजिक उपन्यास, गाँधीजी की आत्मकथा, भारती के राष्ट्रगीत आज के जगत् के साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। पर सरसता की हमारी साधना में अभी अनेक न्यूनतायें हैं।

भारत तो साहित्य-स्वामियों की भूमि है। जगत् की अमर और अपूर्व कृतियों में हमारा भाग सब से बड़ा है। ग्रीस ने होमर का 'ईलीयड' और एस्काईलिस का 'प्रोमिथियस'; इटली ने वर्जिल की 'ईनीयड', डान्टे की 'डिवाइन कामेडी'; इंग्लैण्ड ने शेक्सपियर का 'हैमलेट' और 'ओथेलो'; जर्मनी ने गेटें का 'फाउस्ट;' फ्रांस ने ह्यूगो का 'ल मिझराब्ल' और रशियाने टोल्स्टोयका 'एना केरेनीना' जगत् को दिया है। मध्य एशिया ने 'अरेबियन नाइट्स' दिया। अकेले भारत ने 'महाभारत' और 'रामायण,' कालिदास का 'शाकुन्तल', 'भागवत' और 'रामचरितमानस' दिया है। ये शुद्ध साहित्य के गगन चुम्बी गिरश्रृंग हैं। ऐसे गिरिश्रृंगों की भव्यता अर्वाचीन भारतीय को दुष्प्राप्य है।

क्यों? ३५ वर्षों से साहित्य—सेवा करते हुए यही प्रश्न मेरे मनमें बार बार उठता है।

इसका एक कारण तो यह है कि हमने मध्यकालीन प्रणालियों को अब तक छोड़ा नहीं। अभी तक हम भाव—प्रधान साहित्य को सुंदर मानते हैं। शब्दाडम्बर का हमारा प्रेम छूटता नहीं। साहित्य में सद्बोध न होना चाहिए, इसे हम भूल सकते नहीं।

शिष्टसाहित्य का प्राण तो केवल सरसता ही हो सकता है। इसकी पंक्ति पंक्ति से जीवित व्यक्तियाँ, वास्तविक प्रसंग और मानवता की मौलिक शक्तियाँ तथा अशक्तियां उठ खड़ी होनी चाहिए। ऐसे साहित्य की सृष्टि के लिए हमें साहित्यकार का यह अधिकार स्वीकार करना ही चाहिए कि वह स्वतंत्रता पूर्वक साहित्य में सरसता की सृष्टि कर सके। हिन्दुस्तान में यह मान्यता है कि साहित्यकार समाज का गुलाम है। यूरोप में भी ऐसा मत प्रचलित हुआ कि साहित्यकार को सामुदायिक परंपरा के साथ साहित्य का सृजन करना चाहिए। स्टालिन ने फरमान निकाला था कि पंच वर्षीय योजना (फाइव इयर प्लैन) के आधार पर ही शुद्ध साहित्य की रचना होनी चाहिए। साहित्यकार मानों मिल-मजदूर हो,

ऐसी उनकी भी सोवियट निकाली थी। अपने यहाँ भी प्रगतिशील साहित्य, ग्राम साहित्य, अधमोद्धारक साहित्य लिखना चाहिये, ऐसी घोषणा से साहित्यकारों की स्वतंत्रता छीन ली जाती है। 'मेड टू आर्डर' रचनायें प्रचार हैं—साहित्य नहीं।

मैंने १९१६ में 'कामलाऊ धर्मपत्नी' कहानी लिखी, तब गुजरात में कितने लोगों ने व्याख्यान में कहा कि इसको लिखने से अच्छा होता कि मेरा हाथ कट जाता। मेरा 'पृथ्वीवल्लभ' नामक उपन्यास जब चित्रपट पर आया तब कन्नड की एक सभा ने मुझे अपना एक प्रस्ताव भेज कर कहा था कि मैं ऐसा न लिखूँ और उन की बतलाई हुई पद्धति के अनुसार ही उपन्यास लिखूँ।

पर मैं साहित्य लिखता हूँ तो किसी दूसरे के लिए नहीं—मैं तो अपना हृदय चीर कर उस में भरे रत्नों को अपनी आत्मसिद्धि के लिए बाहर लाता हूँ। उस का पारखी हो वह उसे पसंद करे। जो न हो वह उसे फेंक दे। पर मैं अपनी कल्पनाओं, संस्कारों और भावनाओं से घड़ी हुई सरसता को ही जन्म दूँगा। मैं भाड़े पर लिये छोकरों की माँ बनना पसंद नहीं करता।

३५ वर्षों की साहित्यसेवा के बाद मैं उगते हुए साहित्यकारों के लिए सूत्र उच्चारता हूँ। साहित्यकार तो स्वतंत्र स्रष्टा है। नीति विवेचन, लोकमत, राजमत या नेता-मत की श्रृङ्खलायें इसे स्पर्श करती नहीं। उस की कल्पना के पक्षच्छेदन करने का किसी को अधिकार नहीं। उस की दृष्टि तो अमेय काल पर पड़ती है, उसे संकुचित करने का किसी को अधिकार नहीं। उस के हृदय में बसती सरसता ही पूजा की पात्र है। अपने हृदय को चीरकर देखना और दूसरों के निरीक्षण के लिए उसे मूर्तिमान् कर दिखाने में ही उसका मोक्ष है। जो साहित्यकार इस आदर्श से च्युत होता है, वह नट, विट गायककी भूमिका पर है। जो उसे श्वास और प्राण गिनता है, उसे ही साहित्य-स्वामियों की प्रेरणा का अधिकार है।

जगत् का श्रेष्ठ साहित्य-स्वामी तो भगवान् व्यास। उन्होंने नहीं लिखा अपने जमाने के लिए। नहीं लिखा किसी को खुश करने के लिए। ब्रह्मा ने क्षण जीवीसृष्टि सिरजी यह अचतुर्वदन ब्रह्मा, द्विबाहुरपरोहरिः, अभाललोचन शम्भु, ने सदा से अमर्त्य सदा से प्रेरणा देनेवाले स्त्री-पुरुषों की सृष्टि रची है।

भगवान् व्यास की प्रेरणा लेकर भारतीय साहित्यकार अपने साहित्य को गगनचुम्बी बनायें, इसी प्रार्थना के साथ मैं अपने कथनको समाप्त करता हूँ।

हिन्दी की आवश्यकतायें

साहित्य सम्मेलन का यह तैंतीसवाँ अधिवेशन राजस्थान की उस उर्वर भूमि में होने जा रहा है जहाँ के चारणों और महाकवियों ने हमारे हिन्दी साहित्य के इतिहास के सिंह-द्वार पर अपनी ओजस्विनी वाणी से प्रशस्तियाँ गाई हैं। राष्ट्रीय जीवन के लिए जिन भावनाओं को जगाने की आवश्यकता है, उन भावनाओं को वीर रस के क्रोड़ में पोषित कर यहाँ के कवियों ने जैसे हमें संकेत किया है कि साहित्य के मेरुदंड में वीर रस का ही बल होना चाहिए। जातीय जीवन में काव्य के द्वारा ही जागरण हो सकता है, स्वतंत्रता की पुकार का आदि-स्थान कविता ही है, और इसीलिए सेनापति के साथ चारण को भी रण-स्थल पर मौजूद रहना चाहिए। इसी सिद्धान्त को मानकर यहाँ के चारणों ने रक्त-बिन्दुओं के अक्षरों में अपने राष्ट्र-गौरव का इतिहास लिखा है। राजस्थान की विश्ववंद्य आत्मा ने इस काव्य के दर्पण में ही अपना प्रतिबिंब देखा है। इसकी रसवती काव्य-धारा ने न जाने कितने रक्त-स्नात वीरों की क्रांति की प्यास शान्त की है। डिंगल साहित्य की इसी प्रेरणा ने हमारे राष्ट्रीय और सांस्कृतिक इतिहास को सुरक्षित रक्खा है। इसलिए आज हम इस अधिवेशन के अवसर पर राष्ट्रीयता की जन्मभूमि राजस्थान में आना अपना सौभाग्य समझते हैं।

साहित्यकार का सत्य

आज हम साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में कहाँ हैं, इसका परिचय हम किस प्रकार दें? वर्तमान युग कष्टों की एक शृंखला है। यद्यपि युद्ध समाप्त हो गया है तथापि हम एक साधारण मानव की सुविधाओं के अधिकारी भी नहीं हैं। वस्त्र के लिए हमने अपना व्यक्तित्व दे दिया है, अन्न के लिए हमने अपनी आत्मा बेच दी है। पिछले वर्ष बंगाल ने अपने न जाने कितने लाख लालों को इसी भूख की ज्वाला में जला दिया। जहाँ आत्मा के ऊपर भूखा शरीर बैठ गया है, जहाँ क्रय-विक्रय के काँटों पर रूप और शृंगार तुल गया है, वहाँ ऐसी परिस्थितियों में मानवता कराह रही है। दुर्भाग्य की बात है कि जनता में इसकी प्रतिक्रिया नहीं हुई। यदि जनता दासत्व की शृंखला में इतनी जकड़ी हुई है कि उसे अपने मानव जीवन का अभिमान नहीं है तो कम से कम कवियों और लेखकों में तो इसकी प्रतिक्रिया होती, वे तो जनता के कष्टों से सिहर उठते किंतु हमने देखा कि हमारे लेखक और कवि अपने देश की इन परिस्थितियों से उदासीन बने रहे। उनके काल्पनिक संसार में इस कठोर सत्य का प्रवेश नहीं हो सका। आज हिन्दी में कितने उपन्यास हैं जो देश की इस भयानक परिस्थिति से प्रेरित होकर लिखे गए? कितने नाटक हैं जिनमें देश की इस अर्धमृत

और अर्धनग्न जनता के प्रति सहानुभति प्रदर्शित की गई, कितने खंड-काव्य, महाकाव्य या मुक्तककाव्य हैं, जिनमें जनता का यह करुण आर्त्तनाद गूँज सका ? ऐसी रचनाएँ हिन्दी संसार की व्यापकता को देखते हुए नहीं के बराबर हुई हैं। इससे तो यही ज्ञात होता है कि हमारा वर्तमान साहित्य जनता का साहित्य नहीं है। उसकी पंक्तियों में जनता के प्राणों का स्पंदन नहीं है। वह न तो जनता से सहानुभूति रखता है और न जनता उसे अपना रही है। ऐसी परिस्थिति में यह स्वाभाविक ही है कि हमारे साहित्य में बड़ी सजधज के साथ प्रकाशित होनेवाली रचनाएँ लोकप्रिय नहीं हो सकीं। हमारे कवियों के कितने गीत हैं जो जनता की ज़बान पर चढ़ सके हैं ? कितने नाटक हैं जो गाँव गाँव खेले गए हैं, कितने उपन्यास हैं जिनकी कथा-शैली में जनता के कंठ का द्रवित स्वर है ? स्वर्गीय श्री प्रेमचन्द को छोड़कर कोई दूसरा उपन्यासकार नहीं, जिसने तिल-तिलकर मरनेवाले होरी से भिन्न किसी दूसरे किसान को समझा हो, जिसने प्रेम और विग्रह की धूप-छाँह से बनी पतिपरायणा धनिया का प्रतिरूप उपस्थित किया हो। अपने जीवन में घटित होनेवाली, जीवन के चारों ओर अविराम गति से बहनेवाली घटनाओं के प्रति यह उपेक्षा कैसी? मुझे तो ज्ञात होता है कि अभी हमारे अधिकांश साहित्यकारों में जीवन के वस्तुवाद को कलात्मक रूप से आत्मसात् करने की क्षमता नहीं आई। हमने वास्तविक जीवन की रुक्षता में निहित सौन्दर्य नहीं पहिचाना। हम जीवन की भयानक सुन्दरता नहीं देख सके। विशिष्ट घटनाओं को उनके रूप में सजाने पर एक जीवनगत सत्य और सौन्दर्य दीख पड़ता है। जिस प्रकार ऊँट देखने में बड़ा बेडौल मालूम होता है। लंबी-लंबी टाँगें, टेढ़ी गर्दन, पीठ पर कूबड़, छोटी सी पूँछ आदि। किन्तु जब यही ऊँट आपके प्रदेश की मरुभूमि में एक सीधी रेखा में क्रमबद्ध होकर अनेक ऊँटों के साथ चलता है और आप उसे प्रातःकाल या संध्याकाल के धुँधले-से हलके प्रकाश में देखते हैं तो आपको मालूम होता है जैसे क्षितिज पर जीवन की लम्बी लहर बलखाती हुई, धीरे-धीरे आगे बढ़ रही है। ऊँट के बेडौल आकार की विषमता, समता का रूप लेकर आपके नेत्रों को सौन्दर्य का निमन्त्रण देती है। इसी प्रकार जीवन की विषमताओं को एक क्रम में अथवा उनकी गतिशीलता में सजाकर हम जीवनगत सत्य का सौन्दर्य देख लेते हैं। यह हमारे अधिकांश कलाकारों द्वारा नहीं हो सका !

यह प्रगतिशीलता

इन जीवनगत विषमताओं के चित्रण का—वास्तविक दारुण परिस्थितियों के चित्रण का—पूर्ण समर्थक होते हुए भी मैं आजकल के अधिकांश प्रगतिशील लेखकों या कवियों से सहमत नहीं हो सका। उन्होंने हमें जीवन के वास्तविक और सच्चे चित्र देने की चेष्टा की है किंतु यह सत्य उन्होंने हमें तब दिया है जब उन्होंने साहित्य के समस्त सौन्दर्य को नष्ट कर दिया है। चिरन्तन साहित्य की कुछ मान्यताएँ हैं। साहित्य केवल आज की

संपत्ति नहीं है, वह परंपरागत संपत्ति है, लोक-कल्याण, सुरुचि और लालित्य उसकी नैसर्गिक विशेषताएँ हैं। बिना सुरुचि और लालित्य के लिखा गया साहित्य किसी अख़बार का संवाद-संग्रह मात्र माना जा सकता है। अतः जब हम आगामी परंपरा के जीवन और कल्याण की भावना से ही साहित्य का निर्माण करते हैं तो हमें सुरुचि और मानव-मन को आकर्षित करनेवाले सौन्दर्य को ध्यान में तो रखना ही पड़ेगा।

प्रगतिशील लेखकों की रचनाओं में इन दोनों ही का अभाव है। वे तो जैसे साहित्य के समस्त नियमों को नष्ट-भ्रष्ट करने में अपने उद्देश्य की पूर्ति देखते हैं। रूढ़ियाँ तोड़ना एक बात है और मान्यताएँ नष्ट करना बिलकुल दूसरी बात। हमारे इन लेखकों ने इन दोनों में कोई अन्तर नहीं रक्खा। एक सिरे से उन्होंने 'एटम बम' गिरा दिये हैं और उनके चारों ओर साहित्य की शोभा और श्री का संहार ही संहार दीख पड़ता है। मैं अपने इन मित्रों से कहूँगा कि वे एक क्षण रुकें। साहित्य-सृजन एक उत्तरदायित्व पूर्ण कर्त्तव्य है। वे सोचें और समझें कि वे क्या करने जा रहे हैं। पिछली शताब्दियों से आने वाले साहित्य में दर्जनों क्रांतियाँ हुईं किन्तु हमारे साहित्य की मान्यताएँ नष्ट नहीं हो सकीं। आज सोशलिज़्म के उधार लिए हुए विचारों के प्रदर्शन में वे साहित्य में केवल आग की लपट ही देखना चाहते हैं ? उसकी सारी मान्यताओं में उच्छृंखलता का नग्न ताण्डव ही देखना चाहते हैं ? मुझे भय है कि जिस तरह आज कम्यूनिस्ट दल कांग्रेस से अलग हो रहा है, उसी प्रकार ये प्रगतिशील लेखक कहीं हिंदी साहित्य से निर्वासित न कर दिए जावें।

मेरा विचार तो यह है कि जनता के जागरण की वाणी लेकर हमारे कलाकार पूर्ण प्रगतिशील बने किन्तु इस प्रगतिशीलता में साहित्यिक सुरुचि का ध्यान रहे। उनकी रचनाओं में भले ही रस-संचार और अलंकार-प्रियता न रहे किन्तु फिर भी साहित्य के स्वस्थ सौन्दर्य का ध्यान तो रहे। उनका साहित्य जनता से दूर न जाने पावे। साहित्य के लिए जनता से दूर जाने का अर्थ मृत्यु है।

भाषा का प्रश्न

साहित्य की समस्याओं के साथ भाषा का प्रश्न भी जटिल रूप धारण कर रहा है। हिंदी, हिंदुस्तानी और उर्दू के रूपों को लेकर देश में जो अलग अलग दल बन गए हैं, उनसे आप अपरिचित नहीं हैं। विश्ववंद्य महात्मा गांधी ने हिंदी साहित्य सम्मेलन से अपना संपर्क हटा लिया है, यह बड़ी क्लेशकर बात है किंतु संतोष केवल उनकी इस बात पर है कि वे सम्मेलन से बाहर रहकर भी सम्मेलन की और अधिक सहायता कर सकेंगे। हिन्दी और हिन्दुस्तानी का नाम लेकर जो दल अपने अपने तर्क उपस्थित कर रहे हैं, उनमें एक बात तो समानरूप से वर्तमान है कि वे सभी देश की राष्ट्र-भाषा को अधिक से अधिक व्यापक और सुविधाजनक रूप देना चाहते हैं। मैं भी राष्ट्रभाषा की आवश्यकताओं

को ध्यान में रखकर इससे सहमत हूँ किन्तु किसी भी भाषा से द्वेष न रखते हुए मैं यह बात स्पष्ट रूप से घोषित करना चाहता हूँ कि राष्ट्रभाषा वही होनी चाहिए जिससे राष्ट्र के अन्तर्गत निवास करनेवाले विविध प्रांतीय भाषाओं के लोग भी अपनी भाषा-विषयक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें। आधुनिक भारतीय भाषाओं में हिन्दी, बंगाली, गुजराती मराठी, पंजाबी, उड़िया और सिन्धी तथा द्रविड़ भाषाओं में तामिल, तेलगू, कन्नड और मलयालम प्रमुख हैं। हमें राष्ट्र-भाषा के निर्माण में इन सभी भाषाओं का ध्यान रखना होगा। भारतीय भाषायें तो संस्कृत की परंपरा में हैं ही, द्रविड़ भाषाओं पर भी संस्कृत का प्रभाव है। अतः हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के रूप में संस्कृत के ऐसे शब्द-समूहों से अपना संबंध बनाए रखना होगा जो इन विविध भाषाओं में समझे जाते हैं और व्यवहार में लाये जाते हैं। अतः राष्ट्रभाषा के मूलाधार में संस्कृत से निकली हुई भाषा-विषयक परम्परा ही होनी चाहिए। रही बात अरबी और फ़ारसी के शब्दों की जिनका प्रवेश कराना आजकल राष्ट्र भाषा में अनिवार्य समझा जाता है। अरबी, फ़ारसी या उर्दू (जो हिन्दी ही की एक शैली मात्र हैं) किसी प्रकार भी अवहेलना की दृष्टि से नहीं देखी जा सकतीं। मुसलमानों के संपर्क से ही इस देश में अरबी और फ़ारसी के शब्दों को लेकर हिन्दी के क्रोड़ में उर्दू का जन्म हुआ और फल-स्वरूप हमारी भाषा में भी अरबी और फ़ारसी के सैकड़ों शब्दों का प्रवेश हुआ। ये शब्द आज भी हमारी भाषा में मिलकर हमारे हो गए हैं। इन्हें भाषा से अलग करना भाषा की हानि ही करना है। किंतु जब हिंदुस्तानी के रूप में लगभग उर्दू ही राष्ट्र-भाषा के लिए प्रस्तुत की जाती है तो विषय चिन्त्य हो जाता है। उर्दू, भाषा के रूप में कितनी व्यापक हो पाई है, इस संबंध में दो मत नहीं हो सकते। व्यावहारिकता में केवल उत्तरी भारत में वह विशुद्ध रूप से बोली और समझी जाती है, वह भी नगरों में, गाँवों में नहीं। नगरों में भी शिक्षित जनता के द्वारा—प्रमुखतः मुसलमानों के द्वारा। नगर के अशिक्षित मुसलमान भी स्थान-विशेष की बोली बोलते हैं। गाँवों में तो हिन्दुओं और मुसलमानों में भाषा-विषयक कोई भेद ही नहीं है। ऐसी स्थिति में उत्तरी भारत के कुछ नगरों के सांप्रदायिक दृष्टिकोण रखनेवाले कुछ व्यक्तियों के आग्रह से महाद्वीप के समान इस विशाल देश की राष्ट्रभाषा प्रमुखतः अरबी और फ़ारसी शब्दों से लदी हो जो अधिकांश राष्ट्र के लिए दुर्बोध हो, न्याय के विपरीत बात होगी। यह बात दूसरी है कि राजनीतिक आवश्यकताओं ने उर्दू स्वरूपिणी हिन्दुस्तानी को बल दे दिया हो और देवनागरी लिपि के साथ ही साथ फ़ारसी लिपि का सीखना भी अनिवार्य बना दिया हो, किंतु देश की भाषा-विषयक परिस्थिति इस राजनीतिक आवश्यकता से मेल नहीं खाती। हाँ, हिन्दी को अधिक से अधिक सरल, सुबोध और स्वाभाविक बनाने के लिए केवल संस्कृत के तत्सम शब्द ही काम नहीं दे सकेंगे, हमें तद्भव,

देशज और सरल अरबी, फ़ारसी तथा अंग्रेज़ी शब्दों को भी स्वीकार करना होगा। विदेशी शब्दों को हम उसी स्थिति में स्वीकार करेंगे जब वे जनता के लिए सुबोध और सरल एवं भाषा के लिए अभिव्यंजनात्मक शक्ति के पूरक सिद्ध होंगे। अपरिचित, दुरूह, और बेमेल शब्दों को राष्ट्रभाषा में स्थान देना उसकी सुबोधता और प्रांतीय भाषाओं की स्वीकृति में बाधक सिद्ध होगा। मेरा प्रस्ताव तो यह है कि भारत में बोली जाने वाली प्रत्येक प्रांतीय भाषा अपने व्यवहार में आने वाले अरबी, फ़ारसी और अंगरेज़ी शब्दों के अलग-अलग कोष तैयार करे। उन सब कोषों का मिलान करने से यह ज्ञात हो जाएगा कि कितने विदेशी शब्द समानरूप से देश की सभी भाषाओं में समझे जाते हैं। वे सब विदेशी शब्द तो राष्ट्रभाषा हिंदी में रहेंगे ही। साथ ही साथ ऐसे शब्द जो किसी भाषा में विशेष रूप से प्रयुक्त होते हैं, विचार-विनिमय के बाद स्वीकृत किए जावेंगे। इस शैली से राष्ट्रभाषा का रूप सभी के लिए सुलभ और न्याय-संगत होगा। यों मैं भाषा के स्वाभाविक विकास में विश्वास रखता हूँ किंतु जब राजनीतिक और अन्य कारणों से कोई भाषा हम पर लादी जा सकती है, तो हम राष्ट्रभाषा के निर्माण में भी तर्क और युक्ति से काम क्यों नहीं ले सकते? जहाँ तक लिपि से संबंध है, मैं निश्चित रूप से कहता हूँ कि हिंदी या हिंदुस्तानी की एक ही लिपि होनी चाहिए—और वह लिपि देवनागरी है जो संसार की सब से शुद्ध और सब से अधिक वैज्ञानिक लिपि है। यों अन्य लिपियों का सीखना बुरा नहीं है किन्तु यह वैकल्पिक हो, अनिवार्य न हो।

रेडियो की धांधली

आल इंडिया रेडियो हिन्दुस्तानी के नाम से जिस उर्दू का प्रचार करना चाहता है, वह भाषा न तो हमारी संस्कृति की है, न हमारे संस्कारों की। आल इंडिया रेडियो अपनी नीति में दृढ़ और अटल है। साहित्य सम्मेलन ने अपने जयपुर अधिवेशन में इस भाषा-नीति का घोर विरोध किया और उसे सक्रिय आन्दोलन का रूप दिया किन्तु रेडियो-विभाग ने इसकी पूर्ण उपेक्षा की। हिन्दी के लेखकों और कवियों ने उसका पूर्ण बहिष्कार किया किन्तु रेडियो-विभाग ने इसकी ज़रा भी चिन्ता नहीं की। यदि की होती तो आज रेडियो की भाषा का रूप ही दूसरा होता। अपनी ख़ालिस उर्दू के बीच में 'देश', 'समाज', 'पूरब' और 'पच्छिम' जैसे दो चार शब्दों को स्थान देकर वे अपनी भाषा को हिन्दुस्तानी कहते हुए लोगों को भुलावे में नहीं डाल सकते। राष्ट्रभाषा के संबंध में मैं अपना मत स्पष्ट कर ही चुका हूँ। ऐसी ही राष्ट्रभाषा में रेडियो से संवाद वितरित हों। रेडियो ने सम्मेलन के आन्दोलन को जिस उपेक्षा-भाव से देखा है, वह हिन्दी भाषा भाषियों के लिए असह्य है। मालूम होता है कि इस उपेक्षा की जड़ बहुत गहरी है, और इस जड़ का पोषण भी किसी

अदृश्य स्रोत से हो रहा है। हमें अपने आन्दोलन को अधिक दूर तक पहुँचाना होगा और तब हमारी समस्या के हल की सूरत नज़र आएगी।

भाषा का सुधार

यह एक आश्चर्य की बात है कि जहाँ भाषा के निर्माण के लिए लोग प्रयत्नशील हैं, वहाँ भाषा के सुधार के लिए लोग प्रयत्नशील नहीं हैं। लेखकों, कवियों और पत्रकारों द्वारा भाषा की सुचारुता पर जो आघात हो रहे हैं, उनकी ओर हमने ध्यान ही नहीं दिया है। इस संबंध में श्री रामचन्द्र वर्मा ने 'अच्छी हिंदी' पुस्तक लिखकर हिंदी लेखकों और विद्यार्थियों का विशेष उपकार किया है। मैं तो चाहता हूँ कि उस प्रकार की पुस्तकें अधिक से अधिक संख्या में प्रकाशित हों और वे अनिवार्य रूप से हिन्दी भाषा भाषियों के हाथ में रक्खी जावें। इस सुधार को एक आन्दोलन का रूप देना उचित होगा। मैं तो आज देखता हूँ कि भाषा के बोलने के संबंध में अधिक से अधिक लापरवाही बरती जाती है। मेरे विश्व-विद्यालय ही में किन्हीं दो विद्यार्थियों की बातचीत सुन लीजिए। उनके सारे वार्तालाप में संभवतः एक भी वाक्य ऐसा न होगा जिसे आप अच्छी हिंदी कह सकें। उदाहरण के लिए मेरे एक विद्यार्थी ने एक दिन मुझ से कहा—डाक्टर साहब, आप उस मीटिंग में प्रेज़ेंट नहीं थे। बड़ा इंटरेस्टिंग डिसकशन हुआ। मैं स्पीकर के प्वाइंट अव् व्यू से एग्री नहीं कर सका और मैंने ऐसी फ़ोर्सफ़ुल स्पीच डेलीवर की कि आडिएंस वाज़ मून्हड कम्प्लीटली एंड दि हाउस वाज़ इन माइ फ़ेवर। मैंने उसे उसी समय रोक कर कहा कि मैं नहीं समझा। ज़रा हिन्दी में कहिए। वह लज्जित हुआ और 'एक्सक्यूज़ मी' कह कर चला गया। उसने 'क्षमा कीजिए' नहीं कहा। यह हिन्दी है जो आज-कल हमारे विद्यार्थी बोलते हैं। इन्हें अपनी भाषा के लिए कोई गौरव नहीं है, जैसा मुँह में आता है, वैसा ही बोलते चले जाते हैं। शायद उन्होंने एक क्षण कभी यह नहीं सोचा कि भाषा के प्रति भी उनका कोई कर्त्तव्य है। पहले किसी ज़माने में अपनी भाषा में अंग्रेज़ी शब्दों का मिश्रण शिक्षित और सुसंस्कृत कहलाने का माप-दंड समझा जाता था किन्तु अब वह बात नहीं रही। अबतो पश्चिमी वातावरण ने अंग्रेज़ी की बाहें बहुत लंबी कर दी हैं। उस दिन बाज़ार में खड़ा एक ग्रामीण कह रहा था—"ई ससुर कंटरौल का आटा तो सिमन्ट अस दिखात बा"। यह बात छोड़िए, किन्तु यदि अंगरेज़ी की संज्ञाओं, उसके विशेषणों और क्रिया विशेषणों के मिश्रण की यही प्रवृत्ति भाषा में रही तो आज से सौ वर्ष बाद हिन्दी से संघर्ष लेने के लिए आज की हिन्दुस्तानी की भाँति कोई इंग्लिस्तानी भाषा खड़ी होगी और वही राष्ट्रभाषा होने के लिए हिन्दी से युद्ध करेगी। भाषा-सुधार के संबंध में हमारा जो गम्भीर उत्तरदायित्व है, उसे अभी हम आँख खोल कर नहीं देख सकते, यह हमारा नैतिक पतन है।

सप्तवर्षीय योजना

अपने साहित्य-निर्माण के सम्बन्ध में मुझे कहना तो बहुत है लेकिन समय के अभाव में मैं कुछ बातें संक्षेप में ही कहूँगा। साहित्य की समुन्नति के लिए हमें एक सप्त वर्षीय योजना बनानी चाहिए। यह योजना या तो साहित्य सम्मेलन की ओर से हो, या नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से। जो संस्थाएँ इस कार्य में योग दे सकती हैं, या देना चाहती हैं वे अपने को योजना चलाने वाली संस्था से सम्बद्ध करा लें। इस योजना में हमें साहित्य को समृद्ध और अग्रशील बनाने के लिए समस्त साधन जुटाने चाहिए। इस कार्य की योजना में कम से कम पाँच लाख की निधि एकत्र की जाए और प्रत्येक वर्ष में उठाये जाने वाले विषयों का वर्गीकरण कर दिया जाए। फिर उस विषय के विशेषज्ञों की समितियों का संगठन हो और विशेषज्ञों को उत्साहवर्धक पारिश्रमिक देकर एक निश्चित अवधि के भीतर आयोजित कार्य की संपूर्ण सामग्री संकलित कर ली जाए। तत्पश्चात् उसका एक विशिष्ट समिति द्वारा संपादन और प्रकाशन हो और इस तरह उस वर्ष का कार्यक्रम समाप्त कर दिया जाए। यदि पाँच वर्षों में यह कार्य समाप्त न हो तो अवधि बढ़ाई जा सकती है। अथवा इस योजना को दो भागों में विभाजित कर दो या तीन संस्थाएँ एक साथ ही अपना कार्य चला सकती हैं। ये संस्थाएं चाहे जिस तरह विषय का वर्गीकरण करें किंतु हमारे साहित्य की जो प्रमुख आवश्यकताएँ हैं उनकी ओर मैं आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ :—

१—हमारे साहित्य में प्राचीन कवियों और लेखकों की रचनाओं के सुसंपादित संस्करणों की बहुत कमी है। जब तक ये संस्करण प्रामाणिक रूप से संपादित नहीं किए जावेंगे तब तक हम अपने प्रसिद्ध कवियों या लेखकों की रचनाओं के मूल्यांकन में कहाँ तक आश्वस्त हो सकते हैं ? हमारे देश भर में प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथ बिखरे पड़े हैं। उन्हें एकत्रित करने के लिए कोई भी अखिल भारतवर्षीय प्रयत्न नहीं हुआ।

२—दूसरी आवश्यकता यह है कि हमें देश के समस्त प्रांतीय साहित्य से अपना संपर्क स्थापित करना चाहिए। यह संपर्क दो प्रकार से स्थापित हो सकता है। एक तो इस तरह कि हम अपने विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में इन प्रांतीय भाषाओं को वैकल्पिक विषय बनावें (जैसा सम्मेलन के हिन्दी-विश्वविद्याय के 'रत्न' का पाठ्यक्रम है) और अपनी आगे आने वाली परंपरा के हृदय में अन्य प्रांतीय साहित्यों के प्रति सहानुभूति का बीजारोपण करें और दूसरा प्रकार यह हो सकता है कि हम प्रत्येक प्रांतीय साहित्य के उत्कृष्ट ग्रंथों का हिन्दी में अनुवाद करना प्रारंभ कर दें।

३—तीसरी आवश्यकता वैज्ञानिक साहित्य के प्रणयन की है।

४—चौथी आवश्यकता अपने समालोचना-शास्त्र को व्यवस्थित करने की है। आज

जिन दशाओं में और जिन प्रभावों में साहित्य सृजन हो रहा है उनका मूल्यांकन संस्कृत के प्राचीन समालोचना-शास्त्र से नहीं किया जा सकता। साथ ही हमारे भारतीय जीवन के क्रोड में लिखा हुआ और हमारे संस्कारों से संपन्न साहित्य केवल पश्चिमी भाषाओं के प्रभावों के कारण ही, एक मात्र पश्चिम के मापदंड से नहीं मापा जा सकता। इसलिए प्राचीन और आधुनिक समालोचना-शास्त्र के समन्वय से हमें अपने साहित्य के लिए एक नवीन समालोचना-शास्त्र का निर्माण करना चाहिए।

५—पाँचवीं आवश्यकता हमारे ग्राम-गीतों के संकलन की है। यद्यपि यह योजना बहुत वर्षों से चल रही है किन्तु इस कार्य को व्यवस्थित रूप से चलाने का प्रयत्न अभी तक नहीं हुआ। हमारा देश कृषि प्रधान होने के कारण ग्रामों से परिपूर्ण है। उन्हीं की उन्नति और विकास पर हमारे राष्ट्र का विकास अवलम्बित है। ग्रामों की उन्नति उनकी भाषा और संस्कृति को ठीक ढंगसे समझने और उनकी व्यवस्था के संम्बध में सक्रिय होने में है। हमारे ग्राम ही हमारी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति के केन्द्र हैं। उनके पास हमारे आदर्शों, व्यवहारों और मनोविज्ञान का ऐसा कोष है जिसकी अवहेलना कर हम अपना व्यक्तित्व खो देंगे। जीवन के सरल और गहरे मनोविज्ञान की पवित्र गंगा हमारे ग्रामगीतों में तरंगित हो रही है। वह पश्चिमी शिक्षा के वस्तुवाद की ऊष्मा से प्रतिदिन सूख रही है।

६—हमारी छठी आवश्यकता भाषा और लिपि सुधार की है। भाषा की सरलता सुबोधता और भाव व्यंजक शक्ति को हमें अधिक व्यवस्थित और वैज्ञानिक बनाना है। इसी प्रकार लिपि में हमें ऐसे संशोधन मान लेना चाहिए जो अक्षर-विज्ञान के सिद्धान्तों के विरोध में न होते हुए आधुनिक मुद्रण-कला के गुणों को अपना सकें।

७—सातवीं आवश्यकता अपने प्रकाशन कार्य को संयोजित और नियंत्रित करना है। आजकल हमारा साहित्य अपनी आवश्यकताओं को न देखते हुए मनमाने ढंग पर प्रकाशित हो रहा है। कहानियों की बाढ़ ने हमें आक्रांत कर दिया है। केवल कहानी के ही अनेक मासिक पत्र हिन्दी में निकल रहे हैं। यदि इन मासिक पत्रों की कहानियाँ उच्च कोटि की होतीं तो हमें संतोष हो सकता है, किन्तु ये कहानियाँ वासना के चित्रों को अत्यन्त नग्न रूप से उपस्थित करती हैं जिनसे हमारी रुचि विकृत हो सकती है।

इनके अतिरिक्त हमारी अनेक आवश्यकताएँ हैं। हिन्दी के केन्द्र में रेडियो स्टेशन की स्थापना, कवि सम्मेलन का नियंत्रण और उसका उपयोग, हिन्दी में खोज कार्य की गति-शीलता और अपने साहित्यकारों के अभिनन्दन आदि अनेक कार्य हैं जिन्हें हम संगठित रूप से चला सकते हैं। हमें प्रयत्न करना चाहिए कि हम अपने रंग-मंच का विकास भी कर सकें।

साहित्य के लिए यह दुर्भाग्य की बात है कि आचार्य श्यामसुन्दरदास, डा० पीतांबरदत्त बडथ्वाल, श्री रायराजेश्वर बली और श्री शालग्राम वर्मा जैसे साहित्य स्रष्टा और हितचिंतक उसके बीच में नहीं रहे। इन्होंने अपने जीवन में साहित्य की अनेक प्रकार से सेवाएँ कीं। हम उनकी आत्मा के लिए ईश्वर से शांति की कामना करते हैं। हमें संतोष है कि यह वर्ष महाकवि मैथिलीशरण गुप्त की स्वर्ण-जयंती का वर्ष है। हम अपने देश के इस महाकवि के चरणों में अपनी श्रद्धा की पुष्पांजलि समर्पित करते हुए उसके दीर्घ जीवन के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं।[1]

भारतीय जीवन दर्शन[2]

पृष्ठ भूमि

दर्शन किसी भी जाति तथा राष्ट्र की सभ्यता का मापक है। जिस जाति के अध्यात्म-विषयक चिन्तन तथा समीक्षण जितने ही अधिक तथा गहरे होते हैं, वह जाति संस्कृति तथा सभ्यता के इतिहास में उतना ही अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। सभ्यता का प्रथम प्रभात किस देश में सबसे पहिले हुआ ? इस प्रश्न की मीमांसा करते समय पश्चिमी विद्वान् मिस्र देश का नाम बड़े आदर तथा गौरव के साथ लेते हैं परन्तु मिस्र के दार्शनिक तथा साहित्यिक चिन्तनों पर विचार करने से हमें मौनावलम्बन ही करना पड़ता है। भौतिकवाद का अनुरागी राष्ट्र अध्यात्म-चिन्तन का प्रेमी कभी नहीं हो सकता। मिस्र की सभ्यता भौतिकता में सनी थी, भौतिक सुख की प्राप्ति ही उस देश के राजाओं का परम लक्ष्य थी। फलतः रम्य तथा सुन्दर प्रासादों का रचयिता शिल्पी ही मिस्री सभ्यता में परम सम्मान का भाजन था; हृदय की कली को मनोरम कविता लिखकर खिलानेवाले कवि की न वहाँ पूछ थी और न उन्नत तत्त्वज्ञान के अभ्यासी दार्शनिक की वहाँ प्रतिष्ठा थी। फलतः अध्यात्म-चिन्तन के अभाव में मिस्र देश की सभ्यता को हम सम्मान की दृष्टि से नहीं देख सकते। 'कवि' को आदर देनेवाली जाति ही सभ्यता की कसौटी पर खरी उतरती है। पश्चिमी जगत् में प्राचीन यूनानी तथा पूर्वी संसार में चीनी तथा भारतीय जाति ही 'कवि' के गौरव को समझती है और उसे सम्मान प्रदान करने में सदा अग्रसर रही है। इसीलिए इन जातियों का प्रभाव सभ्यता के प्रसार में बहुत ही अधिक रहा है। हमारी दृढ़ धारणा है (और इसके लिए हमारे पास प्रचुर प्रमाण भी हैं) कि सभ्यता का

---

[1] सम्मेलन के उदयपुर अधिवेशन के साहित्य-परिषद के सभापति से दिये भाषण का सारांश—

[2] सम्मेलन के गत उदयपूर अधिवेशन में दर्शन परिषद के सभापति के अभिभाषण का सारांश—

उदय सप्तसिन्धव प्रदेश में ही सबसे पहिले हुआ। हमारा पूरा विश्वास है कि भारतीय कवि की यह सूक्ति—

प्रथम प्रभात उदय तव गगने।
प्रथम सामरव तव तपोवने॥

केवल प्रतिभा का विलास नहीं है, अपितु इतिहास की कसौटी पर भी खरी उतरती है। 'कवि' का जितना सम्मान हमारी पुण्यमयी भारतभूमि में रहा है, उतना अन्यत्र नहीं।

'कवि' का आदर

'कवि' का मूल व्यापक अर्थ है इन्द्रियों से अगोचर तत्त्वों का साक्षात्कार करनेवाला व्यक्ति। कवयः क्रान्तदर्शिनः। और 'ऋषि' शब्द का भी यही महत्त्वपूर्ण अर्थ है। अध्यात्मशास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान् का प्राचीन अभिधान 'कवि' ही है और इसी अर्थ में इस शब्द का प्रयोग हम गीता तथा उपनिषदों में ही नहीं पाते, प्रत्युत संहिताओं में भी यह महनीय शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है। कठोपनिषद् के अनुसार कवि लोग सूक्ष्म बुद्धि से ग्राह्य ब्रह्म की ओर जानेवाले मार्ग को छूरे की धार के समान तेज तथा दुर्गम बतलाते हैं:—

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया।
दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति॥ (३।१४)

प्रश्न (५।७), मुण्डक (१।२।१), महानारायण (१।३), मैत्री (२।७)–में सर्वत्र कवि का प्रयोग मूल अर्थ में मिलता है। श्वेताश्वतर ने जगत् के मूल कारण के विषय में कवियों के विभिन्न मतों का निर्देश किया है (स्वभावमेके कवयो वदन्ति—६।१) गीता 'कवयो प्यत्र मोहिताः' (४।१६) तथा 'संन्यासं कवयो विदुः' (१८।२)—आदि स्थलों में इसी औपनिषद अर्थ का अनुसरण करती है। ऋक् संहिता में इस शब्द का प्रयोग बहुलता से मिलता है—समानमेकं कवयश्चिदाहुरयं ह तुभ्यं दरुणो हृणीते (७।८६।३)। ध्यान देने की बात है कि 'कवि' शब्द का प्रयोग स्वयं उस साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्म के लिये भी अनेक स्थलों पर किया गया है। ईशावास्य की वाजसनेयी श्रुति उस पुरुष को 'कवि' कहकर पुकारती है—कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधत् शाश्वतीभ्यः समाभ्यः (मन्त्र ८)। महानारायण उपनिषद के अनुसार परमेश्वर अनन्त और अव्यय होने के अतिरिक्त कवि भी है—अनंतमव्ययं कविम् (महानारायण ११।७)। उपनिषदों के स्वर में अपना स्वर मिलाकर श्रीभगवद्गीता भी यही कहती है—

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद् यः (गीता ८।६)

इन उद्धरणों से स्पष्ट है अध्यात्म-विद्या का वेत्ता पुरुष 'कवि' के नाम से अभि-

हित होता है। स्वयं परमेश्वर भी इसी 'कवि' की पवित्र पदवी से मण्डित है। इससे बढ़ कर दर्शनशास्त्र की प्रतिष्ठा की सूचना हो ही क्या सकती है?

भारतवर्ष में 'कवि' का आदर सदा से होता रहा है और आज भी यह समादर का भाव लेशमात्र भी क्षुण्ण नहीं हुआ है। प्राचीन यूनान में भी अध्यात्मविद्या के अनुरागी व्यक्तियों की कमी न थी, दार्शनिक भी कम नहीं थे, परन्तु समग्र यूरोप के अध्यात्म-शिक्षण के विषय में गुरुस्थानीय यूनान की काली करतूतों को देखकर हम भारतीयों के हृदय में विस्मय तथा विषाद की भावना उठ खड़ी होती है। यूनानी लोगों ने ही मिलकर अपने देश के सबसे बड़े दार्शनिक सुकरात को विष देकर मार डाला था और दूसरे बड़े दार्शनिक अफलातूँ (प्लेटो) को उनके ही एक भक्त शिष्य ने सरे बाज़ार में गुलाम बनाकर बेंच डाला था। पश्चिमी जगत् की मूर्धन्य जाति का यह दुराचरण, दार्शनिकों की इतनी अवहेलना, किसे अचम्भे में नहीं डालती? परन्तु भारत तथा भारतीय सभ्यता से अनुप्राणित समग्र पूर्वी देशों में दार्शनिकों का बोल बाला था। समाज के वे अग्रणी थे, राष्ट्र के वे निर्माता थे, समाज को परमकल्याण की ओर ले जानेवाले वे महनीय नेता थे। चीन की यही दशा है। भारत की तो बात ही निराली है। भगवान् मनु का निःसन्दिग्ध प्रमाण है :—

सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥ (१२।१००)

वेदशास्त्र का ज्ञाता सेना के संचालन तथा राज्य पर शासन करने के योग्य है। दण्डविधान तथा सब लोकों का आधिपत्य करने का अधिकारी वही है। प्लेटो भी मनु के इस कथन से प्रभावित हुए थे। उन्होने आदर्श राष्ट्र के संचालन का भार दार्शनिक के ऊपर ही रखा था; यद्यपि 'रिपब्लिक' में इन्होंने बड़ी युक्तियों से इस मतका समर्थन किया, पर वे हवाई महल ही बनाते रहे, उनका स्वप्न कभी कार्यरूप में परिणत न हो सका, वह मृगमरीचिका से बढ़कर सिद्ध न हो सका। परन्तु भारत में राज्य का सूत्र अध्यात्मवेत्ता व्यक्तियों के हाथों में रहा करता था। राजर्षि जनक की ओर आपका ध्यान आकृष्ट कर देना ही पर्याप्त होगा। इस प्रकार इस पावन भारत में दार्शनिकों का कोरा आदर ही न होता था, बल्कि देश के शासन की बागडोर भी उन्हीं के हाथ में रहती थी।

दार्शनिक प्रवृत्ति

तत्त्वों के अन्वेषण की प्रवृत्ति भारतवर्ष में उस सुदूर प्राचीन काल से है जिसे हम 'वैदिक युग' के नाम से पुकारते हैं। ऋग-वेद के अत्यन्त प्राचीन युग से ही भारतीय विचारों में द्विविध प्रवृत्ति और द्विविध लक्ष्य के दर्शन हमें होते हैं। प्रथम प्रवृत्ति प्रतिभा या प्रज्ञा मूलक है तथा द्वितीय प्रवृत्ति तर्क-मूलक है। प्रज्ञा के बल से पहली प्रवृत्ति तत्त्वों के

विवेचन में कृतकार्य होती है और दूसरी प्रवृत्ति तर्क के सहारे तत्त्वों के समीक्षण में समर्थ होती है। अंग्रेजी शब्दों में पहली को हम 'इन्ट्यूशनिस्टिक' कह सकते हैं और दूसरी को 'रैशनलिस्टिक'। लक्ष्य भी आरम्भ से ही दो प्रकार के थे—धर्म का उपार्जन तथा ब्रह्म का साक्षात्कार। ऋग्वेद के एक ऋषि प्रातिभ-ज्ञान के बल पर जगत् के मूल तत्त्व की व्याख्या करते हुए अद्वैततत्त्व के अन्वेषण में समर्थ होते हैं। वे कहते हैं—आनीदवातं स्वधया तदेकम् (ऋ० १०।१२६।२) उस समय एक ही वस्तु वायु के बिना ही अपनी शक्ति से साँस लेती थी, उसे छोड़कर और कोई दूसरा था ही नहीं। उसी वेद का दूसरा ऋषि तार्किक बुद्धि का प्रयोग कर लोगों को प्रोत्साहन दे रहा है—संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् (१०।१६१।२) अर्थात् आपस में मिलो, विषय का विवेचन करो तथा एक दूसरे के मन को जानो। इन उभय प्रवृत्तियों का प्रभाव पड़ने का फल वैदिक युग में सर्वत्र देख पड़ता है। एक ओर तर्क-मूलक प्रवृत्ति के वैदिक कर्मकाण्ड के ऊपर प्रभाव पड़ने का फल हुआ 'कर्म-मीमांसा' की उत्पत्ति। मीमांसक ही हमारे पहिले दार्शनिक हैं और पूर्व-मीमांसा पहिला दर्शन है जिसमें तर्क का उपयोग कर यज्ञ विधानों में व्यवस्था स्थिर की गई। वेद के यज्ञयागादिकों में आपाततः अनेक विरोध साधारण दृष्टि से दीख पड़ते हैं। इन्हीं विरोधों का परिहार तार्किक बुद्धि से सम्पन्न कर दार्शनिकों ने पूर्व-मीमांसा को जन्म दिया। मीमांसा के 'न्याय' कहलाने का यही रहस्य है। प्रज्ञा-मूलक और तर्क-मूलक प्रवृत्तियों के परस्पर सम्मिलन से आत्मा के औपनिषद् तत्त्वज्ञान का स्फुट आविर्भाव हुआ। उपनिषदों के ज्ञान का पर्यवसान आत्मा और परमात्मा के एकीकरण को सिद्ध करनेवाले प्रतिभामूलक वेदांत में हुआ।

इस प्रकार उभय मीमांसाओं में पूर्व-मीमांसा तर्क-मूलक प्रवृत्ति का फल है, तो उत्तर-मीमांसा प्रातिभ ज्ञान पर अवलंबित है। उपनिषद्-काल में ही शुद्ध तर्क-मूलक तत्त्व-ज्ञान का भी ऊहापोह होता रहा जिससे प्रकृति पुरुष के द्वैत को सिद्ध करनेवाले सांख्य का, व्यावहारिक योग का, बहुत्ववादी वैशेषिक का, तथा 'समानतन्त्र' रूप न्यायदर्शन का उदय हुआ। कुछ विद्वानों ने उपनिषद् से सम्बन्ध विच्छेद कर निरपेक्ष भाव से अपनी स्वतन्त्र तार्किक बुद्धि के द्वारा तत्त्वों का समीक्षण किया। और इसी का परिणाम हुआ जैनियों का स्याद्वाद, बौद्धों का शून्यवाद और विज्ञानवाद तथा चार्वाकों का भूतात्मवाद। अतः उपनिषदों से ही समग्र भारतीय दर्शनों का विकास सम्पन्न हुआ, इस कथन में किसी प्रकार के इतिहास से विरोध नहीं है।

उपनिषदों के मूल स्रोत का पता हमें संहिताओं में लगता है। भारतीय दार्शनिक विकास की जो पद्धति साधारणतया हमें सिखलाई जाती है वह नितान्त दोषपूर्ण है।

पश्चिमी विद्वानों का आग्रह है कि संहिताओं में केवल कर्मकाण्ड पर ही जोर दिया गया है। ज्ञान-काण्ड का उदय तो कर्मकाण्ड के विरोध रूप में उपनिषदों में ही सर्वप्रथम हुआ। परन्तु उपनिषदों का अध्ययन इस धारणा को निरवलम्ब तथा भ्रान्त सिद्ध कर रहा है।

वेदान्त के इतिहास में 'नामरूप' की कल्पना कितनी महत्त्वपूर्ण है, इसे दर्शन के प्रेमियों को बतलाने की आवश्यकता नहीं। बौद्ध दर्शन में भी 'नामरूप' की विशिष्ट कल्पना है। इन दोनों का मूल यहीं है। 'स्कम्भ' आत्म-तत्त्व का ही पर्यायवाची है, इसके लिये श्रुति का स्पष्ट निदेश है :—

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम्॥ (अथर्व १०।८।४४)

इन प्रमाणों से स्पष्ट प्रमाणित होता है कि उपनिषदों ने संहिता के मन्त्रों में निहित सूचनाओं तथा चिन्तनों का ही उपबृंहण किया है। ज्ञानकाण्ड का प्रथम अवतार उपनिषदों में ही हुआ—इस भ्रान्त धारणा को हम जितनी जल्दी अपने हृदय से उखाड़ फेंकें उतना ही अच्छा है।

उपनिषद् का महत्त्व

ये उपनिषद् क्या हैं? वैदिक ऋषियों के द्वारा आर्ष चक्षु से साक्षात् किये गये अनुभूतियों के भाण्डार हैं। वे अध्यात्म के मानसरोवर हैं जहाँ से ज्ञान-सरितायें निकलकर भारतवर्ष की इस पुण्यभूमि में जन-मानस को उर्वर बनाती हुई सर्वत्र प्रवाहित होती हैं। उपनिषद् के महत्त्व का तो यह एक पक्ष है। इस महत्त्व का दूसरा पक्ष है उसका संसार से महनीय दार्शनिकों के ऊपर अपना व्यापक प्रभाव डालना। शोपेन-हावेर ने किस प्रकार अपनी गुरुत्रयी में प्लेटो और कैण्ट के अतिरिक्त उपनिषदों को भी प्रमुख माना है, इस बात को यहाँ दुहराने की आवश्यकता नहीं। परन्तु यूनानी दार्शनिक पाइथेगोरस तथा मध्ययुगी दर्शन निओप्लेटानिज़म पर उपनिषदों के प्रभाव को भुलाया नहीं जा सकता। बाइबिल तथा कुरान के सिद्धान्तों पर भी इन अमूल्य ग्रन्थों का बहुत कुछ प्रभाव पड़ा है। उपनिषद् के सिद्धान्त बाइबिल के सिद्धान्तों के समझने के लिए कुञ्जी का काम करते हैं। बाइबिल कहती है कि अपने पड़ोसी से प्रेम करो। परन्तु इसके कारण के विषय में वह नितान्त मौन है। इसके कारण का रहस्य उपनिषदों का अद्वैतवाद उद्घाटित करता है। जगत् में सर्वत्र एक ही परमतत्त्व रमा हुआ है, तो अपना पड़ोसी भी अपनी ही आत्मा ठहरा। सुनने में तो यह बात कुछ अजीब सी लगती है परन्तु है बिल्कुल सच्ची कि कुरान के अनेक सिद्धान्त उपनिषदों के ही प्रसाद हैं। कुरान में जिस गुप्त या गुह्य पुस्तक (किताबे-मकनून) का उल्लेख किया गया है वह दाराशिकोह की व्याख्या के अनुसार उपनिषद् ही हैं। इन उपनिषदों के सिद्धान्तों से गाढ़ परिचय प्राप्त करना प्रत्येक दर्शन-प्रेमी का कर्तव्य

है। प्रस्थान-त्रयी में उपनिषद् ही मूल प्रस्थान है। भगवद्गीता इसीलिये द्वितीय प्रस्थान के रूप में स्वीकृत की गई है कि वह समस्त उपनिषदों का सार अंश प्रस्तुत करती है। ब्रह्म-सूत्र के तृतीय प्रस्थान होने का रहस्य भी यही है—उपनिषन्मूलकता। बड़े दुःख से कहना पड़ता है कि हमारी राष्ट्रभाषा में उपनिषदों के सुन्दर तथा प्रामाणिक अनुवाद खोजने पर भी नहीं मिलते। जापान के उन संस्कृतज्ञों की प्रशंसा किये बिना हम नहीं रह सकते जिन्होंने अनेक वर्षों में अनवरत परिश्रम कर समग्र उपनिषदों का अनुवाद अपनी भाषा में प्रस्तुत किया। हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के अधिकारियों से मेरा यह नम्र निवेदन है कि वे इन ग्रन्थ रत्नों के हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत करने की योजना को कार्यान्वित करें।

षड्दर्शनों का विकास-क्रम

भारतीय दर्शनों का विकास उपनिषदों में बीजरूप से निहित तथा व्यक्तरूप से प्रतिपादित सिद्धान्तों को लेकर हुआ है। हमारी दृष्टि में हमारे षड्दर्शनों के विकास का यह प्रकार है। औपनिषद तत्त्वज्ञान का पर्यवसान "तत् त्वमसि" मंत्र में था। इस मंत्र के द्वारा वैदिक ऋषियों का यह गम्भीर शंखघोष है कि तत् तथा त्वं—ब्रह्म तथा जीव—की नितांत एकता है। समष्टि में जो 'तत्' है वह व्यष्टि में 'त्वं' है। 'अद्वैत तत्त्व' धर्म के साक्षात्कार करनेवाले वैदिक ऋषियों की दार्शनिक संसार के लिए महती देन है। प्रातिभ-ज्ञान से उसकी स्फुरणा पहले हुई, तर्क से उसकी प्रतिष्ठा पीछे सिद्ध की गई। इसी तत्त्व को हृदयंगम करने के लिए दर्शन विकसित हुए। उपनिषद के पश्चादवर्ती युग के सामने यही विषम समस्या थी कि इस तथ्य का साक्षात्कार किस प्रकार किया जाय। कतिपय दार्शनिक लोग कहने लगे कि विभिन्न गुणवाले जीव और भौतिक जगत्—पुरुष तथा प्रकृति—के गुणों के ठीक-ठीक न जानने से ही यह संसार है। प्रकृति—पुरुष के यथार्थ स्वरूप के ज्ञान से तत्-त्वं की एकता सिद्ध होती है। अनात्मख्याति से भेद तथा सम्यक् ख्याति (सम्यक् ज्ञान) से अभेद है। इस सम्प्रदाय का नाम हुआ सम्यक्+ख्याति अर्थात् सांख्य। यह तो हुआ केवल बौद्धिक साक्षात्कार। परन्तु इससे काम चलता न देख उसे व्यावहारिक रूप से प्रत्यक्ष करने की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। इस आवश्यकता की पूर्ति ध्यान-धारणा की व्यवस्था करनेवाले 'योग' से हुई। इस प्रकार सांख्य-योग एक ही तत्त्वज्ञान के दो पक्ष हैं। बौद्धिक पक्ष का नाम है—सांख्य और व्यवहारपक्ष का अभिधान है—योग। कालान्तर में जीव-जगत् के यथार्थ रूप को जानने के लिए उनके गुणों की छानबीन करना आवश्यक प्रतीत होने लगा। इस प्रकार आत्मा तथा अनात्मा के गुण विवेचन के लिए—अर्थात् उनकी विशिष्टता जानने के लिए 'वैशेषिक' की उत्पत्ति हुई। परन्तु ज्ञान-प्राप्ति की परिष्कृत पद्धति के अभाव में यह विवेचन सुचारुरूप से सम्पन्न हो नहीं सकता। अतः ज्ञान की शास्त्रीय पद्धति के निरूपण के लिए

'न्याय का जन्म हुआ। न्याय है शुष्क तर्कवादी। अनेक विद्वानों की दृष्टि में केवल तर्क से अध्यात्म का ज्ञान हो नहीं सकता और इसलिए इन्होंने श्रुति की ओर अपनी दृष्टि फेरी। 'श्रुति की ओर लौटो'—इस सिद्धान्त का प्रचार होने लगा। दार्शनिकों ने वेद के पूर्वकाण्ड (कर्मकाण्ड) की विवेचना करना आरम्भ कर दिया और इसी विवेचन का परिणाम हुआ कर्ममीमांसा का उदय। परन्तु इस दर्शन के विशेष अनुशीलन ने व्यक्त कर दिया कि मानवों की आध्यात्मिक प्रवृत्तियाँ केवल कर्म की उपासना से तृप्त नहीं हो सकतीं। अतः उत्तरकाण्ड (ज्ञानकाण्ड) की मीमांसा होने लगी और इसी का पर्यवसान 'वेदान्त' में हुआ। इस प्रकार औपनिषद् 'तत्त्वमसि' महावाक्य की यथार्थ व्याख्या करने के लिए पूर्वोक्त क्रम से षड्-दर्शनों की उत्पत्ति हुई।

भारतीय दर्शन की विशिष्टता

भारतीय दर्शन के सच्चे स्वरूप के विषय में आज भी अनेक भ्रान्त धारणायें हमारे हृदय में विद्यमान हैं। इसका कारण कुछ तो अपने दर्शन-ग्रन्थों से अपरिचय है और बहुत कुछ पाश्चात्य शिक्षकों की शिक्षा का दुष्परिणाम है। स्वार्थी लोगों ने हमारे दर्शन को निराशावादी कहकर बदनाम कर रखा है। परन्तु प्रवेश कर अवलोकन करने से तो यह दर्शन नितान्त आशावादी के रूप में झलक उठता है। तथ्य कथा कुछ दूसरी ही है। भारत में दर्शन का जन्म दुःखों की जिज्ञासा तथा उनके दूर करने के उपायों के चिन्तन से ही होता है (दुःखत्रयाभिघाताज् जिज्ञासा तदपघातके हेतौ—सांख्य कारिका १)। इस भव-सागर में प्राणी क्लेशों के लहरों के थपेड़ों को खाकर, पद-पद पर विपत्तियों से आक्रान्त होकर इतना अधीर हो उठता है कि उसे जीवन नैराश्य की दीर्घ परम्परा प्रतीत होने लगती है। दर्शन ही उसे सच्चा आश्वासन देकर उस पार ले जानेवाली नौका के समान सब को आश्रय देकर पार पहुँचा देता है। हमारा दर्शन परम आशावादी है। वह मनुष्यों को सदैव आगे बढ़ने का उपदेश देकर उस गन्तव्य देश की ओर ले जाता है जिसे पाने के बाद अन्य कोई प्राप्तव्य वस्तु अवशेष ही नहीं रहती। इसके पाने का मार्ग अवश्य कठिन है, परन्तु मार्ग तो है। क्या यह नैराश्यवाद का सूचक है? उपनिषत् के शब्दों में—

उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य वरान् निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति॥

भारतीय दर्शन स्वानुभूति को विशेष महत्त्व देता है। आत्म-साधन के जो तीन प्रकार—श्रवण, मनन, निदिध्यासन—उपनिषदों में प्रतिपादित किये गये हैं वे परानुभूति को स्वानुभूति में परिणत करने के क्रमिक मार्ग हैं। महर्षियों की अनुभूति को प्रदर्शित करने वाला ग्रन्थ वेद है। इसके तत्त्वों का तो श्रवण करना चाहिए। ज्ञान को निःसंदिग्ध बनाने के लिये मनन की नितान्त आवश्यकता है। मनन युक्तियों के सहारे किया जाता

है। वेद में प्रतिपादित सिद्धान्त सन्देहरहित हैं, इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है। परन्तु जब तक साधक उन्हें तर्क की कसौटी पर नहीं कसता, तब तक उनकी सत्यता में उसे विश्वास नहीं जमता। इसीलिये मनन की आवश्यकता होती है। हमारे दर्शनशास्त्र की व्यावहारिकता का यह प्रधान निदर्शन है कि वह निर्धारित तथ्यों को कार्यरूप में परिणत करने का आदेश देता है। जो दर्शन पृथ्वीतल से बहुत ऊपर उठकर कल्पना के साम्राज्य में विचरण किया करता है वह जनता के विशेष लाभ के लिये नहीं होता। दर्शन तो वही ठीक है जो जन साधारण को विपत्तियों में आश्वासन तथा सान्त्वना दे, विह्वल चित्त को सन्तोष प्रदान करे और आश्वस्त चित्त के लिये निःश्रेयस का मार्ग बतलावे।

धर्म और दर्शन

दर्शन हमारा जीवन है। धर्म और दर्शन के सामञ्जस्य का यही कारण है। दर्शन शास्त्र के द्वारा सुचिन्तित आध्यात्मिक तथ्यों के ऊपर ही भारतीय दर्शन की दृढ़ प्रतिष्ठा है। जैसा विचार वैसा आचार। बिना धार्मिक आचार के द्वारा कार्यान्वित हुए दर्शन की स्थिति निष्फल है और बिना दार्शनिक विचार के द्वारा परिपुष्ट हुये धर्म की सत्ता अप्रतिष्ठित है। धर्म का प्रासाद खड़ा करने के लिये दर्शन उसकी नींव रखता है। कोई भी धर्म-तत्त्व तब तक विद्वानों का प्रियपात्र नहीं बन सकता, जब तक वह दर्शन की नींव पर खड़ा नहीं होता। भारत में इस सामञ्जस्य का मधुर रूप दिखलाई पड़ता है। धर्म के सहयोग से भारतीय दर्शन की व्यापक व्यावहारिक दृष्टि है। और दर्शन की आधार-शिला पर प्रतिष्ठित होने से भारतीय धर्म आध्यात्मिकता से अनुप्राणित है तथा वह तर्कहीन विचारों तथा विश्वासों से अपने आप को बचा सका है।

इस पुण्यभूमि भारत में गंगा और यमुना के सम्मिलन के समान धर्म और दर्शन का मधुर मिलन भारतीय संस्कृति के परम सामरस्य का सूचक है। भगवती श्रुति दोनों का मूल है। उस मूल को तिरस्कृत कर देने पर दोनों की स्थिति आपत्तियों से घिरी रहती है। केवल तर्क से किसी बात का ठीक निर्णय नहीं हो सकता। इसलिये श्रुति का आश्रय आदरणीय है। भर्तृहरि ने 'वाक्यपदीय' में इस तत्त्व का विवेचन बहुत ही ठीक किया है:—

प्रज्ञा विवेकं लभते भिन्नैरागमदर्शनैः।
कियद् वा शक्यमुन्नेतुं स्वतर्कमनुधावता ॥
तत्तद् उत्प्रेक्षमाणानां पुराणैरागमैर्विना।
अनुपासितवृद्धानां विद्या नाति प्रसीदति ॥

बड़े हर्ष का विषय है कि इधर हमारे विद्वानों की दृष्टि हिन्दी में दर्शन-ग्रन्थों के प्रणयन की ओर आकृष्ट हुई है। इधर पाँच वर्षों के भीतर हिन्दी में दर्शन-विषय पर अनेक नवीन ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ है। श्री संपूर्णानन्द जी का 'चिद्विलास' मौलिक

चिन्तनों से परिपूर्ण है। विद्वान् लेखक ने दर्शन शास्त्र के मौलिक विषयों की समीक्षा बड़े ही पाण्डित्यपूर्ण ढंग से की है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का 'दर्शन दिग्दर्शन' पश्चिमी तथा पूर्वी दर्शनों की विविध धाराओं का वर्णन करनेवाला विपुलकाय ग्रन्थ है। लेखक अपने विषय का पण्डित अवश्य है, परन्तु इस ग्रन्थ में वह एक विशिष्ट सिद्धान्त के प्रचाररूप में ही दृष्टिगोचर होता है। डा० देवराज का नया ग्रन्थ---'पूर्वी और पश्चिमी दर्शन'—दोनों दर्शनों का तुलनात्मक विचार प्रस्तुत करता है। काशी के टीचर्स ट्रेनिंग कालेज के प्रोफेसर लालजीराम शुक्ल की मनोविज्ञानविषयक पुस्तकें सुंदर तथा शिक्षाप्रद हैं। 'मनोविज्ञान' आजकल दर्शनशास्त्र का नवीन व्यापक अंग है।

एक प्रस्ताव

हिन्दी में दार्शनिक साहित्य की अभिवृद्धि के लिए मैं आप लोगों का ध्यान ठोस कार्य करने की ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ। दर्शन के विद्वानों से मेरी प्रार्थना है कि अंग्रेज़ी में वे ग्रन्थ प्रणयन भले करें। पर उन्हीं विचारों के निदर्शन के लिए हिन्दी भाषा में भी ग्रन्थों की रचना करें। हिन्दी पत्रिकाओं के सम्पादकों के हाथ में बड़ी शक्ति है। उन्हें चाहिए कि कम से कम एक दार्शनिक निबन्ध को प्रतिमास अपनी पत्रिका में स्थान देने की अनुकम्पा करें। लोकरुचि के परिवर्तन तथा सुधार में सम्पादकों की बड़ी उत्तर-दायिता है। यदि वे इस कार्य के लिए अग्रसर हों, तो दर्शन में लोगों की रुचि बढ़ने लगेगी। हिन्दी के पुस्तक प्रकाशकों से भी मैं यही विनति करूँगा कि वे 'चटनी-साहित्य' के ग्रंथों के साथ साथ इस 'भोजन-साहित्य' का भी कम से कम एक ग्रंथ प्रतिवर्ष प्रकाशित किया करें। इसमें लाभ की विशेष चिन्ता न करें, लोक कल्याण पर ध्यान दें। नवीन ग्रन्थों का प्रणयन तो होना ही चाहिए, पर साथ ही साथ प्राचीन भाष्यग्रन्थों के सुन्दर तथा सुबोध अनुवाद भी हिन्दी में होने चाहिए जो केवल 'मक्षिका' के स्थान में 'मक्षिका' का निवेश न करें प्रत्युत वास्तव में मूल के गम्भीर अर्थ को समझाने वाले हों। इस प्रकार से कार्य प्रस्तुत करने पर दर्शन साहित्य की हिन्दी में अभिवृद्धि अवश्य होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

दर्शन ही जीवन है। दर्शन ही हमारे धर्म तथा आचार की भित्ति है। अब अधिक दिनों तक हम उसकी उपेक्षा नहीं कर सकते। भारतीय दर्शन का भविष्य बड़ा ही उज्ज्वल है। आजकल जितना धार्मिक झगड़ा है, जितना सामाजिक कलह है, वह सब बाहरी रूपों की ओर ध्यान देने का ही विषमय फल है।

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु ।
सर्वः कामानवाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु ॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

राष्ट्रभाषा का प्रश्न

प्रवेश

अखिल भारतीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन तथा उसके अंतर्गत जितनी परिषदें हैं, उनमें सबसे महत्व-पूर्ण स्थान राष्ट्र-भाषा परिषद् को ही प्राप्त है। स्वयं सम्मेलन तथा उसकी अन्य परिषदों को अपने विचार अभिव्यक्त करने के लिये राष्ट्र-भाषा का ही सहारा लेना पड़ता है। यदि सम्मेलन आत्मा है, तो राष्ट्र-भाषा उसका कलेवर। इतनी शक्ति-शालिनी परिषद् का ध्येय केवल २-३ घंटे सभा करके समाप्त हो जाना ही नहीं होना चाहिए। इस परिषद् के अंतर्गत एक कमेटी बन जानी चाहिए, जो इसके कार्य को वर्ष-भर चलाए, तथा अगले वर्ष जब पुनः यह परिषद् हो, तो अपने वार्षिक कार्य-विवरण को परिषद् के सामने रक्खे।

राष्ट्र-भाषा से तात्पर्य है उस भाषा से, जो पूरे राष्ट्र के विचारों को व्यक्त कर सके। जिस भाषा की अभिव्यंजना-शक्ति इतनी प्रबल होगी, वही राष्ट्र-भाषा हो सकती है, जिस खड़ी बोली को उसकी अभिव्यंजना-शक्ति के कारण आज भारतवर्ष के सब भाषा-वैज्ञानिक राष्ट्र-भाषा का स्थान देने जा रहे हैं, वह मुग़ल-काल में मेरठ की ओर बोलचाल की बोली थी।

राष्ट्रभाषा का विकास

संस्कृत बहुत ही प्राचीन काल में बोलचाल की बोली थी। जब पाणिनि प्रभृति वैयाकरणों ने संस्कृत को व्याकरण आदि से बाँधकर साधारण जनता के लिये बोधगम्य न रहने दिया, तब संस्कृत से ही निकली हुई प्राकृत और पाली में साधारण मनुष्य अपने विचारों को प्रकट करने लगे।

बौद्ध-धर्म और जैन—धर्म के समय में जब यही बोलचाल की बोली साहित्य की भाषा बन गई, तो इसी से उत्पन्न अपभ्रंश जनता की बोली बनी। चारण-काल में इसी अपभ्रंश को साहित्यिक भाषा का स्थान प्राप्त हुआ। इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषा अपने स्वाभाविक ढंग से परिवर्तित होती है।

जब हमारे मुसलमान भाई भारतवर्ष में आए, तो अपने विचारों को प्रकट करने के लिये उनको एक भाषा की ज़रूरत पड़ी। उन्होंने खड़ी बोली की क्रियाओं तथा विभ-

---

उदयपुर सम्मेलन में राष्ट्र-भाषा-परिषद् की सभानेत्री पद से श्रीमती सावित्री दुलारेलाल के भाषण का सारांश।

क्रियों के साथ फ़ारसी-अरबी के शब्दों को मिलाकर उर्दू से अपनी आवश्यकता पूरी की। खुसरो आदि उर्दू-लेखकों ने इसी भाषा का प्रयोग किया। अतः इस उर्दू का उद्गम खड़ी बोली ही है।

जब अँगरेज़ आए, तो उन्हें भी अपने विचारों को हम भारतवासियों पर अभिव्यक्त करने के लिये एक बोली की ज़रूरत पड़ी। उन्होंने कुछ उर्दू के, कुछ हिंदी के, कुछ अँगरेज़ी के तथा उस समय के कुछ डच और फ्रेंच के प्रचलित शब्दों को लेकर इसी खड़ी बोली की क्रियाओं और विभक्तियों का प्रयोग किया। उनका ऐसा विचार था कि हिंदुस्तान के रहनेवाले लोगों की बोली का नामकरण 'हिंदुस्तानी' होना चाहिए। अँगरेज़ी अफ़सर ह्यूम साहब ने इस खिचड़ी बोली का नाम 'हिंदुस्तानी' रक्खा।

इस बोली की विचित्रता यह है कि इसका कोई माप-दंड नहीं है—कि इतने शब्द हिंदी के हों, इतने अँगरेज़ी के हों, इतने उर्दू के हों, इतने गुजराती के हों, इतने मराठी के हों, इत्यादि तो वह हिंदुस्तानी कहलाए। फलतः एक अनिश्चित स्वरूप की हिंदुस्तानी एक अनिश्चित दिशा की ओर जा रही है।

रेडियो की दुर्नीति

आल इंडिया रेडियो ने धाँधली का बहुत ही नाजायज़ फ़ायदा उठाया है। आज हिंदुस्तान-भर में आल इंडिया रेडियो द्वारा हिंदुस्तानी के नाम पर अरबी और फ़ारसी के शब्दों का प्रचार हो रहा है। आप लोग स्वयं सोचिए, क्या हिंदुस्तान में अरब और फ़ारस के ही लोग रहते हैं, जो अरबी और फ़ारसी से लदी यह संकुचित और सीमित 'हिंदुस्तानी' नाम की भाषा रेडियो की खबरों, वक्तव्यों, नाटकों आदि में व्यवहृत होती है।

संसार के बड़े-बड़े भाषा-मर्मज्ञ अंतरराष्ट्रीय भाषा की समस्या हल करने में लगे हुए हैं, और हम अभी इतने पीछे हैं कि अपनी राष्ट्र-भाषा भी न बना सके। अमेरिका के सुप्रसिद्ध भाषा-वैज्ञानिक श्रीअलबर्ट ग्यूरार्ड का कथन है—यदि दुनिया में एकता और सामंजस्य पैदा करना है, यदि दुनिया में सांस्कृतिक बुनियादें क़ायम करनी हैं, तो हमें मानव-स्वतंत्रता पर अपना अंतरराष्ट्रीय महल खड़ा करना होगा। बग़ैर राष्ट्रीय स्वतंत्रता के अंतरराष्ट्रीय एकता असंभव है। राजनीतिक साम्राज्यवाद की तरह ही भाषा में भी साम्राज्यवादी प्रवृत्तियाँ होती है। हम अपनी ही भाषा को संसार में सबसे महत्त्व-पूर्ण भाषा समझ लेते हैं, और दूसरी भाषाओं को और उसके बोलनेवालों को अवज्ञा की दृष्टि से देखने लगते हैं। बहुत छोटे और ग़ुलाम राष्ट्रों की भाषा बिलकुल तुच्छ दिखाई देती है। उनसे कुछ ऊपर संरक्षित राष्ट्रों की भाषाएँ थोड़ा-बहुत सहज कर ली जाती हैं। उनसे ऊपर कुछ छोटे-छोटे स्वतंत्र राष्ट्र हैं, जैसे स्वीडन और फ़िनलैंड, और उन देशों की अपनी-अपनी संस्कृतियाँ भी हैं। उनसे ज़रा ऊपर बड़ी-बड़ी क़ौमें और उनकी प्रसिद्ध भाषाएँ

हैं। और, सबसे ऊपर साम्राज्यवादी राष्ट्र और उनकी साम्राज्यवादी भाषाएँ हैं। भाषा का यह अभिजात पहलू जब तक दूर नहीं होता, तब तक हमारे दिल से भाषा-संबंधी कलुष भी दूर नहीं होगा। धन का अभिमान, राष्ट्र का अभिमान, संस्कृति का अभिमान छोटी जातियों को अवज्ञा से देखने का अभिमान हममें भरे हुए हैं, और आश्चर्य यह है कि इन झूठे अभिमानों को अपने अन्दर सेते हुए भी हम अपने को सभ्य और सुसंकृत कहने का दावा करते हैं!"

जिस प्रकार अंतरराष्ट्रीय भाषा का अंतरराष्ट्रीय राजनीति से तारतम्य सम्बध है, उसी प्रकार किसी भी राष्ट्र की राजनीति का उस राष्ट्र की राष्ट्र-भाषा से अन्योन्याश्रित संबन्ध है। यदि भाषा में राष्ट्रीयता न रही, तो वह राष्ट्र-भाषा कैसी? राष्ट्र-भाषा का आधार राष्ट्रीय प्रेम और संगठन है, और होना चाहिए; एक सीमित अहम्मन्यता नहीं। साधारण जनता की बोलचाल की भाषा को हम बाँधकर किसी संकुचित दायरे में नहीं रख सकते। जिस राष्ट्र-भाषा का प्रयोग ४५ करोड़ जनता करेगी, उसमें अन्य प्रांतों तथा अन्य भाषाओं के शब्दों का समावेश स्वभावतः होगा ही। राष्ट्र-भाषा का ध्येय प्रांतीय भाषाओं का स्थान लेना नहीं है, प्रत्युत अपनी राष्ट्रीयता के नाते उन्हें और भी ऊँचा उठाना है, उनके साहित्य को सुरक्षित रखना है। किसी भी भाषा की साहित्यिकता तभी तक सुरक्षित रह सकती है, जब तक उसका प्रयोग केवल साहित्य में हो। ज्यों ही वह भाषा जनता की बोलचाल की भाषा बनी, उसमें परिवर्तन और परिवर्धन निश्चय होंगे। यह स्वाभाविक विकास है। इसे कोई रोक नहीं सकता।

राष्ट्र-भाषा की समस्या पर विचार करने के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण सामग्री हमारे सामने श्रीगांधीजी और श्रीटंडनजी का सार-गर्भित पत्र-व्यवहार है। आप सबने भी इस पत्र-व्यवहार को पढ़ा होगा।

सुझाव

एक समस्या हमारे सामने और है कि राष्ट्र-भाषा का नामकरण चाहे हिन्दी हो, चाहे हिन्दुस्तानी, परन्तु उसमें पूरे हिन्दुस्तान का प्रतिनिधित्व करने की शक्ति अवश्य हो। यदि ऐसा नहीं है, तो वह अपने वास्तविक अर्थ में हिन्द के निवासियों की राष्ट्र-भाषा हिन्दी या हिन्दुस्तान के रहनेवालों की राष्ट्र-भाषा हिन्दुस्तानी न बन सकेगी। यह तो स्पष्ट है कि खड़ी बोली एक सीमित दायरे में रह कर राष्ट्र-भाषा का स्थान न ग्रहण कर सकेगी। विशेषकर प्रारंभिक अवस्था में इसे संस्कृत, बँगला, गुजराती, मैथिली, राजस्थानी, पंजाबी, उर्दू आदि भाषाओं के प्रचलित शब्दों को परिमार्जित करके अपनाना पड़ेगा।

मेरे विचार में राष्ट्र-भाषा का स्वरूप निश्चित करने में जितना विचारविनिमय

होना चाहिए, उतना अभी नहीं हुआ है। वास्तव में राष्ट्र-भाषा का प्रश्न उतना सरल नहीं, जितना समझा जाता है। श्रद्धेय बाबूजी हम हिन्दी वालों के पथ-प्रदर्शक हैं, उन्हीं के सुझाए मार्ग पर चलकर हम यहाँ तक पहुँचे हैं। पूज्य बापू ने इस मार्ग को और भी प्रशस्त और भव्य बनाया है। उनके इस रास्ते पर चल पड़ने से सारा राष्ट्र इस ओर चल पड़ा है। हमें बाबूजी से पथ-प्रदर्शन भी लेना है, और बापू से शक्ति भी। हम दोनों में से एक का भी सहयोग छोड़ने को तैयार नहीं हैं। दोनों में से किसी का भी असहयोग हमारी भाषा के लिए घातक होगा।

अतएव मेरा सुझाव यह है कि विभिन्न प्रांतों के विद्वानों और भाषा-विशेषज्ञों की एक सभा बुलाई जाय, और उसके सम्मुख यह प्रश्न हल करने के लिए रक्खा जाय। सच बात तो यह है कि ये भाषा-मर्मज्ञ विद्वान् ही, हमारे राष्ट्र-नायक, स्वनामधन्य महात्मा गांधी के नेतृत्व में, इस विषय पर अंतिम निर्णय दे सकते हैं। उनके द्वारा राष्ट्र-भाषा का जो रूप निर्धारित होगा, उसे ही देश-भर की जनता मानेगी, तथा उसे मानना चाहिए। मर्मज्ञों का यह राष्ट्र-भाषा-सम्मेलन हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की ओर से प्रयाग में किया जाना चाहिए। श्रद्धेय बाबूजी स्वागताध्यक्ष रहें, और पूज्य बापू से प्रार्थना की जाय कि इसका सभापतित्व ग्रहण करें।

यह सम्मेलन राष्ट्र-भाषा का जो स्वरूप निश्चित करे, उसी का प्रचार राष्ट्र-भाषा परिषद् करे। उसका प्रधान कार्यालय प्रयाग में रहे, और उसके शाखा-कार्यालय विभिन्न प्रांतों और स्टेटों में रहें।

प्रत्येक ज़िला, नगर, स्टेट, वार्ड तथा मुहल्ले में समितियाँ बनवाकर भारतवर्ष-भर में घर-घर राष्ट्र-भाषा, राष्ट्र-लिपि तथा राष्ट्रीय साहित्य का प्रचार और प्रसार होना चाहिए।

अंत में मेरा आपसे पुनः यही निवेदन है कि हिन्दी के सरल रूप को राष्ट्र-भाषा बनाने के लिए हमें अपने हृदय की गहराई में विशालता भी भरनी पड़ेगी। अपनी भाषा को औरों पर लादना नहीं चाहिए, बल्कि ऐसा वातावरण उत्पन्न करना चाहिए कि अन्य भाषा-भाषी उसमें सरलता और अपना लाभ देखकर स्वाभाविक रूप से अपना लें। तभी हमारी भारती-भारतवर्ष के कोने-कोने में गूँज सकेगी।

समाज शास्त्र का क्षेत्र

सभ्यता या संहार

आज जब हम मनुष्य-समाज और उसके संगठन के विभिन्न अंगों पर विचार करने के लिए इकट्ठा हुए हैं, इस बात को भूल नहीं सकते कि अभी-अभी हम नर-बलि की भयावह घाटी से होकर गुजरे हैं। अब भी इस पथ का अन्त नहीं हुआ। उन्मत्त हिंसक पशु की भाँति एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का रक्त-पान करने के लिए घूम रहा है। हिंसा, प्रति-हिंसा, द्वेष और मात्सर्य का ऐसा विश्व-व्यापी ताण्डव-नृत्य इतिहास के पृष्ठों पर देखने को नहीं मिलता। तुर्रा यह कि यह शताब्दी सभ्य शताब्दी के नाम से पुकारी जाती है और रक्त-पिपासु राष्ट्रों का परिगणन उन्नत और प्रगतिशील राष्ट्रों में किया जाता है। यदि ध्यान से देखा जावे तो इस बीभत्स कांड के मूल में दो वृत्तियाँ काम कर रही हैं; एक दमन दूसरा प्रभुत्व। आज राष्ट्रों में इस बात की होड़ लगी हुई है कि कौन अधिक से अधिक दमन की सामग्री उत्पन्न कर सकता है जिससे उसका प्रभुत्व अधिक से अधिक भू-खण्ड पर स्थापित हो सके। वस्तुतः, इन प्रवृत्तियों के देखने से यह प्रतीत होता है कि सभ्यता की मर्यादा और मानदण्ड का स्वरूप ही बदल गया है। मनुष्य की स्वाभाविक अभिलाषा सुख और शान्ति के लिए होती है। इन्हीं की प्राप्ति में समाज का सौन्दर्य समझा जाता है, पर स्थिति ऐसी उपस्थित हुई है कि शान्ति-प्रिय जातियों के लिए स्थान नहीं है। उन्हें प्रगतिशील जातियों के समकक्ष नहीं माना जाता। इस सम्बन्ध में मुझे एक उपयुक्त प्रसंग का स्मरण आता है—लार्ड ग्रे एक जापानी राजनीतिज्ञ के वार्तालाप का प्रायः उल्लेख किया करते थे जिसमें उसने व्यंगपूर्ण शब्दों में इस प्रकार कहा था, 'हाँ, हम लोगों की जाति कलाकारों की थी; उस समय आप लोग हमें असभ्य समझते थे। अब हमारी कला का ह्रास हो चुका है किन्तु हमने मारने की विद्या सीख ली है और आप हमें सभ्य कहते हैं।' इस मार्मिक कथन में आधुनिक सभ्यता के आन्तरिक स्वरूप की स्पष्ट झलक मिल जाती है।

वादों की उलझन

सामाजिक संगठन का उत्तोलन कुछ मूल-भूत सिद्धान्तों पर होता है। उसकी प्रगति के भीतर इन्हीं सिद्धान्तों की प्रेरणा होती है। मनुष्य के हृदय में पहले भाव उठता

उदयपुर सम्मेलन में समाजशास्त्र-परिषद् के अध्यक्ष-पद से श्री सत्याचरण शास्त्री के भाषण का सारांश।

है तदनन्तर उसका प्रतिफल क्रिया के रूप में होता है। समाज के सामूहिक कार्य के पीछे कोई व्यवस्थित विचार-धारा काम करती है; इसीसे समाज की स्थिति को आँका जाता है। इन्हीं सैद्धान्तिक गुत्थियों को पारिभाषिक शब्द 'वाद' के नाम से पुकारा जाता है। साम्राज्यवाद, प्रजातन्त्रवाद, फैसिस्टवाद, नाजीवाद, साम्यवाद आदि सभी कुछ संगठित विचारों के रूप हैं। प्रत्येक वाद के प्रवर्तक एवं अनुयायी का यह दृढ़ प्रयत्न होता है कि वह समाज के समूचे ढाँचे को अपने विचारों के अनुरूप बनावे। जिस कट्टरता के साथ इनका प्रचार किया जाता है उसके सामने मध्यकालीन धार्मिक कट्टरता की कथायें कुछ भी नहीं ठहरतीं। इन्हीं वादों के उत्थान और पतन के साथ बड़े-बड़े राज्यों का अभ्युदय एवं ह्रास लगा हुआ है। इन्हीं वादों की तीव्रगामी लहरों पर तिनके की भाँति समाज का शरीर आन्दोलित हो रहा है। इन्हीं वादों की गति पर हमारे भाग्य की रूप-रेखा निर्भर है। अतः समाज शास्त्र के पंडितों का कर्तव्य इन वादों का ठीक विवेचन कर उचित पथ की ओर निर्देश करना है।

प्रायः यह देखा जाता है कि राजनैतिक आन्दोलनों को किसी न किसी वाद का समर्थन प्राप्त है। राजनीति-विशारद अपनी क्रियाओं के औचित्य को प्रमाणित करने के लिए किसी न किसी वाद का सहारा लेते हैं। हृदय की वीभत्स से वीभत्स एवं कुत्सित से कुत्सित प्रवृत्ति को किसी लोक-कल्याणकारी 'वाद' का आवरण पहना कर लोग पर्दे की आड़ में अपने स्वार्थों को सिद्ध करते हैं। स्वयं वादों की विभिन्न स्थिति सामाजिक संघर्ष को उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त है पर अवस्था उस समय अत्यंत भयङ्कर हो जाती है जब किसी वाद-विशेष के नारे लगाते हुए लोग ठीक उसके विपरीत आचरण करते हुए दिखाई देते हैं। स्वार्थों के आधार पर वादों की यह विडम्बना आज समाज के अस्तित्व को चुनौती दे रही है।

कहा जाता है कि वर्तमान महायुद्ध के संचालन का उद्देश्य प्रजातन्त्रवाद के सिद्धान्तों की रक्षा करना था। नाजीवाद और फासिस्टवाद जनता के हितों पर कुठाराघात करने वाले थे, अतः उनको नष्ट कर प्रजातन्त्रवाद के नेतागण, मित्रराष्ट्रों ने संसार को डूबते हुए बचाया तथा सभ्यता और संस्कृति की रक्षा की। उन्होंने त्रस्त और पीड़ित राष्ट्रों का उद्धार किया। पर प्रजातन्त्रवाद के इन नेताओं से पूछना चाहिए कि क्या इस कल्याणकारी सिद्धान्त का उपयोग केवल योरप की जातियों के लिए सुरक्षित है? जावा, सुमात्रा और अन्य सुदूर-पूर्वीय राष्ट्र इस बात की आशा किये हुए थे कि महायुद्ध के पश्चात् वे दासता के पाश से मुक्त हो जायँगे, पर उनकी आशा पर हिमपात हुआ। ब्रिटेन और अमेरिका ने योरप की दबी हुई फ्रेंच, डच, बेल्जियन आदि जातियों का उद्धार किया पर उन्हीं उद्धारकों के तोप, बन्दूक, और हवाई जहाज आज दीन-हीन जातियों की

स्वतंत्रता की भावना को कुचलने में लगे हुए हैं। जो फ्रांस वर्षों तक जर्मनी के जूते के नीचे दबा कराह रहा था वही पुनः इण्डो-चीन पर अपना प्रभुत्व बनाये रखने के लिए उतावला है। छोटा-सा देश हालैण्ड जो नाजी जर्मनी के सामने दीन भिखारी के समान हाथ जोड़े हुए खड़ा था वह दम्भ का आसव पीकर सुमात्रा, जावा एवं बालि आदि द्वीपों के करोड़ों मनुष्यों के रक्तशोषण के लिए सन्नद्ध है। इस प्रजातन्त्रमय कार्य में किसकी सहायता है? प्रजातंत्रवाद के अग्रदूत ब्रिटेन और अमेरिका की यह प्रजातन्त्रवाद की होली नहीं तो और क्या है? जब तक विश्व-समाज में प्रवञ्चना का यह स्वरूप वर्तमान रहेगा तब तक सुख और शान्ति हमसे कोसों दूर रहेगी।

समाज का समस्त ढाँचा सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक स्वरूपों पर निर्भर है। इन तीनों का परस्पर गहरा सम्बन्ध है। इन्हीं के सुन्दर समन्वय और उपयोग पर समाज की प्रगति का निर्णय होता है। अतः इन तत्त्वों पर थोड़ा प्रकाश डालना आवश्यक है।

संस्कृति की रूप-रेखा महान् तत्त्वचिन्तकों एवं कलाकारों की सैकड़ों, हजारों वर्षों की तपस्या से बनती है। समाज के सर्वतोमुखी जीवन में यह अन्तःसलिला के समान जीवन प्रदान करती है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सांस्कृतिक उत्कर्ष और प्रस्तार के आधार पर राष्ट्रों की महानता का उल्लेख होता है। यही कारण है कि जाग्रत् राष्ट्र अपनी संस्कृति के प्रचार में जागरूक एवं सचेष्ट रहते हैं। सच पूछिए तो आज यह विषय राजनैतिक प्रभुत्व का सहायक बन गया है। इसके भीतर भी साम्राज्यवाद की गन्ध आती है। जापान ने कोरिया और मञ्चूरिया पर आधिपत्य करते ही अपनी भाषा और संस्कृति के प्रचार के लिए पूरा प्रयत्न किया। जर्मनी समस्त मध्य योरप में अपनी संस्कृति के प्रचार के लिए उतावला था। इटली अबीसीनिया लेने के पश्चात् इस बात की सतत चेष्टा कर रहा था कि वहाँ रोमन संस्कृत का प्रस्तार हो। इस कार्य के लिए सैकड़ों धर्मोपदेशक इस देश में भेजे गये।

अक्टूबर सन् १९३६ की बात है। वेनिस से बम्बई के सूबे में एक इटालियन जहाज पर काली पोशाक पहने हुए पादरियों के एक झुंड से मेरी भेंट हुई। मुझे इन लोगों के विषय में जानने की इच्छा हुई। ज्ञात हुआ कि यह दल अबीसिनिया धर्म-प्रचार के लिए जा रहा था। एक पादरी से मैंने पूछा कि इस नवीन देश में प्रवेश करने का उनका क्या उद्देश्य था। उन्होंने अपनी मुद्रा गम्भीर कर कहा—'अबीसीनिया एक बर्बर देश है। वहाँ के निवासियों को सभ्यता का ज्ञान नहीं है। उनके लिए स्वर्ग का दरवाजा खोलने जा रहा हूँ।' इस दम्भपूर्ण कथन को सुनने के पश्चात् मुझसे रहा न गया। मैंने कहा—'हरार और अदिस अबाबा की निःशस्त्र जनता और निरीह स्त्री-बच्चों

पर जब इटली के वायुयानों-द्वारा बम बरसाये गये थे उस समय आपका स्वर्ग और आपकी सभ्यता कहाँ थी ?' पर साम्राज्यवाद की छाया में पलनेवाले इन पादरियों के पास उत्तर ही क्या था ?

भारतवर्ष सांस्कृतिक दृष्टि से किसी राष्ट्र से पीछे नहीं रहा। युगों के आवर्तन में इसने सदा मनुष्य-समाज की उन्नति के लिए अपना विशेष दान दिया है। समय समय पर इस पर वैदेशिक संस्कृतियों का आघात हुआ। भारत के राजनैतिक प्रभुत्व को नष्ट करने के साथ इसकी संस्कृति को विदा करने के लिए चेष्टाएँ हुईं। १९वीं शताब्दी से यह प्रयत्न और भी भयंकर रूप धारण कर चुका है। सांस्कृतिक संघर्ष के इस युग में भारतीय विद्वानों के मस्तिष्क को यह पश्चिम की खुली चुनौती है कि वह वैदेशिक संस्कृति का सामना कर अपनी वस्तु को अक्षुण्ण बनाये रक्खें। भारतीय विद्वानों ने इसे सहर्ष स्वीकार किया है और अपने कर्त्तव्य से च्युत नहीं हुए हैं। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि हमारी संस्कृति में अमरता के वे तत्त्व हैं जो समय और संघर्षशील जातियों के आघात को सहन करने में समर्थ हैं। इससे बढ़कर हमारे अस्तित्व की और क्या विजय हो सकती है कि सहस्रों शताब्दियों से प्रदीप्त किये हुए प्रकाश-स्तम्भ की ओर आज रक्त से भीगी हुई योरप और एशिया की जातियाँ पथ-प्रदर्शन के लिए उत्सुकतापूर्वक देख रही हैं।

समाज के ढाँचे की कल्पना करते हुए पश्चिम के विचारकों ने आत्म-तत्त्व की सर्वथा उपेक्षा की है। प्रसिद्ध जर्मन राजनीतिज्ञ बिस्मार्क ने तो यहाँ तक कह डाला कि 'प्राणियों के लिए युद्ध एक आवश्यक वस्तु है'। जब तक ऐसे विचारों के आधार पर निर्मित खूनी संस्कृति का कच्चा चिट्ठा खोलकर उसकी निस्सारता न प्रमाणित की जायगी तब तक शान्तिमय सामाजिक व्यवस्था की कल्पना स्वप्न-मात्र है। यह कार्य शान्ति-सम्मेलनों के प्रस्तावों से नहीं हो सकता। लोग मूल तक जाने की चेष्टा नहीं करते। वस्तुतः विश्व के सामने ऐसे सामाजिक विधान रखने की आवश्यकता है जिसमें हिंसा और रक्त-शोषण की प्रवृत्ति की गुंजाइश ही न हो।

समाज का दूसरा महत्वपूर्ण अङ्ग आर्थिक है। जिस प्रकार अच्छी संस्कृति का प्रचार लोक-कल्याण के लिए सहायक होता है इसी प्रकार आर्थिक स्वरूप का ठीक नियन्त्रण समाज को सुख और जीवन प्रदान करता है। अर्थ के विषय विभाजन और ऐकान्तिक स्वामित्व की लोलुपता के कारण समाज में महान् संघर्ष मचा हुआ है। राजनैतिक प्रभुत्व के मूल में आर्थिक स्वामित्व की भावना काम कर रही है। श्रेणी-संघर्ष से लेकर राजनैतिक अशान्ति तक आर्थिक प्रश्न लगा हुआ है।

पूँजीवाद तथा समाजवाद की समस्या सर्वत्र गम्भीर होती जा रही है। इनके संघर्ष में स्वार्थों का रूप छिपा हुआ है। एक ओर कुछ लोग धन के स्वामी बन-कर आमोद

में जीवन बिताना चाहते हैं। उन्हें भूखे, नंगे और पीड़ित मानव-समुदाय की परवाह नहीं। दूसरी ओर अधिकारों के प्रति चेतना बढ़ने के साथ शोषित और त्रस्त जनता सर उठा रही है। वह समानाधिकार और धन के उचित विभाजन पर बल दे रही है। यदि हम वादों का स्मरण करें तो पूँजीवाद के साथ साम्राज्यवाद की भावना काम करती है और समाजवाद के साथ प्रजातन्त्रवाद की। गम्भीरता के साथ विचार करने पर यह सत्य स्पष्ट हो जाता है कि युद्धों के पीछे पूँजीवादियों का बड़ा हाथ होता है। इनके संकेत पर राष्ट्र के सैन्यदल और जंगी बेड़े लहराते हुए दिखाई देते हैं। इनका मुख्य उद्देश्य राज्यों के विस्तार-द्वारा माल की खपत और रक्त-शोषण होता है। इसी उद्देश्य की बलिवेदी पर भारत बलिदान की वस्तु बना पड़ा है। जब तक इस उद्देश्य का हनन न हो तब तक समाज में शांति कैसे स्थापित हो सकती है।

संयुक्तराज्य अमेरिका के एक भूतपूर्व मन्त्री श्री फैङ्क्लिन ने एक अवसर पर कहा था 'यदि न केवल व्यक्ति वरन् अपनी सरकारों के द्वारा स्वयं राज आर्थिक प्रतियोगिता में भाग लेंगे और अपने को महाजनों की कोठियों या कारखानों का रूप दे लेंगे तो फिर व्यापारिक प्रतिद्वन्द्विता से उत्पन्न निरन्तर झगड़ों के शान्त होने की कोई आशा नहीं की जा सकती।' इस कथन की सार्थकता के प्रमाण अफ्रीका और एशिया के विस्तृत भू-खण्ड हैं। साम्राज्यवादी राष्ट्रों का गुट्ट अन्य देशों को हड़पकर आर्थिक शोषण के लिए अनियंन्त्रित मार्ग चाहता है। जब इनके स्वार्थों में कहीं बाधा पड़ती है तो युद्ध का भैरव नाद बज उठता है। मनुष्य के अधिकारों की रक्षा, सभ्यता की रक्षा आदि नारे ऊपरी दिखावे के होते हैं।

इस समय राजनैतिक दृष्टिकोण में महान् उथल-पुथल मची हुई है। कितने ही देश अपने आदर्शों से च्युत होते हुए दिखाई देते हैं। साम्यवादी रूस मानव समाज के अधिकारों की समानता का बीड़ा उठाये था। रूसी राज्य-क्रान्ति से कितने ही दबे हुए देशों को जागरण का सन्देश मिला। पर शक्तिशाली रूस ने फिनलैण्ड पर क्यों आक्रमण किया इसका कोई समुचित उत्तर नहीं मिलता। अब रूस ने भी साम्राज्यवादी राष्ट्रों के समान औपनिवेशिक नीति की ओर पैर बढ़ाया है। मित्र-राष्ट्रों के सामने अभी-अभी उसने इटालियन साम्राज्य के दो देशों—ट्रिपालिटानिया और इरीट्रिया के ऊपर अपने प्रभुत्व की माँग की है। क्या इन देशों के निवासी स्वयं अपने देश का शासन-सूत्र हाथ में ले नहीं सकते?

विजयी देश विजित देश की सम्पत्ति हड़पने में अपना पूरा अधिकार समझता है। इस क्रिया में वह बड़ी सतर्कता से काम लेता है। आर्थिक शोषण का यह ढंग तभी जनता के सामने खुलकर आता है जब विजित राष्ट्र के दम घुटने की अवस्था आती है।

इसका उदाहरण भारत से मिल सकता है। इस समय बच्चे-बच्चे को अपनी असहाय आर्थिक अवस्था का भान हो गया है। हमारी विवशता की पराकाष्ठा हो चुकी है। परन्तु आर्थिक शोषण के आरम्भिक काल में इसका कोई ज्ञान नहीं था। कुछ वर्षों के आँकड़ों के देखने के पश्चात् हमारी आँखें खुल जाती हैं कि एक शताब्दी के भीतर हमारा कितना भयंकर आर्थिक ह्रास हुआ है। संवत् १८७१ में मराठों की अन्तिम लड़ाई समाप्त हुई और पंजाब के अतिरिक्त समस्त भारत पर कम्पनी का अधिकार हो गया। इसके २० वर्ष के भीतर ही भारत और इँग्लैंड के व्यापार का क्या स्वरूप हो गया वह ध्यान देने योग्य है।

भारत से कितने थान सूती कपड़े गये	ब्रिटेन से कितने थान आये
संवत् १८७१—१२,६६,६०८	८,१८,२०८
संवत् १८९२—३,५६,०८६	५,१७,७७,२७७
भारत से ब्रिटेन गये कपड़े का मूल्य	ब्रिटेन से आये कपड़े का मूल्य
संवत् १८७२—१,६५,००,०००)	३,६४,५००)
संवत् १८८६— १५,००,०००)	६०,००,०००)

यदि भारत के शासन की बागडोर भारतीयों के हाथ में होती तो क्या यह परिवर्तन सम्भव हो सकता ?

किसी देश के वाणिज्य-व्यवसाय को नष्ट करने के लिए अधिक से अधिक जकात लगाई जाती है। इँग्लैंड ने इस नीति का आश्रय लेकर भारत के व्यवसाय को कुचला है। यह बात जकात की संख्या से स्पष्ट हो जावेगी। ब्रिटेन से आनेवाले सूती और रेशमी कपड़े पर ३॥) सैकड़ा और ऊनी कपड़े पर २) सैकड़ा जकात ली जाती थी पर ब्रिटेन में भारत के बने हुए सूती कपड़े पर १०) सैकड़ा; रेशमी कपड़े पर २०) सैकड़ा और ऊनी कपड़े पर ३०) सैकड़ा जकात लगती थी। यह तो हुई कपड़ों की कथा। सोने के निर्यात का ढंग कम दुखद नहीं है। सभी देश अपने कोष को भरपूर रखने के लिए सोने का संचय करते हैं, पर भारत की कथा निराली है। यह अपनी अर्थनीति का स्वयं विधाता नहीं है। इसी लिए संवत् १९८९ में ५८ करोड़ का और १९९० में उससे भी अधिक ६८ करोड़ ३० लाख का सोना प्रायः सीधे ब्रिटेन गया। जब साधारण समय में सोने का इतना निर्यात था तो युद्ध के समय में भारत से कितना सोना गया होगा, इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है।

हिन्दी में अर्थशास्त्र-सम्बन्धी पुस्तकों की अभी कमी है। जो कुछ लिखी गई हैं उनमें बहुत कम स्वतन्त्र विचारों के आधार पर हैं। पारिभाषिक शब्दों की कठिनाइयाँ अभी बनी हुई हैं। अच्छा हो, यदि अर्थशास्त्र में रुचि रखनेवाले विद्वान् हिन्दी में अर्थ-

शास्त्र के प्रामाणिक ग्रन्थों की रचना का यत्न करें। परम्परागत विषयों के अतिरिक्त औपनिवेशिक आर्थिक नीति, राष्ट्रों का आर्थिक संघर्ष, आर्थिक शोषण और विप्लव, साम्यवाद का आर्थिक विधान आदि विषय दिये जा सकते हैं।

समाज का तीसरा आवश्यक अंग राजनैतिक संगठन है। राज्यों का संचालन शासन-विधान पर अवलम्बित होता है। समाज के लिए कौन-सा विधान ठीक है इसका निर्णय विशिष्ट समुदाय से सम्बन्धित है। किन्तु कोई भी ऐसा विधान मान्य नहीं समझा जा सकता जिसमें जनता की आवाज अथवा जनशक्ति का प्रतिनिधित्व न हो। मध्यकाल के एकतंत्राधिकार का समय नष्ट हो गया। जनता-जनार्दन की शंखध्वनि के सामने सामन्तशाही के झंडे धराशायी हो रहे हैं। जो राज्य जनता की इस बढ़ती हुई शक्ति को नहीं समझते उन्हें इस तथ्य को समझने के लिए कल बाध्य होना पड़ेगा।

राजनैतिक आदर्शों में जो कुछ मत-भेद हमें दिखाई पड़ता है उसका कारण स्वार्थों का वैभिन्य है। साधारण जनता के लिए सारे संसार में सामान्यतः एक विधान का निर्माण हो सकता है पर पृथ्वी के एक-एक टुकड़े पर किसी विशिष्ट समुदाय के स्वार्थों की छाया दिखाई देती है। यही संघर्ष का कारण है। लोगों में प्रायः यह भ्रमात्मक धारणा फैली हुई है कि मानव वर्ग में धर्म लड़ाई का बीज बोनेवाला है। इसके समर्थन में योरप के मध्यकाल का इतिहास उपस्थित किया जाता है। पर यह कथन मनोवैज्ञानिक सत्य से परे है। जो अंधाधुन्धी हमें धर्मान्धता में प्राप्त होती है उसका दर्शन हमें दूसरी बातों में भी होता है। सिद्धान्तों का आश्रय लेकर आज लड़ाइयाँ लड़ी जा रही हैं और प्रत्येक लड़नेवाला राष्ट्र इस बात की घोषणा करता है कि उसकी राजनैतिक व्यवस्था सबसे अच्छी है और इसी में मानव-समाज का कल्याण है। प्रसिद्ध रूसी क्रान्तिकारी ट्राट्स्की ने अपने रूसी विप्लव के इतिहास में स्पष्टतः इस बात को स्वीकार किया है कि पूर्व समय की तरह धर्म के कारण परस्पर युद्ध न होकर वर्तमान एवं भविष्य में सिद्धान्तों के आधार पर संघर्ष हुआ करेंगे। लन्दन विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध अध्यापक हेराल्ड लास्की ने साम्यवाद का एक नवीन धर्म के रूप में वर्णन किया है। यह साम्यवाद रूपी नवीन धर्म संसार से अन्य धर्मों को बिदा कर देना चाहता है। यदि सिद्धान्तों की हठधर्मिता के कारण संघर्ष उत्पन्न हो तो क्या आश्चर्य है!

अब यहाँ पर प्रश्न उठता है कि राजनैतिक विधान का मूलतत्त्व क्या हो? मनुष्य की वृत्तियाँ किस वातावरण में अपनी चरमसीमा तक विकसित हो सकती हैं? मेरी बुद्धि में विधान का साफल्य वैयक्तिक स्वातन्त्र्य और सामाजिक स्वातन्त्र्य के समन्वय में है। मनुष्य स्वाधीनता के लिए लालायित रहता है। वह नियन्त्रण से दूर हटाने की चेष्टा करता है। स्वाधीनता में उसे सुख के दर्शन होते हैं और वह उसी ओर अग्रसर होता

है। भारतवर्ष में सुख की परिभाषा बड़े सुन्दर शब्दों में की गई है—'सर्वमात्मवशं सुखम्, सर्वं परवशं दुःखम्'। सामाजिक व्यवस्था में इस मूलनीति को स्मरण रखने पर ही मनुष्य रक्तमय संघर्ष से बच सकता है।

राजनैतिक सिद्धान्तों की वह कट्टरता जिसमें वैयक्तिक स्वातन्त्र्य के लिए गुंजाइश न हो, राष्ट्र की प्रगति के लिए घातक होती है। आधुनिक रूस में वैयक्तिक स्वतन्त्रता का जो रूप है उसे देखकर आश्चर्य होता है। सुना जाता है कि उस देश में एच० जी० वेल्स लिखित 'विश्व इतिहास की संक्षिप्त रूप-रेखा' पुस्तक के पढ़ने की मनाही है। स्वर्गीय शचीन्द्रनाथ सान्याल ने एक स्थान पर श्रीराहुल सांकृत्यायन के मुख से सुनी हुई बात का उल्लेख किया है। घटना इस प्रकार है—रूस-देश के एक कवि ने राहुल जी के पास आकर अपना दुःख व्यक्त किया। उस कवि ने ज्योत्स्ना पर एक कविता लिखी थी। इस कविता को रूस की नौकरशाही ने छपने नहीं दिया। इसका कारण यह था कि उनकी राय में उस कविता में अतीन्द्रियवाद का कुछ आभास था, वेदांत-प्रतिपाद्य ऐक्यानुभूति की ओर संकेत था। वर्तमान रूस में छापेखाने का नियन्त्रण राष्ट्र के हाथ में है। छापेखाने के मालिक अपनी इच्छानुसार कोई भी लेख छापने से इनकार कर सकते हैं। वहाँ साहित्य, कला, विज्ञान, दर्शन, समाजतत्त्वादि विषयों की चर्चा राष्ट्र के तत्त्वावधान में होती है। इस राष्ट्र का एक विशेष दार्शनिक पक्ष है जिसका विरोध नहीं किया जा सकता। ऐसी अवस्था में वैयक्तिक विचारों के स्वातन्त्र्य की गुंजाइश भला कहाँ हो सकती है?

जितना आवश्यक सामाजिक संगठन पर विचार करना है उससे कम उस संगठन के उत्थान-पतन और विकास-क्रम के ब्यौरे का रखना नहीं है। इसी को इतिहास के नाम से पुकारा जाता है। हिन्दी-साहित्य में इतिहास-विषयक पुस्तकों की वृद्धि हो रही है पर इसमें वृद्धि का बड़ा अवकाश है। भारत के विभिन्न प्रान्तों और जातियों के इतिहास के अतिरिक्त अन्य देशों के इतिहास से भी हिन्दी की इतिहास-माला को सुशोभित करना है। हिन्दी के पाठकों को दूसरे देशों के इतिहास समझने की कम सामग्री प्राप्त होती है। इस कमी को दूर करना हमारा कर्तव्य है।

इतिहासशास्त्रियों से यह बात छिपी नहीं है कि राष्ट्र की आत्मा उसके इतिहास में बोलती है। सचेत राष्ट्र के विद्वान् इस ध्वनि को कुंठित नहीं होने देते वरन् दूर-क्षेपक यन्त्र के समान उसकी तीव्रता को और बढ़ाते हैं। विजयी जातियाँ विजित राष्ट्रों के इतिहास को कुचलकर आत्म-प्रेरणा से वञ्चित रखने के लिए इस 'बोली' को बन्द करने की चेष्टा करती हैं। इस भयंकर स्थिति से राष्ट्र की रक्षा जाग्रत् इतिहासज्ञ ही कर सकता है। भारतीय इतिहासज्ञों का उत्तरदायित्व आज अधिक बढ़ गया है। कुछ पश्चिमीय इतिहासज्ञों ने

जिस प्रकार हमारी इतिहास की रूप-रेखा को तोड़-मरोड़ कर रक्खा है उसका निराकरण करना आवश्यक है।

जिस दिशा का ऊपर संकेत किया गया है उसके अनुसार उचित इतिहास-सम्बन्धी अन्वेषण के लिए साहित्य-सम्मेलन जैसी संस्था के तत्त्वावधान में अनुसन्धान विभाग की स्थापना की आवश्यकता है। विषय की महानता को देखकर, आशा है आर्थिक कठिनाई बाधक न होगी। इस योजना को देश के सामने रखकर अग्रसर होना आवश्यक है।

भारतवर्ष में बहुत सी ऐसी जातियाँ जंगलों और पर्वतों की घाटियों में बसी हैं जिनका ठीक स्वरूप हमें नहीं ज्ञात होता। विदेशों के विश्व-विद्यालय इस बात पर पर्याप्त धन राशि खर्च करते हैं और विद्वानों के संगठित समुदाय को सुदूरवर्ती स्थानों में खोज के लिए भेजते हैं। अमेरिका के प्रसिद्ध नगर वाशिंगटन में 'स्मिथसोनियन इन्स्टीच्यूट' नाम की एक संस्था है। इसका वार्षिक व्यय लाखों रुपयों में आता है। इस संस्था की ओर से विश्व के सुदूरवर्ती स्थानों पर विद्वानों के समूह भेजे जाते हैं। इस इन्स्टीच्यूट के प्रयत्न के फल-स्वरूप उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका में बसी हुई रेड इंडियन जाति की दर्जनों विभिन्न शाखाओं के जीवन और रहन-सहन का पता चलता है। हमारे पास बाहरी देशों के वन्य एवं पार्वत्य कुटुम्बों के अनुसंधान के साधन कम हैं पर अपने देश की जातियों का तो हम कर ही सकते हैं। आवश्यकता है संगठित प्रयत्न और प्रोत्साहन की।

प्रत्येक क्षेत्र में भारत की अपनी अनूठी स्थिति है। इसका सांस्कृतिक धरातल उन्नत और प्रशस्त है। यदि भारतीय विद्वान् इस गौरव को अपने हृदय में वहन करते हुए दृढ़ता के साथ अपनी लेखनी उठायें तो उनके दान का अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपना स्थान होगा। हमारे जीवन की प्रक्रिया के अध्ययन में 'आत्मानं विद्धि' का महान् दार्शनिक सत्य निहित है। हम भौतिक और आध्यात्मिक जगत् की सत्यता में विश्वास रखते हैं और इनके समन्वय में समाज का अभ्युदय समझते हैं। केवल भौतिक अथवा आध्यात्मिक तत्त्व के एकांगी स्वरूप को लेकर हम संसार में सुखी नहीं रह सकते। जड़वाद अथवा भौतिकवाद के इस युग में भारतीय समाज-शास्त्रविद के लिए यह आवश्यक है कि वह विश्व के विचारकों का ध्यान इस सत्य की ओर आकर्षित करे कि समाज के शरीर का परिवर्द्धन आत्मा के उन्नयन में होता है न कि आत्म-तत्त्व की उपेक्षा में।

हिन्दी जगत

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के ३३ वें अधिवेशन उदयपुर में स्वीकृत निश्चय।

(१)

यह सम्मेलन साहित्य वाचस्पति डाक्टर श्यामसुन्दरदास, श्री रामनाथ शर्मा तथा श्री हरिकृष्ण जौहर के देहावसान पर हार्दिक दुःख तथा उनके कुटुम्बियों के साथ सहानुभूति और समवेदना प्रगट करता है।

(२)

अबोहर के तीसवें अधिवेशन में हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने अपने निश्चय द्वारा हिन्दी और हिन्दुस्तानी शब्दों के प्रयोग के सम्बन्ध में अपनी नीति स्पष्ट कर दी थी। हिन्दी और उर्दू का क्या सम्बन्ध है इसे भी सूत्र रूप से सम्मेलन ने स्पष्ट कर दिया था। सम्मेलन अपनी नीति के सम्बन्ध में इस समय भी उसी निश्चय को पूर्णतया स्वीकार करता है।

हाल में सम्मेलन के पुराने सभापति महात्मा गांधी जी ने स्वस्थापित हिन्दुस्तानी प्रचार सभा के काम को प्रगति देने के अभिप्राय से हिन्दी साहित्य सम्मेलन से अपना संबंध विच्छेद करने की बात उठाई और अन्त में उन्होंने अपना त्यागपत्र दे दिया, जो स्थायी समिति के सामने है। इस विषय में उनके और सम्मेलन के कार्यवाहक उपसभापति श्री पुरुषोत्तमदास टंडन के बीच जो पत्रव्यवहार हुआ उसे महात्मा गांधी जी ने प्रकाशित करा दिया है उससे हिन्दी के विद्वानों, लेखकों और पत्रकारों में तथा अहिन्दी भाषी हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार करनेवाले कार्यकर्ताओं में असाधारण हृदयमंथन हुआ है। इस कारण सम्मेलन इस पत्र व्यवहार के सैद्धान्तिक अंश पर, अबोहर अधिवेशन के निश्चय को सामने रखते हुए अपना मत प्रगट करना उचित समझता है।

८ जून सन् ४५ के पत्र में सम्मेलन की ओर से श्री पुरुषोत्तमदास टंडन ने महात्मा गांधी को ये वाक्य लिखे थे—

"सम्मेलन हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानता है। उर्दू को वह हिन्दी की एक शैली मानता है जो विशिष्ठ जनों में प्रचलित है। स्वयं वह हिन्दी की साधारण शैली का काम करता है, उर्दू शैली का नहीं।"

ये वाक्य सम्मेलन के सिद्धान्त और नीति के सर्वथा अनुकूल हैं और सम्मेलन उन्हें अपने मत के प्रकाशनार्थ स्वीकार करता है।

महात्मा गांधी के इस मत से कि प्रत्येक देशवासी नागरी और फारसी दोनों लिपियाँ सीखे सम्मेलन सहमत नहीं हो सकता। राष्ट्रीय दृष्टिकोण से सम्मेलन इस मत को नितान्त अव्यावहारिक तथा अग्राह्य समझता है। केवल नागरी लिपि में राष्ट्रलिपि होने की योग्यता है। उसमें वैज्ञानिक पूर्णता है। देश की बहुत बड़ी जन संख्या की वह लिपि है। उससे भी अधिक जन संख्या ऐसी लिपियों का व्यवहार करती है जो नागरी लिपि के बहुत समीप हैं और उसके लिये नागरी सीखना अति सुगम है। यह मानी हुई बात है कि फारसी लिपि का आधार वैज्ञानिक नहीं है और सीखने में वह कष्ट साध्य है। हमारे देश में वह आपेक्षिक दृष्टि से बहुत थोड़े लोगों की लिपि है। हमारे देश में साक्षरता की कमी है। अपनी प्रान्तीय लिपि के साथ दो अन्य लिपियें सीखना साधारण जनता के लिए सम्भव नहीं।

सम्मेलन की दृष्टि पूर्णरूप से राष्ट्रीय है। देश की राष्ट्रीय आवश्यकताओं के साथ सम्मेलन चलता आया है और चलना चाहता है और भाषा और लिपि के प्रश्न पर सांप्रदायिक दृष्टि से विचार करना अनुचित समझता है। भाषा और लिपि का, राष्ट्रीय उत्थान और एकीकरण में बहुत बड़ा स्थान है। वास्तविकता को देखते हुए राष्ट्रभाषा और लिपि के विकास में सम्मेलन विचार युक्त प्रगतियों का पोषक है।

[३]

(क) जिन देशी राज्यों में सब राज कार्यों में नागरी लिपि का प्रयोग होता है उनमें से अधिकतर राज्यों में भी प्रचलित राजभाषा अभी तक सर्वजन सुलभ हिन्दी नहीं हो पाई है और अभी तक विदेशी शब्दों और वाक्यांशों का भार उस पर से नहीं उतारा जा सका है। यह सम्मेलन ऐसे राज्यों के शासनों से प्रार्थना करता है कि प्रजा के अधिकार और सुभीते को ध्यान में रखकर सब कार्यों में हिन्दी भाषा का व्यवहार अनिवार्य रूप से करें। इसके साथ ही अँगरेजी के बढ़ते हुए प्रभाव को जो राष्ट्रीय दृष्टि से अवांछनीय और भारतीय राज्यों की उदात्त परम्परा के प्रतिकूल है, रोके।

यह सम्मेलन उन राज्यों के हिन्दी प्रेमी न्यायाधीशों, वकीलों एवं कर्मचारियों से अनुरोध करता है कि वे भी इस लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए क्लिष्ट अरबी तथा फारसी शब्दों के प्रयोग को रोक कर और उनके स्थान में हिन्दी के शब्दों को प्रयुक्त कर अपने कर्त्तव्य का पालन करें।

(ख) यह सम्मेलन जयपुर शासन के उस निर्णय को जिसके द्वारा प्रार्थियों को अनुज्ञा दी गई है कि वे उर्दू के साथ हिन्दी में भी प्रार्थनाएँ उपस्थित कर सकते हैं, अपर्याप्त और वस्तुस्थिति के प्रतिकूल मानता है। राज्य की आज्ञाएँ और मिसिलें अभी तक प्रायः फारसी लिपि में लिखी जाती हैं। जयपुर की अधिकांश साक्षर जनता केवल

हिन्दी ही जानती है, वही सदा से वहाँ की सार्वजनिक भाषा रही है। वहाँ हिन्दी की समकक्षता किसी और भाषा को राजभाषा रूप से नहीं दी जा सकती। अतः सम्मेलन जयपुर शासन से अनुरोध करता है कि वे राजपूताना और मध्य भारत के अन्य राज्यों की भाँति हिन्दी को राज की एक मात्र भाषा के रूप में स्थापित कर प्रजा के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करें।

(ग) सम्मेलन को यह जानकर खेद है कि धौलपुर की कचहरियों में अभी तक हिन्दी का प्रचलन नहीं है। सम्मेलन धौलपुर शासन से सानुरोध निवेदन करता है कि अपनी प्रजा के अधिकार को ध्यान में रख कर अपने सब कार्यालयों और कचहरियों में सर्वजन सुलभ हिन्दी को तुरन्त प्रचलित करने की आज्ञा दें।

(घ) यह सम्मेलन ट्रावनकोर राज्य के उस निर्णय का स्वागत करता है जिसके द्वारा प्राथमिक शिक्षा का समस्त भार राज्य ने अपने ऊपर लिया है और राज्य के शासन से प्रार्थना करता है कि ट्रावनकोर में राष्ट्रभाषा हिन्दी की बढ़ती हुई लोकप्रियता को दृष्टि में रखते हुए वहाँ के शिक्षण क्रम में हिन्दी को अनिवार्य स्थान दें।

(ङ) इस सम्मेलन को यह देख कर खेद है कि मैसूर में हिन्दी के शिक्षण के लिए राज्य की ओर से कोई उपयुक्त प्रबन्ध नहीं है। सम्मेलन राज्य के शासन से प्रार्थना करता है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी को वहाँ के शिक्षण क्रम में स्थान दें।

(च) यह सम्मेलन इस बात पर तीव्र असन्तोष प्रकट करता है कि बार-बार ध्यान आकर्षित कराये जाने पर भी हैदराबाद की निजाम गवर्नमेंट हिन्दी के प्रति अपनी विरोध तथा पक्षपातपूर्ण नीति में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं कर रही है। निजाम गवर्नमेंट हिन्दी को गैर मुल्की भाषा बता कर लगभग ४ लाख हिन्दी भाषी तथा अगणित हिन्दी प्रेमियों को हिन्दी शिक्षा से वंचित रखकर तथा हिन्दी पत्रों के प्रकाशन और हिन्दी से संबंधित आयोजनों के लिए अनुमति न देकर जो नागरिकता के सामान्य अधिकारों का अपहरण कर रही है सम्मेलन उसकी निन्दा करता है और यह स्पष्ट कर देना चाहता है कि हिन्दी को गैर मुल्की कह कर हैदराबादी उर्दू को जो विदेशी शब्दों से लदी एक कृत्रिम शैली है और जिसे राज्य की दस प्रति शत जनता से अधिक नहीं समझती, मुल्की बताना हास्यास्पद समझता है।

सम्मेलन निजाम गवर्नमेंट से अनुरोध करता है कि वह राज्य में हिन्दी माध्यम द्वारा कम से कम हाई स्कूल तक की शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा प्रदान करे और उन प्रतिबंधों को हटा दे जिनके कारण राज्य में प्राइवेट स्कूल तथा कालेज स्थापित नहीं किये जा सकते, साथ ही उस्मानिया विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में हिन्दी साहित्य को एक स्वतंत्र विषय के रूप में स्थान दें।

(६) पंजाब के पहाड़ों के जिन अनेक राज्यों ने हिन्दी को राज भाषा रूप से स्थापित कर अपनी प्रजा की स्वाभाविक माँग का आदर किया है सम्मेलन उन्हें बधाई देता है। जिन राज्यों ने अभी ऐसा नहीं किया है उनसे सम्मेलन सानुरोध प्रार्थना करता है कि वे शीघ्रतर ऐसा करें।

(७) सम्मेलन पटियाला प्रमुख उन पंजाबी राज्यों को बधाई देता है जिन्होंने जनता की भाषा पंजाबी को राज्य भाषा रूपेण स्थापित किया है। साथ ही सम्मेलन उनसे प्रार्थना करता है कि प्रजा में प्रचलित देवनागरी लिपि को भी गुरुमुखी लिपि के साथ-साथ पंजाबी भाषा लिखने के लिए उपयोग किये जाने की स्वीकृति दें और अपने राज्यों की नागरी प्रेमी जनता की माँग को पूर्ण करें। सम्मेलन पंजाब के अन्य राज्यों से अनुरोध करता है कि इसी प्रकार वे भी जन-भाषा और जन-लिपि का शासन कार्यों में प्रचलन स्वीकार करें।

[४]

सम्मेलन ने अपने गत अधिवेशन में भारतीय रेडियो की नीति विषयक जो प्रस्ताव किये थे उनको मान कर हिन्दी के लेखकों और कवियों ने रेडियो विभाग से जो असहयोग किया—सम्मेलन उसकी सराहना करता है और उनकी दृढ़ता पर उन्हें बधाई देता है।

इसी प्रकार हिन्दी और अन्य भाषाओं के पत्रों तथा सार्वजनिक संस्थाओं ने इस आन्दोलन में जो सक्रिय सहयोग प्रदान किया है उसके लिये सम्मेलन उन्हें धन्यवाद देता है।

भारतीय गवर्नमेंट ने अब तक सम्मेलन की न्याययुक्त मांगों को स्वीकार न कर अपनी अराष्ट्रीय, साम्प्रदायिक और पक्षपात पूर्ण नीति का स्पष्ट प्रदर्शन किया है। सम्मेलन इसकी निन्दा करता है और स्थायी समिति द्वारा गत २५ मार्च को स्वीकृत मंतव्य की पुष्टि करते हुए वायसराय महोदय से बलपूर्वक अनुरोध करता है कि वह सूचना और प्रचार विभाग को सर सुल्तान अहमद के अधीन और अधिक न रहने दें और किसी ऐसे सदस्य को सौंपे जो साम्प्रदायिकता और हिन्दी विरोध के हठसे बचकर निष्पक्ष भाव से हिन्दी के साथ न्याय कर सके।

सम्मेलन को ज्ञात हुआ है कि रेडियो विभाग के डाइरेक्टर जनरल मुंशी बुखारी का दूसरा पंचवर्षीय कार्यकाल समाप्त होने वाला है। वे अपने १० वर्ष के लम्बे कार्यकाल में निरन्तर हिन्दीविरोध की खुली नीति बरतते रहे हैं। यह सम्मेलन समस्त हिन्दी जगत की ओर से बलपूर्वक भारत सरकार से मांग करता है कि मुंशी बुखारी सदृश पक्षपातपूर्ण व्यक्ति को अब तीसरे पंचवर्षीय काल के लिए पुनः कदापि नियुक्त न किया जाय। उनका

फिर नियुक्त करना केवल वैयक्तिक पक्षपात और हिन्दी जगत के प्रति असह्य अत्याचार होगा।

सम्मेलन की यह दृढ़ मांग है कि पिछले १५ वर्ष में रेडियो विभाग की ओर से हिन्दी के प्रति जो अन्याय होता रहा है उसे भारतीय गवर्नमेंट समाप्त करे और मौलवी बुखारी के स्थान पर हिन्दी के किसी ऊँचे विद्वान् को नियुक्त करे।

भारत-सरकार के प्रत्येक विभाग की नीति के लिए सरकार समष्टि रूप से उत्तरदायी है। अतः यह सम्मेलन भारत सरकार की कार्यकारिणी कौंसिल के सदस्यों से अनुरोध करता है कि वे रेडियो विभाग की नीति को बदलवायें और यह नीति स्वीकृत करावें कि हिंदी में समाचार आदि सब विषयों का प्रसार उत्तर भारतीय केन्द्रों से आरम्भ किया जाये और रेडियो विभाग में मुख्य डाइरेक्टर तथा अन्य डाइरेक्टरों के पदों पर हिन्दी के विद्वानों को काम करने का अवसर दिया जाय। सम्मेलन हिन्दी जगत को आदेश देता है कि इस विषय का आन्दोलन तीव्रगति से आगे बढ़ावे और तब तक जारी रखे जब तक सम्मेलन की मांगें स्वीकार न हो जायें।

[५]

हिन्दी चल चित्रों की भाषा साहित्य और कला की दृष्टि से हिन्दी के सर्वजन-सुलभ रूप से अनिच्छित दिशा में दूर हट रही है। विदेशी शब्दों, भावों तथा संस्कृति का प्रभाव बढ़ रहा है। समाज के जीवन में दृश्य-काव्य के महत्व को दृष्टि में रखते हुए यह सम्मेलन इस प्रवृत्ति को समाज के सांस्कृतिक विकास के लिए घातक समझता है। इस सम्मेलन के विचार में भारतीय चल चित्रों में अच्छी हिन्दी का ही प्रयोग किया जाना चाहिये। सम्मेलन के मत में भारत-सरकार के सूचना विभाग की ओर से निर्मित प्रचार और शिक्षण चित्रों की भाषा भी अच्छी हिन्दी नहीं है।

उपर्युक्त चित्रों के निर्माण और प्रचार में सहायता देने तथा अवांछित प्रवृत्तियों का निराकरण करने के लिए यह सम्मेलन स्थायी-समिति को आदेश देता है कि एक समिति बनावे जो चित्र निर्माताओं, वितरकों, प्रदर्शकों, लेखकों, कवियों, कलाकारों तथा पत्रकारों और जनता का सहयोग प्राप्त कर इस उद्देश्य की पूर्ति करे।

[६]

पंजाब विश्व विद्यालय ने पंजाबी भाषा के लिखने के लिए नागरी लिपि को स्वीकार कर पञ्जाब की जनता के एक बहुत बड़े भाग के साथ न्याय किया है। इसके लिए यह सम्मेलन पञ्जाब विश्वविद्यालय को धन्यवाद देता है।

[७]

दिल्ली प्रांतीय सम्मेलन ने दिल्ली म्युनिस्पल्टी के चुनावों में खड़े होने वाले निर्वा-

चन इच्छुकों से दिल्ली म्युनिसिपल कमेटी में हिन्दी भाषा को स्वीकृत कराने की प्रतिज्ञा लेकर जो कार्य किया है उसके लिए यह सम्मेलन उसे बधाई देता है।

[८]

हिन्दी कार्य को उत्तेजना देने के लिए उदयपुर के हिन्दी विद्यापीठ ने जो पंचवर्षीय योजना उपस्थित की है उसके लिए सम्मेलन उसे धन्यवाद देता है, किंतु उसमें कई बातें ऐसी हैं जिन पर गम्भीर विचार की आवश्यकता है। अतः सम्मेलन निम्नलिखित सज्जनों की समिति उस पर विचार करने और अपना मत स्थायी समिति के सामने उपस्थित करने के लिये नियत करता है—

१—श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी
२—श्री पुरुषोत्तमदास टंडन
३—श्री मौलिचन्द्र शर्मा
४—श्री मुनिजिनविजय
५—श्री जनार्दनराय नागर (संयोजक)

[९]

यह सम्मेलन नियमावली पर पुनः विचार और आवश्यक संशोधन करने की दृष्टि से श्री मौलिचन्द्र शर्मा, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, श्री महेन्द्रजी, श्री मथुरा प्रसाद सिंह तथा श्री उदयनारायण त्रिपाठी (संयोजक) की समिति नियत करता है और उनको आदेश देता है कि वे अपने संशोधन स्थायी समिति के सामने यथाशीघ्र उपस्थित करें। सम्मेलन कार्यालय द्वारा ये संशोधन स्थायी समिति के सदस्यों के पास भेज दिये जायँगे। स्थायी समिति कम से कम १५ दिन पश्चात् इन संशोधनों पर विचार करेगी और अपने निर्णय से नियमावली में आवश्यक संशोधन कर नई स्वीकृत नियमावली के अनुसार कार्य आरंभ कर देगी।

[१०]

इस सम्मेलन का निश्चित मत है कि राजस्थान के साहित्य का हिन्दी में उतना ही स्थान है जितना ब्रजभाषा, अवधी तथा भोजपुरी का। सम्मेलन का मत है कि विश्वविद्यालयों और प्रान्तीय तथा रियासती शासनों के शिक्षा विभागों की परीक्षाओं के ग्रन्थों में राजस्थान की साहित्यिक कृतियों का उचित स्थान होना चाहिये। सम्मेलन का अनुरोध है कि हिन्दी के लेखक इस ओर ध्यान रखेंगे।

[११]

इस सम्मेलन को पता लगा है कि भारत-सरकार के अर्थ विभाग ने दो सहस्र रुपये के एक पारितोषिक की घोषणा की है और तत्सम्बन्धी प्रतियोगिता में भाग लेने वालों

से यह माँग की है कि वह दाशमिक रीति की मुद्राओं के लिए अपने कच्चे चित्र उपस्थित करें। सम्मेलन इस प्रश्न पर कि दाशमिक रीति उचित होगी या अनुचित कोई मत प्रकट नहीं करता। किन्तु यदि नई दाशमिक रीति के अनुसार सिक्कों का चलन किया जाय तो सम्मेलन के मत में रुपये के सौवें अंश का नाम पैसा ही रखना उचित होगा। पचीस पैसे के सिक्के को पचीसा और पचास पैसे के सिक्के को पचासा कहा जाय।

चालू सिक्के के चारों ओर जो लताचित्र हैं उनमें कमल के साथ जो अन्य देशों के प्रतीक स्वरूप कुछ फूल रखे गए हैं वे अनावश्यक हैं। सम्मेलन का मत है कि केवल कमल ही पर्याप्त और उचित है।

चालू सिक्कों में रोमन अक्षरों में इंडिया और उसके नीचे ईसवी सन् दिया रहता है। सम्मेलन की सम्मति में इंडिया के स्थान पर देवनागरी अक्षरों में 'हिन्द' और 'पैसा', 'पचीसा' आदि लिखा रहना चाहिए।

[१२]

हिंदी माध्यम द्वारा उच्च शिक्षा प्रदान के अभिप्राय से बिड़ला एजुकेशनल ट्रस्ट ने बी० ए०, बी० एस्सी० और बी० काम के भिन्न-भिन्न विषयों पर हिंदी में पाठ्य पुस्तकें प्रस्तुत करने की जो योजना की है उसका यह सम्मेलन हार्दिक अभिनन्दन करता है और आशा करता है कि उसके प्रकाशित निश्चय के अनुसार जून सन् १९४६ तक सौ पाठ्य पुस्तकें प्रकाशित हो जायँगी और ट्रस्ट आगे भी उच्च से उच्च शिक्षा के योग्य ग्रन्थ निर्माण के काम में दत्तचित्त रह कर हिन्दी की एक आवश्यकता की पूर्ति करेगा।

[१३]

यह सम्मेलन इस बात पर असंतोष प्रकट करता है कि देश के हिन्दी भाषी प्रांतों के विश्वविद्यालयों में हिन्दी भाषा को अभी तक उसका स्वाभाविक स्थान और महत्त्व नहीं दिया गया है। अब तक सभी विश्वविद्यालयों में हिन्दी के माध्यम द्वारा शिक्षा का प्रबन्ध हो जाना चाहिए था। अतएव यह सम्मेलन उक्त संस्थाओं से आग्रह करता है कि इस संबन्ध में अपने कर्तव्य की ओर ध्यान दें और हिन्दी के माध्यम द्वारा शिक्षण प्रबन्ध करके हमारी राष्ट्रीयता को प्रोत्साहित करें।

यह सम्मेलन काशी हिंदू विश्वविद्यालय से तो विशेष कर यह आशा रखता है कि वह उच्चतम परीक्षाओं तक के लिए अविलम्ब हिन्दी माध्यम की व्यवस्था करेगा। काशी विश्वविद्यालय के छात्रों में भी हिन्दी माध्यम के लिए प्रबल इच्छा है और उन्होंने इसके लिए माँग की है। सम्मेलन इस माँग का समर्थन करता है और विश्वविद्यालय के अधिकारियों से आशा करता है कि वे शीघ्रतर इस माँग को पूर्ण करेंगे।

[१४]

यह सम्मेलन मेरठ के चौधरी मुख्तारसिंह जी के विज्ञान-कला भवन की स्थापना पर और उसके द्वारा हिन्दी में कला और उद्योग संबन्धी शिक्षा की योजना और पुस्तक प्रकाशन पर हर्ष एवं सन्तोष प्रकट करता है और उन्हें बधाई देता है।

[१५]

यह सम्मेलन लाहौर के सरस्वती-विहार द्वारा आयोजित आँग्ल-भारतीय महाकोष के रसायन-शास्त्र खण्ड को प्रकाशित देख कर अपनी प्रसन्नता प्रकट करता है। सम्मेलन इस महत्त्वपूर्ण प्रयत्न की सराहना करता है और सरस्वती विहार को हार्दिक बधाई देता है।

[१६]

यह सम्मेलन काशी के हिन्दी रेलवे टाइम टेबुल कार्यालय के हिन्दी में प्रकाशित टाइम टेबुलों का हार्दिक स्वागत करता है और प्रकाशक को हिन्दी प्रचार का यह उपयोगी कार्य करने के लिए बधाई देता है।

[१७]

यह सम्मेलन हिन्दी में लिखी जाने वाली गणित और विज्ञान की पाठ्य पुस्तकों में रोमन अंकों के व्यवहार को अनुचित समझता है और प्रांतीय शिक्षा विभाग से अनुरोध करता है कि अब इस सम्बन्ध की जो पुस्तकें हिन्दी में प्रकाशित की जायँ उनमें नागरी अंकों का ही प्रयोग किया जाय।

[१८]

यह सम्मेलन अनुभव करता है कि हिन्दी का एक पूर्ण तथा परिष्कृत व्याकरण बनना चाहिए। व्याकरण के विद्वानों तथा विभिन्न विश्वविद्यालयों को इस सम्बन्ध में तुरन्त क्रियात्मक ध्यान देने की आवश्यकता है।

[१९]

यह सम्मेलन समस्त भारतीय राज्यों से अनुरोध करता है कि वे अपने-अपने राज्यों में कम से कम एक हिन्दी विद्यालय स्थापित करें जहाँ हिन्दी विश्वविद्यालय की प्रथमा से उत्तमा तक शिक्षा दी जाय और जहाँ पहिले से ऐसे विद्यालय स्थापित हैं वहाँ उन्हें पर्याप्त आर्थिक सहायता एवं सहयोग प्रदान करें और हिन्दी के विद्वानों को आश्रय दें।

[२०]

यह सम्मेलन पंजाब की हिन्दी-भाषी शिक्षा संस्थाओं से यह अनुरोध करता है कि वे अपनी संस्थाओं में हिन्दी भाषा और नागरी लिपि को प्रारम्भिक तथा माध्यमिक शिक्षा का 'माध्यम' बनावें।

[२१]

यह सम्मेलन सिंध शासन के सरक्यूलर नम्बर ५० जी० बी० वी० (ए) १·२ का जिसमें उसने हिन्दुस्तानी की शिक्षा के संबन्ध में साम्प्रदायिक दृष्टि से यह निर्णय किया है कि मुसलमान छात्रों के लिए उर्दू या सिंधी लिपि के द्वारा ही सिखाई जाने वाली हिन्दुस्तानी ही अनिवार्य रहेगी, विरोध करता है। शिक्षा विभाग के लिए यह उचित है कि या तो सभी सिन्धी छात्रों के लिए हिन्दुस्तानी को देवनागरी या फारसी लिपि के द्वारा सीखने की स्वतंत्रता हो या फिर मुसलमानों की तरह हिन्दू छात्रों के लिए भी हिन्दुस्तानी को देवनागरी लिपि या सिन्धी लिपि के द्वारा सीखना अनिवार्य हो।

[२२]

सिन्ध के प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अगला अधिवेशन कराची में करने का जो निमंत्रण दिया है उसके संबन्ध में यह सम्मेलन स्थायी समिति को आदेश देता है कि वह आवश्यक पत्र-व्यवहार करे और यदि उसे संतोष हो तो निमंत्रण स्वीकार करे।

डा० श्यामसुंदरदास पुरस्कार

राय बहादुर डा० श्यामसुंदरदासजी के निधन से हिन्दी भाषा और साहित्य तथा देवनागरी लिपि पर से रक्षा का एक बलवान हाथ उठ गया। स्वर्गीय डाक्टर महोदय उन इने-गिने निष्ठावान मनीषियों में से थे जिन्होंने हिन्दी-नागरी के लिए अपना संपूर्ण जीवन उत्सर्ग कर दिया। काशी नागरीप्रचारिणी सभा के तो वे जन्मदाता, पालनकर्त्ता, सर्वस्व थे। आज से ५० वर्ष पहले शिष्ट-समाज में हिन्दी हेय-सी समझी जाती थी। विश्वविद्यालयों की उच्च कक्षाओं में उसका प्रवेश नहीं था। उच्च श्रेणी के योग्य ग्रंथ भी उपलब्ध न थे। हिंदी का प्राचीन साहित्य प्रमादवश दिनों दिन नष्ट होता जा रहा था। यह एकमात्र उन्हीं के परिश्रम का पुण्यप्रभाव है कि आज हम कबीर, तुलसी, जायसी आदि प्राचीन कवियों की रचनाओं और उनपर आधुनिक विद्वानों के गंभीर विचारों से परिचित हैं। 'सरस्वती' का प्रवर्तन, नागरीप्रचारिणी पत्रिका का वर्षों संपादन, पृथ्वीराज रासो, हिंदी शब्दसागर, हिंदी वैज्ञानिक कोष एवं अन्य अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों का संपादन तथा साहित्यालोचन, भाषाविज्ञान आदि अनेक मौलिक ग्रंथों का प्रणयन करके उन्होंने साहित्य की सर्वाङ्गीण प्रगति के लिए जो मार्ग तैयार किया उस पर निश्चित गति से आगे बढ़ने वाले साहित्य-सेवियों की आज गणना नहीं की जा सकती।

काशी नागरीप्रचारिणी सभा के रूप में वे अपना अत्यन्त दृढ़ स्मारक छोड़ गए

हैं। तथापि यह हिंदी भाषा-भाषी मात्र का कर्तव्य है कि उनके अत्यन्त प्रिय कार्य—हिंदी भाषा तथा साहित्य एवं देवनागरी लिपि के प्रचार और उन्नति—में यथाशक्ति योग देकर उसे आगे बढ़ाएँ। प्रसन्नता की बात है कि काशी में एक पुस्तकालय भी उनकी स्मृति में स्थापित होने जा रहा है तथा एक विद्यालय का संघटन भी उनके नाम से किए जाने का आयोजन हो रहा है। सभा ने स्वयं यह निश्चय किया है कि १०००) तथा २००) के दो पुरस्कार प्रति चौथे वर्ष उनकी पुण्य स्मृति में दिए जाया करें जिनका क्रम इस प्रकार होगा—

(१) १०००) का एक पुरस्कार संवत् २००५ से प्रति चौथे वर्ष दिया जाया करेगा।

(२) २००) का एक पुरस्कार संवत् २००३ से प्रति चौथे वर्ष ऐसे लेखक की सर्वश्रेष्ठ कृति पर दिया जायगा जिनकी मातृभाषा हिंदी न हो तथा जो प्रधानतः अहिंदी भाषी प्रांत में निवास करते हों।

ये पुरस्कार किन विषयों की रचनाओं पर दिए जाने चाहिए, यह प्रश्न अभी सभा के समक्ष विचाराधीन है। यथा संभव शीघ्र इसका निश्चय हो जायगा और उसकी घोषणा यथासमय कर दी जायगी।

इन दोनों पुरस्कारों के लिए सभा को १००००) की स्थायी निधि संकलित करनी है। सर्वप्रथम दिए जाने वाले दोनों पुरस्कार सभा ने अपनी साधारण आय में से देना निश्चित किया है। इस बीच स्थायी निधि के १००००) संचित कर लेने हैं। प्रत्येक हिंदी भाषी तथा प्रत्येक हिंदी प्रचारिणी संस्था से सभा का आग्रह है कि वह हिंदी के उस परम संरक्षक के निमित्त किए जाने वाले सदनुष्ठान में यथासाध्य अधिक से अधिक आर्थिक योग स्वयं देकर तथा अपने इष्ट-मित्रों से दिलाकर इसकी पूर्ति में सहायक हों। इससे हिंदी के उच्च कोटि के लेखकों का उत्साहवर्धन होकर उत्तमोत्तम ग्रंथों के प्रणयन को प्रेरणा मिलेगी और दिवंगतात्मा का परम प्रिय कार्य निरंतर बढ़ता रहेगा। आशा है स्वर्गीय डाक्टर महोदय के भक्तों और परिचितों को यह आयोजन रुचिकर होगा और वे इसके लिए अधिक से अधिक योग देकर और दिलाकर शीघ्र १००००) की स्थायी निधि संचित करने में सहायक होंगे।

काशी
विजया दशमी, २००२।

रामनारायण मिश्र
प्रधान मन्त्री
काशी नागरीप्रचारिणी सभा

दशमिक सिक्कों का नामकरण

भारत सरकार सिक्कों की वर्तमान पद्धति में परिवर्तन करके देश में दशमिक पद्धति के सिक्के चलाना चाहती है, इस पद्धति के अनुसार १०० सेंट का एक रुपया होगा, भारतीय जनता पर यह विदेशी शब्द "सेंट" अनावश्यक रूप से लाद न दिया जाय, इसके प्रतिकार का उपाय भारतीय जनता को अविलंब करना चाहिए, इसके अतिरिक्त सिक्कों में कुछ और सुधार भी आवश्यक हैं जिनका प्रस्ताव बहुत जोरदार समर्थन के साथ भारत सरकार के अर्थविभाग के समक्ष उपस्थित किया जाना चाहिए, एक तो सिक्कों अठन्नी-चवन्नी पर से भारत के प्रतीक कमल के अतिरिक्त अन्यान्य देशों के प्रतीक चिन्ह जैसे स्काटलैंड का थिसल्, आयरलैंड का पैमराक तथा इंगलैंड का गुलाब, हटा दिए जाने चाहिए, दूसरे देश का नाम "भारत" अथवा "भारतवर्ष" दिया जाना चाहिए तथा देवनागरी अंकों में देशव्यापी विक्रम संवत् का उल्लेख होना चाहिए।

इस संबंध में यह बात विचारणीय है कि सिंहल में, जहां सिक्कों की दशमिक पद्धति प्रचलित है, तामिल भाषा भाषी जनता 'सेंट' के लिये 'शतम्' शब्द का प्रयोग करती है तथा सिंहली भाषा-भाषी उसे 'सियस्' कहते हैं, सिंहली भाषा का 'सियस्' शब्द, हिंदी के 'सै' वा 'सौ' के समान ही संस्कृत 'शतम्' का तद्भव रूप है, नैपाल और मलय की जनता ने तो 'सेंट' को पूछा तक नहीं; वह पूर्व प्रचलित 'पैसा' से ही अपना काम चलाती है।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा की प्रबंध समिति ने अपने गत अधिवेशन में भारत सरकार के अर्थ विभाग के समक्ष निम्नलिखित प्रस्ताव उपस्थित करने का निश्चय किया है। आशा है हिंदी प्रेमी सज्जन तथा हिंदी प्रचारिणी एवं भारतीय संस्कृति की पोषक संस्थाएँ इससे सहमत होंगी और इन प्रस्तावों का समर्थन करते हुए भारत सरकार के अर्थ सदस्य के पास अविलंब अपनी सम्मति भेज देंगी।

१—रुपए के सौवें भाग का नाम 'शती' रखा जाय।

२—रुपए पर भारत का प्रतीक केवल कमल रहे, अन्यान्य देशों के चिह्न न रखे जायँ।

३—देश का नाम 'भारत' अथवा 'भारतवर्ष' अंकित किया जाय।

४—नागरी अंकों में विक्रम संवत् का उल्लेख हो।

रामनारायण मिश्र
प्रधान मंत्री
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

जातक

[प्रथम तथा द्वितीय खण्ड]

अनुवादक : भदन्त आनन्द कौसल्यायन

इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् पं० जयचन्द्र विद्यालंकार का कथन है कि "विश्व के वाङ्मय में 'जातक' जन-साधारण की सब से पुरानी कहानियाँ हैं; मनोरंजकता, सुरुचि, सरलता, आडम्बरहीन सौन्दर्य और शिक्षाप्रद होने में उनका मुक़ाबला नहीं हो सकता। ये बच्चों के लिये सरल और आकर्षक, जवानों और बूढ़ों के लिये भी रुचिकर और विद्वानों के लिये प्राचीन भारत के जीवन का जीता-जागता चित्रण करने के कारण अत्यन्त मूल्यवान हैं।"

प्रथम खंड, पृष्ठ संख्या ५४०—५५; डिमाई साइज़; सजिल्द मूल्य ५)

द्वितीय खंड, पृष्ठ संख्या ४६४—२४ डिमाई साइज़; सजिल्द मूल्य ५)

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अभूतपूर्व प्रकाशन

प्रेमघन-सर्वस्व

(प्रथम भाग)

'दो शब्द'-लेखक, माननीय श्री पुरुषोत्तमदास जी टंडन

परिचय-लेखक, स्वर्गीय आचार्य पंडित रामचंद्र शुक्ल

आधुनिक हिन्दी के एक निर्माता, हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के भूतपूर्व सभापति, स्वर्गीय उपाध्याय पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की सम्पूर्ण कविताओं का विशाल संग्रह-ग्रंथ। हिन्दी में प्रथम और अपूर्व काव्य। लेखक के चित्रों से सुसज्जित और सजिल्द।

मूल्य ४।)

साहित्य मंत्री—हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

रजिस्टर्ड नं० ६२६

हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित कुछ पुस्तकें

(१) सुलभ साहित्यमाला

१ भारत-गीत ≈)
२ राष्ट्रभाषा ॥)
३ शिवाबावनी ≈)
४ पद्मावत पूर्वार्द्ध १), १।)
५ सूरदास की विनयपत्रिका ≈)
६ नवीन पद्यसंग्रह १।)
७ बिहारी-संग्रह ≈)
८ सती कपणकी ॥)
९ हिन्दी पर फारसी का प्रभाव ॥≈)
१० ग्रामों का आर्थिक पुनरुद्धार १।)

(२) साधारण पुस्तकमाला

१ अकबर की राज्यव्यवस्था ३)

(३) वैज्ञानिक पुस्तकमाला

१ सरल शरीर-विज्ञान ॥), ।॥)
२ प्रारम्भिक रसायन १)
३ सृष्टि की कथा १)

(४) बाल-साहित्य माला

१ बाल नाटक-माला ।)
२ बाल-कथा भाग २ ।≈)
३ बाल विभूति ≈)
४ वीर पुत्रियाँ ।≈)

(५) नवीन पुस्तकें

१ सरल नागरिक शास्त्र ३)
२ कृषि प्रवेषिका १)
३ विकास (नाटक) ॥≈)
४ हिंदू-राज्य शास्त्र ३॥)
५ कौटिल्य की शासन-पद्धति १।≈)
६ गावों की समस्यायें १)
७ मीराँबाई की पदावली २॥)
८ भट्ट निबंधावली १।)
९ बंगला-साहित्य की कथा १।)
१० शिशुपाल बध २)
११ ऐतिहासिक कथायें ।॥)
१२ दमयन्ती स्वयंबर ॥)

नवीन पुस्तकें

१—मैथिली लोकगीत—रामइकबालसिंह 'राकेश', भूमिका लेखक—पण्डित अमरनाथ झा ३)
२—गोरखबानी—स्व० डाक्टर पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ३)
३—दीवाली और होली—(कहानी संग्रह) श्री इलाचन्द्र जोशी १॥)
४—महावंश—भदन्त आनन्द कौसल्यायन ३)
५—भोजपुरी लोकगीत—श्री दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह ६)
६—स्त्री का हृदय—(एकांकी नाटक) श्री उदयशंकर भट्ट १॥)
७—राजस्थानी लोकगीत—स्व० सूर्यकरण पारीक १)
८—सामान्य भाषाविज्ञान—डा० बाबूराम सक्सेना ४)
९—काव्यप्रकाश—मम्मटाचार्य, अनुवादक स्व० हरिमंगल मिश्र ६)
१०—समाचार-पत्र शब्दकोष—डा० सत्यप्रकाश डी० एस-सी० १॥)

प्रकाशक—श्रीरामप्रसाद थिल्डियाल, हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।
मुद्रक : श्रीगिरिजाप्रसाद श्रीवास्तव, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग

सम्मेलन-पत्रिका

हिन्दी साहित्य सम्मेलन की मुख-पत्रिका

माघ-फाल्गुन २००२

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन
प्रयाग

सम्मेलन-पत्रिका : माघ-फाल्गुन २००२

सम्पादक—श्री रामचंद्र टंडन

विषय-सूची

भाग ३३, संख्या ४, ५ : माघ, फाल्गुन २००२

सम्मेलन-पत्रिका

रामलला नहछू

[श्री चन्द्रबली पांडे]

रामलला नहछू तुलसी का नन्हा सा एक प्रबन्ध काव्य है पर वह विद्वानों पर इतना भारी हो रहा है कि जिसका कुछ ठिकाना नहीं है। कोई उसमें तुलसी की जवानी देखता है तो कोई उसको उनकी रचना ही नहीं समझता और कोई उसको जनेऊ के अवसर का समझता है तो कोई उसको विवाह के अवसर का बताता है। कहते सभी उसके विषय में कुछ न कुछ अवश्य हैं; विवाह के अवसर पर बना तो राम अवध में थे कहाँ जो वहाँ पर गाया जाता और यदि मिथिला में बना तो उसमें अवध का नाम कैसे आ गया ? आदि नाना प्रकार के प्रश्न तुलसी के प्रेमियों को सता रहे हैं। तुलसी भी इसके विषय में इतना ही कह कर रह जाते हैं कि

"रामलला कर नहछू अति सुख गाइय हो।
जेहि गाये सिधि होइ परम निधि पाइय हो॥
दसरथ राउ सिंहासन बैठि बिराजहिं हो।
तुलसिदास बलि जाहि देखि रघुराजहि हो॥
जे यह नहछू गावैं गाइ सुनावइँ हो।
ऋद्धि सिद्धि कल्यान मुक्ति नर पावइँ हो॥"

तुलसीदास ने 'नर पावइँ हो' में 'नर' का उल्लेख कर कोई अड़चन उत्पन्न की अथवा नहीं इसे तुलसी के समीक्षक जानें पर इतना तो प्रकट ही है कि इस नहछू का संबंध सभी नर-नारी मात्र से है और फलतः इसका फल भी ऋद्धि, सिद्धि और कल्याण ही नहीं मुक्ति भी है। है न मुक्ति की यह विचित्र पहेली कि कहाँ तो घोर शृंगार के कारण कुछ लोग तुलसी की रचना ही उसे नहीं मानते और कहाँ स्वयं तुलसीदास को उसमें मुक्ति दिखाई देती है। पर कीजियेगा क्या बात ही कुछ ऐसी है।

रामलला नहछू कब बना, क्यों बना आदि प्रश्नों पर फिर विचार किया जायगा। यहाँ अभी तो केवल इतना भर दिखाया जायगा कि नहछू का वास्तव में जनेऊ और विवाह से संबंध क्या है। सो प्रकट ही है कि नहछू मूलतः विवाह का विषय है उपवीत का नहीं।

परन्तु कितने दिनों से ऐसा हो गया है कि यज्ञोपवीत, समावर्तन और विवाह के संस्कार एक में मिल गए हैं। यहाँ तक कि कहीं कहीं विवाह के अवसर पर ही वर को जनेऊ भी पहना देते हैं। स्थिति तो यहाँ तक बिगड़ चुकी है कि जब बटु ब्रह्मचारी के वेष में विद्याध्ययन के निमित्त प्रस्थान करता है तब उसे कोहाँ कर जाना कहते हैं और उसको विवाह करा देने का वचन देकर कोई उसे मना लाता है और यहीं उसका समावर्तन हो जाता है। विवाह भी इसके बाद ही। परिणाम इसका यह हुआ है कि विवाह और यज्ञोपवीत में बस 'सेंदुर-दान' का अन्तर रह गया है और दोनों की रीति एक हो गई है। इसी से 'जानकी मंगल' के विषय में तो तुलसीदास ने लिखा है—

"उपवीत व्याह उछाह जे सिय राम मंगल गावहीं।
तुलसी सकल कल्यान ते नर नारि अनुदिनु पावहीं॥"

सारांश यह कि रामलला नहछू को लेकर इस प्रकार का शास्त्रार्थ करना व्यर्थ है। राम के विवाह के अवसर पर अयोध्या में किया क्या गया इसका भी पता यहीं से हो जायगा।

"गुनि गन बोलि कहेउ नृप माँडव छावन।
गावहिं गीत सुवासिनि, बाज वधावन॥१२७॥
सीयराम-हित पूजहिं गौरि गनेसहिं।
परिजन पुरजन सहित प्रमोद नरेसहि॥१२८॥
प्रथम हरदि वेदन करि मंगल गावहिं।
करि कुलरीति, कलस थपि तेल चढ़ावहिं॥१२९॥"

तात्पर्य यह कि अवध में हुआ सब कुछ चाहे राम भले ही वहाँ न रहे। पाषाण में प्राण-प्रतिष्ठा करनेवाली जाति के लिये इसमें असंभव क्या है? सीता के अभाव में जब सोने की सीता से यज्ञ सम्पन्न हुआ तब राम के अभाव में कोई कुलरीति कैसे छूट सकती है। संक्षेप में यह नहछू नर-नारी के गाने के विचार से रचा गया है कुछ राम का इतिहास बताने के लिये नहीं। जिन समीक्षकों को इसमें भाँति भाँति के दोष दिखाई देते हैं उन्हें कुछ अपनी दृष्टि की परीक्षा तुलसी से करा लेनी चाहिए और फिर उनकी कृतियों के परिशीलन में लगना चाहिए अन्यथा अनर्थ ही होता रहेगा। तुलसी का नहछू तुलसी का ही है और है 'तुलसीदास' का। छाप ही उसकी स्थिति स्पष्ट करती है कि वह दास तुलसी की रचना है कुछ कोरे 'तुलसी' की नहीं।

———

*साहित्य की परम्परा

[श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र]

आज आप लोगों के विचार विनिमय के इस अवसर पर मैं आवश्यक समझता हूँ कि साहित्य की अपनी परम्परा पर कुछ कहूँ। मेरा विश्वास है कि हमारे भविष्य के साहित्य में भी हमारी परम्परा नहीं बदलेगी। यह परम्परा मनुष्य की बुद्धि पर नहीं, प्रकृति के तथ्यों पर टिकी है। मैं यह तो नहीं कह सकता कि जो कुछ मैं कह रहा हूँ वही चरमसत्य है। सम्भव है कुछ मित्रों का दृष्टिकोण भिन्न हो। भारतीय परम्परा साहित्य और कला में जो कुछ मैं अब तक समझ सका हूँ वही मैं कहना चाहूँगा। साहस के साथ मैं यह तो नहीं कह सकता कि मैं आप लोगों को अपना कोई मौलिक दृष्टिकोण दे रहा हूँ, किन्तु हाँ, इतना विश्वास मुझे है कि आज जो कुछ भी मैं कहने चला हूँ, वे बातें मेरी नहीं, भारतीय साहित्य और कला की हैं।

मैं साहित्य की भारतीय विचार-धारा को दो रूपों में समझता हूँ। वैदिक काल से आज तक की विवेचना की यहाँ आवश्यकता नहीं। हमें तो यह देखना है कि उस विचार-धारा में वे दोनों रूप क्या हैं? (१) सृष्टि में अनासक्त आनन्द और (२) व्यक्तित्व के मोह से मुक्ति। सूत्र रूप में भारतीय पद्धति के ये ही दो स्तम्भ हैं।

हम हिन्दुओं में इस तरह का एक विचार है—एक दार्शनिक पद्धति है कि यह सृष्टि भगवान की विभूति है। उन्होंने लीला-विभोर होकर अपने को इस सृष्टि के अनेकत्व में विभाजित कर दिया है। साधारण लोग भी कहते हैं यह भगवान की लीला है। जो आगे बढ़ते हैं वे कहते हैं कि यह तो सब एक है। दृष्टि भेद से सत्य भेद दिखाई पड़ता है। इस सृष्टि के अनेकत्व को एकत्व में स्थापित करना ही मूल तक पहुँचना है। इसलिए इस सृष्टि के अनेकत्व में एकत्व स्थापित करने की विधि ही भारतीय साहित्यकारों का धर्म है। इसमें भिन्न-भिन्न दार्शनिक मत आते गये। पर यह बराबर चलती रही। थोड़ा सा भेद बौद्ध काल में हुआ था। वैदिक कर्म-काण्ड के प्रति जो धारणा थी बौद्धों ने उसकी प्रतिक्रिया में तर्क के बादल बनाये। किन्तु साहित्य में 'बुद्ध चरित' का निर्माण कालीदास की धारणा से मिला हुआ सा ही है। अतः यह दार्शनिक मतभेद साहित्य और कला को अधिक नहीं प्रभावित कर सका। आरम्भ से ही भारतीय लोक धारणा यही रही कि इस सृष्टि की रचना करने वाला, इसमें सर्वत्र समान रूप में रमता हुआ भी इसमें अनासक्त है। हमारे साहित्य के

---

* साहित्य परिषद नवलगढ़ के भाषण का सारांश। भाषण के अन्त में जो प्रश्न पूछे गये उनके उत्तर भी हैं।

उषःकाल में ही यह धारणा आ गई थी। इसका फल यह हुआ कि भारतीय कलाकार अपनी रचना में अनासक्त है और खोजने पर भी नहीं मिलता। नाम के सिवा भारतीय कलाकार के विषय में हम अधिक नहीं जानते। उसके वैयक्तिक व्यापार, उसकी जीवन की घटनायें कुछ भी नहीं पाते। अर्थात् वह साहित्य को व्यक्ति प्रधान न मान कर, समष्टि प्रधान मानता था। इसीलिए कलाकारों में उसमें लय हो जाने की धारणा है। इस विधान का ध्येय था समाज को स्वस्थ, सुन्दर और विकासशील बनाये रखना और ज्ञान का प्रकाश फैलाना। जीवन स्वयं एक कला है। जीवन की कला को जानने वाले को अन्य किसी कला को जानने की जरूरत नहीं। भारतीय कलाकारों ने जीवन की इसी कला को जानने की कोशिश की थी और आवेश के कारण जो कला उनके सामने आई उसे उन्होंने सत्य नहीं माना। प्राकृतिक कला को ही वे सत्य समझते थे। फल इसका यह हुआ कि हमारे यहाँ कला का क्रमागत विकास मिलता है, पर कलाकार का नहीं। वह मोह से परे था। 'मैं' की भावना उसके भीतर नहीं पहुँची। समाज के सत्य पर चलने को ही उसने अपनी सिद्धि और अभीष्टि मानी और वह उसका (समाज का) अंश बना रहा। अपने यहाँ जो योग परम्परा थी उसने ऋषियों को यह विशेष शक्ति देदी थी कि वे सत्य का अनुभव कर सकते थे। उस देन को कला में उतारने वाला ही सफल कलाकार माना जाता था। वे सत्य का अनुमान नहीं अनुभव करते थे काव्य के माध्यम से, और जो ऐसा कर सकता था वही सफल होता था।

हमारे यहाँ त्रिमूर्ति—ब्रह्मा, विष्णु और महेश-की महिमा सबसे पहले कवियों की कल्पना में आई थी। उन्होंने उस भावना को जो मूर्त रूप दिया उससे शंकर आदि दैवी विभूतियों की उत्पत्ति हुई। शंकर के रूप में गंगा, सर्प, चन्द्रमा-अग्नि-और विष की एक ही साथ अवस्थिति का क्या कारण है? आप जितने विरोधी तत्वों की कल्पना कर सकते हैं इस सृष्टि में सम्भवतः जितने भी विरोधी तत्व हैं शंकर में उन सब का सामञ्जस्य मिलता है। विरोधी-तत्वों के संघर्ष में ही उनका समन्वय भी है। यही शंकर है यही साहित्य और कला भी है। विरोधी तत्वों के संघर्ष में समन्वय स्थापित करना भारतीय साहित्य कार का लक्ष्य रहा है। जीवन में अशांति की कामना भयावह है साहित्य के माध्यम से ही यह धारणा आई। आज हम जिस शंकर की पूजा करते हैं, वह तो हमारे कलाकारों का ही दिया हुआ है। इस प्रकार निष्कर्ष यह ठहरता है कि किसी भी जगह जहाँ द्वंद्व है, संघर्ष है—उस संघर्ष को मिटा देना ही भारतीय साहित्य का मूलमंत्र है। व्यक्ति का समाज के साथ संघर्ष चलता है यह व्यक्तिवाद की धारणा हमारे लिये सदैव विदेशी रही है।

अब बातें उसी रूप में लीजिये। अधिक से अधिक किया क्या गया है? मनुष्य के जीवन को संस्कृत किया गया है। उसके आवेग पर संयम, संस्कृति का आवरण चढ़ा

दिया गया है। यही हमारे साहित्य का ध्येय रहा है। इसमें सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् भिन्न भिन्न नहीं-उनका एकत्व मिला हुआ रूप है भिन्न भिन्न विभागों में जीवन को देखने की पद्धति भारतीय साहित्य में नहीं। इन तीनों को एक साथ लेने की प्रवृत्ति ही दिखाई देती है। व्यापक रूप से जीवन एक है। ऐसा नहीं कि क्रोध के समय कुछ और प्रेम के समय दूसरा। पूर्ण जीवन पूर्ण प्रकृति से लेकर, बुद्धि से नहीं अनुभूति से-कलाकारों ने चित्रित किया है। वे भाव केवल कल्पना के नहीं बल्कि समस्त जीवन के हैं। सौन्दर्य के वर्णन में व्यक्ति का सौन्दर्य आधार नहीं रहा। 'ए थिंग आफ ब्यूटी इज़ ए ज्वाय फार एवर।' अधिकांश मात्रा में यूरोप का सारा सौन्दर्य भाव नारी सौन्दर्य पर ही टिका है। सौन्दर्य का जहाँ पार्थिव रूप ही आकर रह जायेगा, वहाँ वह सीमित रह जायेगा। लेकिन हमारे यहाँ सौन्दर्य की परिभाषा ही दूसरी है। महाकवि माघ के शब्दों में—

दृष्टोपिशैलः समुहुमुरारे अपूर्ववद्विस्मय माततान,
क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति, तदेव रूपः रमणीयताया।

कृष्ण ने रैवतक को बार बार देखा था। इस बार इस देखे हुए पर्वत को भी जब उन्होंने देखा तो वे सौंदर्य से अभिभूत हो गये। सौंदर्य के प्रभाव में यही बल है। कहने की शक्ति का यहाँ दम घुटने लगता है। 'किं कर्तव्य विमूढ़ता' की दशा आ जाती है। देखने वाले की शक्तियाँ शिथिल पड़ जाती हैं और वह विस्मय में विभोर हो जाता है। और तब क्षणेक्षणे यन्नवतामुपैति...इस रहस्य का उसे बोध होता है। सुन्दर वह है जो प्रतिक्षण नूतन दिखाई पड़े और वह वस्तु विराट् ही होगी। इसलिए कि वह चरम और चिरन्तन है। हमारे सौंदर्य का रूप व्यक्ति न होकर विराट है। विराट् में विपर्यय नहीं होता। बार बार देखे जाने पर भी उसके सारे रहस्य देखे नहीं जाते। विराट् का उद्बोधन करने वाले वन, पर्वत नदी आदि हैं। इसीलिये सौंदर्य की भावना अपने यहाँ व्यापक प्रकृति का पूर्ण आनन्द है। इस परिभाषा को यूरपवालों को भी लेना ही होगा। कीट्स की सुन्दरता एक व्यक्ति की सुन्दरता है। विराट् अपने रहस्यमय रूपों में नित्य नया दिखाई देता है। इसी विराट् के माध्यम से ही विराट् की कल्पना की जाती है, जिसे आप ईश्वर, या चरम शक्ति मानें। जो कुछ दिखाई पड़ता है, वह सर्वत्र एक रूप से व्याप्त और गुँथा हुआ है।

दुर्बोध और जटिल चरित्रों की सृष्टि जो यूरप से हमारे साहित्य में आ रही है इस जगत की वस्तु नहीं है। ड्यूमा और यूरप के अन्य प्रसिद्ध रोमान्टिक लेखक जिन्होंने सैकड़ों की संख्या में बड़े बड़े उपन्यासों की रचना की, यूरप की बढ़ती हुई सम्पत्ति के विलास के रूप में ही पैदा हुए और इस धन का उपयोग केवल भोग लिप्सा में होता रहा। इंगलैण्ड और फ्रान्स में विदेशों से चूस कर धन आया। चारों ओर असंतोष का वातावरण फैलने

लगा। उपन्यासों ने उसमें और भी योग दिया। उसका परिणाम हुआ युद्ध। मानसिक युद्ध भी उसी विकृति का फल है। दो दशाब्दियों में ही दो महान् युद्ध हो जाना इसका प्रबल प्रमाण है। पर उन उपन्यासों को बार बार पढ़ने को मन नहीं करता। संस्कृत पद्धति के ग्रंथों को बार बार पढ़ने की रुचि बनी ही रहती है। आप बार बार पढ़ते जाइये आपको बार बार पढ़ने की रुचि होगी। रूसी साहित्य तभी तक मान्य है जब तक कि साम्यवाद है। इसे आप बार बार पढ़ते जाइये, पर आपको संतोष न होगा चाहे टालस्टॉय की 'वार और पीस' ही क्यों न हो। दूसरी तरफ रामचरित मानस को लीजिये। इसे आप केवल धर्म ही समझें, ऐसी बात नहीं। अपने यहाँ तो धर्म और साहित्य का एक ही रूप रहा है। जो बातें उसमें लिखी गई हैं, वे लिखी तो गई हैं साहित्य के लिए, लेकिन हमारे यहाँ वे ही धर्म थीं।

तीक्ष्णा नारुन्तदा बुद्धिः कर्मशान्तम् प्रतापवत्
नोऽपतापी मनः सोष्मः वागेकाः वाग्मिनः शतः

बुद्धि का गुण है तीक्ष्ण होना। किन्तु ऐसी तीक्ष्ण बुद्धि जो मर्मभेदिनी न हो, जो दूसरे का अपकार न करदे। यूरोप की बुद्धि यही काम करती है। समाज पर उसका क्या प्रभाव पड़ेगा इसकी उसे परवाह नहीं। विध्वंसात्मक कार्य ही वह करती चली गई है। यह भी ध्यान रहे कि कर्म प्रतापवान हो, पर मूल में शांत हो। मन के भीतर अहंकार भले ही हो, पर उसका दाह दूसरों को जलानेवाला न हो। यह तो एक निश्चित सी बात है कि समाज में चरित्रों का जैसा विधान किया जाता है, उन्हें वैसे ही रहना पड़ता है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता का यह अर्थ नहीं कि दूसरों के लिये क्लेशकर हों। व्यक्तिगत वृत्तियों के कारण समाज के अन्य अंगों को हानि न पहुँचे।

तात्पर्य यह है कि साहित्य की सृष्टि ऐसी हो जो सब के लिये उपयोगी हो, अकल्याण-कारी नहीं। और जिसका आधार मनुष्य की प्राकृतिक प्रवृत्तियाँ हों न कि कोई अनस्थिर राजनैतिक वाद। समाज के व्यक्तियों को ऐसा रहना चाहिए कि दूसरों को वे हानि न पहुँचावें। दूसरों के लिये ही हरेक को रहना है, फिर दूसरों को हानि पहुँचानेवाला बनकर कोई रहेगा कैसे? साहित्य की सृष्टि से समाज का रास्ता साफ होता है।

दूसरे उसके मूल में लोक कल्याण की भावना हो, क्षणिक उत्तेजना नहीं, क्योंकि उत्तेजना में प्रतिक्रिया अवश्य रहती है। अतः जो बात कही जाय उसमें प्राकृतिक विवेक हो, क्षणिक उत्तेजना नहीं। सत्य की अनुभूति चिरंतन है। शेक्सपियर के कथोपकथन असाधारण ओज और शब्द ध्वनि से भरे हैं कालीदास में एक भी गंभीर दर्शन की बात नहीं, लेकिन उसमें गहरे जीवन की बात है। वह तो साहित्य का सत्य है। दुर्वासा के शाप द्वारा दुष्यंत और शकुंतला के विछोह में लोकधर्म की भावना

है। इसका विवेचन यही है कि शकुंतला का धर्म था अपने प्रेम के लिए ही न होना। किसी व्यक्ति के प्रेम में विभोर होकर अतिथिधर्म भूल जाने की कल्पना कालीदास से नहीं हो सकती थी। अपने प्रेम की तल्लीनता में शकुन्तला ने दुर्वासा से विमुख होकर लोकधर्म की उपेक्षा की और उसका फल भी उसे उठाना पड़ा कि उसका प्रेमी उसे पहचान न सका। दुष्यन्त का विरह जन्य दुःख इसलिये है कि पुत्र के अभाव में उसके पितरों को जल नहीं मिल सकेगा। शकुन्तला के वियोग में उसके गिरे हुए आँसू इसी कसक को प्रकट करते हैं। उस युग के कर्त्तव्य की यह मान्यता आज भी मान्य है।

केवल लोक कल्याण समाज के सुखी और सुन्दर रहने की भावना संस्कृत साहित्य में मिलती है। अब हम इधर हिन्दी साहित्य में आते हैं। लेकिन एक बात छूट जाती है, बौद्धों की। अश्वघोष ने बुद्ध को पराजित कराने के लिये मार का उपयोग किया है। मार शब्द का संबंध मृत्यु से है। कालिदास ने शंकर को विचलित करने के लिए मार को न बुलाकर कामदेव को बुलाया है। काम वाँछनीय है, लेकिन अश्वघोष ने उसे अवाँछनीय बना दिया। अश्वघोष की बौद्ध-पद्धति में मार के बुलाने पर घोर अंधकार की सृष्टि हो जाने की बात है। मार बुद्ध को पराजित न कर सका, उस बुद्ध को जो पति और पिता हो चुका था जिसने रमणी के शरीर का रस लिया था। पर किशोरावस्था में ही भिक्षु बनने की प्रणाली प्रकृति सह नहीं सकी अतः प्रतिक्रिया हुई और बौद्धों के अधिकांश भिक्षु मार से पराजित हुए। प्रकृति के सत्य तर्क और आडम्बर से मिट नहीं सकते। प्रकृति के तथ्यों की सबल अनुभूति पर ही सृष्टि का व्यापार है। अश्वघोष इसे नहीं समझ सका। शंकर ने काम को भस्म तो किया, पर पार्वती की तपस्या के रूप में प्रकृति के धर्म को स्वीकार कर शरीर हीन कामदेव को दुर्जेय भी बना दिया।

अश्वघोष की पद्धति में केवल बुद्धि का विभव है, पर कालिदास में जीवन के सत्य हैं। प्रकृति अपने पथ का अवरोध सहन नहीं कर सकती।

प्रकृति का सर्वोच्च विकास मनुष्य में ही अभी तक इस पृथ्वी पर सम्भव हो सका है। मनुष्य में आकर प्रकृति विभिन्न मनोवेगों में अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करती है। तर्क और मीमांसा की शक्ति मनुष्य के भीतर जो देखी जाती है वह प्रकृति के चेतन तत्व की प्रक्रिया है। विचार के आधार पर कर्म संचय की शक्ति उससे केवल मानव प्राणी को मिली है इसीलिए—मनुष्य से नीचे के जीवों में पाप या पुण्य नहीं। यूरप में यह बात आज आ रही है, लेकिन हमारे विचारकों ने इसे दो हजार वर्ष पहले ही कह दिया था। हमारे महर्षियों ने जिन्होंने तत्व-दर्शन किया, इन बातों को जान लिया था। हमारे कवियों को भी इन बातों को मानना पड़ा। बौद्धों ने इसे नहीं माना, उन्होंने केवल बुद्धि के बल पर जीवन का मापदण्ड बनाना चाहा। लेकिन बुद्धि अपूर्ण है, अतः सीमित बुद्धि के

आधार पर बनाये गये मापदण्ड सत्य नहीं। दूसरी तरफ हमारा साहित्य अनुभूति को लेकर चला, क्योंकि अनुभूति तो वही होगी, जो सत्य है। विचार की स्थिति में बुद्धि भेद बराबर बना रहता है किन्तु अनुभूति भेद प्राणि जीवन में नहीं मिलता। अतः हमें आगाह होना पड़ेगा कि सत्य बुद्धि से नहीं मिलता, आंशिक सत्य भले ही पाया जाता हो। सत्य का मिलना तो अनुभूति पर निर्भर है। अनुभूति से पाई हुई वस्तु जा नहीं सकती। शब्द वहाँ असफल हो जाते हैं।

भारतीय साहित्य का आधार अनुभूति ही है। चेतन होना प्रकृति का गुण है। आजकल तो विशेषतः नवीन साहित्यकारों के सामने कई समस्यायें हैं। हवा में उड़ा देने वाली बात बुद्धि में ही आती है। हमको अधिकार है कि हम अपने को मिटा देवें, लेकिन दूसरों को हानि पहुँचाना हमारे अधिकार के अंतर्गत नहीं। यही तो पाप है। पाप की पहली परिभाषा यही है कि जिससे हमारा समाज नीचे की ओर जाता है। एक उदाहरण और दूँगा। इस पृथ्वी चक्र के दोनों ओर सुमेरु और कुमेरु के बीच इसका चक्र पूरा होता है जीवन और मृत्यु भी इस तरह हमारी स्थिति के दोनों छोर हैं जिनमें हमारा झुकाव मृत्यु की ओर ही अधिक है। साहित्यकार को अपने साहित्य में मृत्यु के आकर्षण को रोकना है। ऐसा न करना ही अशुभ है। न करने की बात हम पहले करते हैं, निषेध के करने में आकर्षण है। अतः ऐसा साहित्य कल्याणकारी नहीं हो सकता। जीवन को जीवन की ओर आकर्षित करना ही हमारे साहित्य का मूल ध्येय रहा है। यही कारण है कि हमारा साहित्य दुःखान्त या निराशा के धरातल पर नहीं पैदा हुआ। समाज में हमारा नित्य का व्यवहार है, वह व्यवहार हमको और जिससे हम व्यापार करते हैं उसको जीवित करता है। कल्पना से चरित्र नहीं गढ़े जाते उनकी सही अनुभूति में ही उनकी सचाई है जहाँ जीवन की पकड़ नहीं, अनुभूति नहीं, वह कल्पना की चीज है!

हमारे साहित्य की बस आज एक ही कसौटी है और वह यह कि उसमें जीवन वाँछित है या नहीं। जो साहित्य जीवन को स्वीकार करता है, वह वांछित है। जीवन को अवांछनीय समझना और अस्वीकार करना भारतीय साहित्य की पद्धति नहीं। पर आज हम उस साहित्य का निर्माण कर रहे हैं। अतः उसका अर्थ है हमारे चेतन की समाप्ति। मृत्यु की ओर आकर्षण। हम में यह दम नहीं रह गया है कि हम चेतन हैं, क्योंकि चेतन का तो नाश कभी होता ही नहीं। जो जीना चाहेगा—जो जीवन को अपना लेगा उसका अंत कहीं है नहीं।

एक बात मैं आपको और कह दूँ यहाँ समष्टि रूप में जीवन स्वीकृत किया गया है, विभागों में नहीं इस रहस्यमयी सृष्टि में जीवन की विजय हो दुःख और सन्ताप

से मुक्ति मिले, भारतीय दार्शनिक वैज्ञानिक और कवि सब किसी की यही कामना है। इसी के लिए उन्होंने साधना की थी, और उसी बल पर आज हम जीवित हैं।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्॥

दुःख और सन्ताप से छूटकर कल्याण का अधिकारी बनना हमारी जातीय कामना है।

साहित्यकार आपको विषाद भी दे सकता है, पर वह कल्पना का नहीं, जीवन का विषाद होगा। वह सदैव मार्ग-प्रदर्शन का काम करेगा।

आवेश की दशा में निकलनेवाले आँसू उतने मूल्यवान् नहीं होते जितने कि रोकने की चेष्टा में निकल पड़नेवाले, गंगा का जल सब से महान् वहाँ है जहाँ वह पर्वत के नीचे बन्द है इसलिए अलभ्य है।

भावनाओं के कैद करने की पद्धति यहाँ नहीं है।

भावनाओं में बह जाना तो 'रोमान्स' है जो यूरोपियन साहित्य की पद्धति है।

प्रश्न—तर्क से ही तो सत्य खुलता है।

उत्तर—कैसे कहूँ, तर्क किसी तथ्य पर टिका रहेगा? तर्क से नया तथ्य नहीं दिया जा सकता, नयी व्याख्या दी जा सकती है।

प्रश्न—क्या बुद्धि में सत्य नहीं आ सकता?

उत्तर—आंशिक बुद्धि को मैं भी अस्वीकार नहीं करता। केवल अनुभूति को बुद्धि से ऊपर मानता हूँ।

प्रश्न—बुद्धि में अनुभूति सम्मिलित होती है।

उत्तर—तो फिर वहीं तुलसीदास पैदा होते हैं, जिनके साहित्य से मेरा कोई विरोध नहीं।

हिन्दी में प्रकृति-चित्रण

[श्री त्रिलोकीनारायण दीक्षित एम० ए०]

हिन्दी कविता में प्रकृति वर्णन की जो परंपरा चली आ रही थी वह बहुत कुछ सीमित और एकदेशीय थी। उसमें प्रकृति को कोई स्वतंत्र स्थान प्राप्त न हो सका। रूढ़ि के अनुसार षड्ऋतु और बारहमासे लिखकर या नायक-नायिका के रति, विरह आदि भावों को उद्दीप्त करने के लिए, प्रकृति के कुछ चुने हुए दृश्यों को रखकर, और कुछ प्राकृतिक

वस्तुओं के नाम भर गिनाकर, कवि लोग अपने मुख्य विषय पर आ जाते थे। आलंबन रूप में प्रकृति को प्रधानता उन्होंने नहीं दी, इसीलिए प्रकृति के स्वतंत्र-वर्णन और प्रकृति के सूक्ष्म-निरीक्षण का हिन्दी की प्राचीन कविता में प्रायः अभाव है।

प्रकृति के स्वतंत्र वर्णन हमें संस्कृत कविता में पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं, परन्तु खेद है कि हिन्दी कवियों ने संस्कृत की इस प्रणाली पर हिन्दी काव्य में प्रकृति का समावेश नहीं किया। प्राकृतिक दृश्यों की ओर इस प्रकार का अनुराग और सूक्ष्म दृष्टि प्राचीन संस्कृत काव्य की एक ऐसी विशेषता है जो फारसी या अरबी के काव्य-क्षेत्र में नहीं पाई जाती, फिर जाकर योरप के कवियों में ही यह कहीं मिलती है। अँग्रेजी साहित्य में वर्डस्वर्थ शैली और मैरिडिथ आदि में प्राचीन संस्कृत साहित्य के समान ही सूक्ष्म प्रकृति-निरीक्षण और मनोरम रूप विधान पाया जाता है। परन्तु प्राचीन भारतीय और नवीन यूरोपीय प्रणाली में पीछे थोड़ा लक्ष्य भेद हो गया। भारतीय प्रणाली में कवि के भाव का आलंबन प्रकृति ही रही और उसके स्वरूप का प्रत्यक्षीकरण ही कवि का एक स्वतंत्र लक्ष्य दिखाई पड़ता है। प्रकृति के ऊपर अपनी भावनाओं के आरोप की चाह उसे अधिक नहीं थी। वह प्रकृति के दृश्यों पर अपनी वासनाओं को छोप कर अपनी कल्पना के बल पर एक नवीन सृष्टि करना नहीं चाहता था। पर योरोपीय काव्य क्षेत्र में धीरे-धीरे यह मत प्रचार पाने लगा कि "प्राकृतिक दृश्यों का प्रत्यक्षीकरण मात्र तो स्थूल व्यवसाय है; उनको लेकर कल्पना की एक नूतन सृष्टि खड़ी करना ही कवि-कर्म है।" उक्त प्रवृत्ति के अनुसार पाश्चात्य कवियों ने प्रकृति के नाना रूपों के बीच व्यंजित होनेवाली भावनाओं का बड़ा ही मार्मिक और सुन्दर उद्घाटन किया है। अपनी कल्पना के सहारे प्रकृति के दृश्यों के बीच नाना व्यापारों और भावों की झाँकियाँ दिखलाते हुए ये कवि कभी प्रकृति को मानव-भावनाओं से ओत प्रोत करते हैं और कभी उनमें दैवी शक्ति का आवास मानकर उनमें जीवनी शक्ति का दर्शन करते हैं। तभी तो अंग्रेजी कवि शैली पछुँवा हवा (vest wind) को संबोधन कर कहते हैं।

Oh! lift me as a leaf, a wave, a cloud!
I fall upon the thorns of life! I bleed!

इस प्रकार के उद्गार प्रकृति की ओर सच्चे अनुराग के कारण ही आ सकते हैं। कवि प्रकृति को एक सचेतन साथी के रूप में देखता है। प्रकृति को इस आध्यांतरिक (subjectiv) दृष्टिकोण से देखने की प्रवृत्ति अर्थात् उस पर अपनी भावनाओं का आरोप करने की चाल हिन्दी के छायावादी कवियों में बहुत प्रचारित हुई।

आधुनिक काल में कवि गण प्रकृति की ओर अधिकाधिक झुकने लगे। इस आन्दोलन के पोषक के रूप में प्राचीन संस्कृत कवियों के प्रकृति-वर्णन तो थे ही पर अंग्रेजी

साहित्य में प्रचलित प्रकृति-चित्रण से भी इस ओर हमारे कवियों को विशेष प्रेरणा मिली। फलतः काव्य में प्रकृति-वर्णन का पुनः संस्कार हुआ और आज कल प्रकृति की नई शैलियाँ देखने को मिलती हैं।

प्रकृति काव्य में दो प्रकार से आती है, एक तो सापेक्ष रूप में और दूसरे निरपेक्ष रूप में। सापेक्षरूप में प्रकृति (१) काव्यगत पात्रों की लीलाभूमि या पृष्ठभूमि के रूप में जैसे—'प्रिय प्रवास' में वर्णित सन्ध्यावर्णन आदि; (२) काव्यगत पात्रों के भावों को उद्दीप्त करने के लिए जैसे रति आदि के उद्दीपन के लिए चाँदनी, मलय समीर, वसंत, वाटिका आदि का वर्णन और (३) काव्यगत पात्रों की भावनाओं को दिखाने के लिए, उनके सुख दुख से रंजित होकर, अर्थात् किसी विशेष भाव से युक्त पात्र प्रकृति को कैसे देखता है—जैसे विरह से दग्ध नायिका का टेसू को अंगारे के समान देखना या अपने दुख से दुखित नायिका के ये वचन कि 'सकल दिशायें आज रो सी रहीं हैं।' इस प्रकार सापेक्ष रूप में प्रकृति तीन रूपों में काव्य में चित्रित होती है। इसके अलावा एक चौथे प्रकार से भी प्रकृति का उपयोग होता है, वह है अलंकारों द्वारा। प्रकृति के विस्तृत क्षेत्र से नाना उपमा रूपक आदि लेकर बड़ी रोचकता और सरलता से अपने भावों को दूसरों पर व्यक्त किया जा सकता है। अतः यह चौथा प्रकार भाव से कम और काव्य भाषा से अधिक संबंध रखता है। उपरोक्त प्रकार के चारों वर्णन प्राचीन संस्कृत काव्यों में मिलते हैं।

निरपेक्ष अर्थात् काव्यगत पात्रों से स्वतंत्र होकर स्वयं आलंबन रूप में प्रकृति के वर्णन दो प्रकार से होते हैं। पहला प्रकार है जहाँ पर प्रकृति के बाह्य सौन्दर्य का वर्णन होता है जिसे बाह्य (Objective) सौन्दर्य चित्रण की प्रणाली कह सकते हैं। इसके अंतरगत परंपरागत ऋतु वर्णन, प्रभात वर्णन, संध्यावर्णन, नगरवर्णन आदि आ सकते हैं। इस प्रकार प्रकृति वर्णन भारत में बहुत काल से चला आ रहा है। महाकाव्यों में तो ऐसा प्रकृति वर्णन उनका एक आवश्यक लक्षण माना गया है। दूसरा प्रकार है प्रकृति का आध्यान्तरिक (Subjective) चित्रण, अर्थात् कवि की भावनाओं से रंजित चित्रण। इस प्रकार के चित्रण में कवि की कल्पना प्रकृति को सजीववत् नाना व्यापार करते देखती है। वह उसकी संवेदना से सचेतन, साभिप्राय और सहृदय (हृदय से युक्त) हो जाती है और कवि की वासनायें उसमें प्रतिबिम्बित होने लगती है। पन्त जी के शब्दों में—

> "इस तरह मेरे चितेरे हृदय की,
> वाह्य प्रकृति वनी चमत्कृत चित्र थी।"

आ० क० पृ० १३ 'पर्वत प्रदेश में पावस'

अपनी वासनाओं का आरोप करके, किस प्रकार कल्पना के सहारे एक नूतन सृष्टि खड़ी करने की प्रवृत्ति पीछे के योरोपीय कवियों में आरही थी, और हमारे आधुनिक छाया-

वादी कवियों में भी इस प्रवृत्ति के दर्शन हुए थे, इस ओर पहले संकेत किया जा चुका है। इस प्रकार के आध्यान्तरिक वर्णन के तीन स्वरूप देखने को मिलते हैं। पहला वह जहाँ वर्ण्य वस्तु गौण और कवि की कल्पना ही प्रधान होती है और वह उसमें नाना प्रकार के रूपों और व्यापारों को देखता है जैसे अंग्रेजी कवि शैली का 'स्काइलार्क' अथवा सुमित्रानंदन पंत के 'बादल' की निम्नलिखित पंक्तियाँ

'दमयन्ती-सी कुमुद कला के
रजत कणों में फिर अभिराम
स्वर्ण हंस से हम मृदु ध्वनिकर
कहते प्रिय संदेश ललाम।'

-'फिर, 'चूर्ण-चूर्ण कर वज्रायुध से
भूधर को अति भीमाकार
मदोन्मत्त वासव सेना से
करते हम नित वायु विहार।'

अथवा पावस का यह व्यापार—

'उड़ गया अचानक, लो, भूधर
फड़का अपार पारद के पर।'

इसी श्रेणी के प्रकृति वर्णन के अंतरगत होंगी। इस प्रकार के चित्र प्रकृति के बाह्य (Objective) वर्णन मात्र से भिन्न हैं। 'प्रसाद' के 'किरण', 'बादल' 'निर्झर गान', स्वप्न, शिशु इत्यादि; सियारामशरण के 'दूरागत' 'तान' 'किरण घर' 'वीणा' 'पथ' इत्यादि ; पंत के 'छाया', 'पल्लव', 'आँसू', 'बादल' आदि; तथा निराला के 'यमुना के प्रति' आदि में इसी प्रकार का प्रकृति-चित्रण है।

दूसरे प्रकार के आध्यान्तरिक वर्णन वे हैं, जहाँ कवि की कल्पना प्रकृति का मानवीकरण कर देती है। कवि प्रकृति में सौन्दर्य्य पाता है और उसकी मानव सौन्दर्य के रूप में अपने काव्य में प्रतिष्ठा करता है। इस मानवीकरण की प्रणाली में प्रकृति के नारी रूप के कुछ बहुत ही सुन्दर और विशद चित्र उतरे हैं। इन चित्रणों में नारी का 'प्रिया' रूप ही कवियों को अधिक मुग्धकर हुआ है और कवियों ने उसके नाना रूपों और व्यापारों को बड़ी मधुर कल्पना से रंजित किया है। 'निराला' जी की 'जूही की कली' और 'शेफालिका' में प्रकृति का चित्रण एक कामुक नायिका के रूप में हुआ है। उनकी संध्यासुन्दरी का एक चित्र देखिये—

"दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है,

वह संध्या सुन्दरी परी-सी
तिमिराञ्चल में चंचलता का नहीं कहीं आभास,
मधुर-मधुर हैं दोनों उसके अधर—
किन्तु गंभीर—नहीं है उनमें हास विलास।
हँसता है तो केवल तारा एक
गुंथा हुआ उन घुँघराले काले-काले बालों से
हृदय राज्य की रानी का करता है वह अभिषेक।
अलसता की सी लता
किन्तु कोमलता की वह कली
सखी नीरवता के कंधे पर डाले बाँह
छाँह सी अम्बर पथ से चली।" इत्यादि

परिमल पृ० १३५-१३६

रामकुमार वर्मा की रजनी बाला का अभिसार-प्रिय नारी रूप भी बहुत आकर्षक है—

"इस सोते संसार बीच सजकर जगकर रजनी बाले!
कहाँ बेचने ले जाती हो ये गजरे मोतीवाले।
कौन करेगा मोल सो रही हैं उत्सुक आँखें प्यारी,
मत कुम्हलाने दो सूनेपन में इनकी निधियाँ न्यारी।
होने दो प्रतिबिंब विमुज्जित, लहरों ही में लहराना,
लहर लहर यदि चूमे भी तो किंचित् विचलित मत होना।
यदि प्रभात तक कोई आकर तुमसे हाय न मोल करे,
तो फूलों पर ओस रूप में बिखरा देना ये गजरे।"

कहीं-कहीं पर कवियों ने प्रकृति का 'सजनि' और 'माँ' के रूप में भी दर्शन किया है। वीणा में सुमित्रानंदन पंत प्रकृति को 'माँ' कह कर संबोधित करते हैं—

"क्या हिम का अकरुण आघात
सह लेगा इसका मृदुगात
यही निबल कलिका लतिका का
माँ! क्या वंश बढ़ायेगी?
मधुप बालिका का क्या यह ही
माँ! मानस बहलायेगी।"

तीसरा आध्यान्तरिक वर्णन का स्वरूप वह है जहाँ कवि प्रकृति में रहस्य दर्शन करता है। वह प्रकृति को दैवी शक्ति और सौन्दर्य से पूर्ण समझता है और प्रकृति

के नाना व्यापारों में अलौकिक तथ्यों की ओर संकेत पाता है, जैसे—

"मैं इस झरते निरझर में प्रियवर ! सुनती हूँ वह गान,
कौन गान ? जिसकी तानों से परिपूरित हैं मेरे प्राण !
कौन प्राण ? जिसको निशि-वासर रहता एक तुम्हारा ध्यान,
कौन ध्यान ? जीवित सरसिज को जो सदैव रखते अम्लान ॥"

अथवा—

"देख वसुधा का यौवन भार
गूँज उठता है जब मधुमास;
विधुर-उर के-से मृदु उद्‌गार
कुसुम जब खिल पड़ते सोच्छ्‌वास;
न जाने सौरभ के मिस कौन
सँदेशा मुझे भेजता मौन।" इत्यादि

[पंत—मौन निमंत्रण
पल्लव पृ० ४६-४६]

प्रकृति में रहस्य-दर्शन की यह प्रवृत्ति पंत, 'प्रसाद' महादेवी, रामकुमार आदि छायावादी तथा रहस्यवादी कवियों की प्रकृति सम्बन्धी कविताओं में प्रायः मिल जाती है। 'प्रसाद' जी को निर्झर के प्रवाह में 'कोई गहरी छिपी हुई बात' दिखाई पड़ती है।

"मधुर है स्रोत, मधुर है लहरी
न है उत्पात घटा है छहरी
मनोहर झरना
कठिन गिरि कहाँ विदारित करना
बात कुछ छिपी हुई है गहरी
मधुर है स्रोत मधुर है लहरी।" जयशंकर 'प्रसाद'

रामकुमार वर्मा जी भी फटे से बादलों में प्रिय का हास देखते हैं—

"प्रिय तुम्हारा हास आया
इन फटे से बादलों में कौन-सा मधुमास आया ?"

इस प्रकार से प्रकृति में रहस्य-दर्शन की प्रवृत्ति हिन्दी में जायसी आदि सूफियों को छोड़कर प्राचीन कवियों में नहीं मिलती। आधुनिक काल में इस प्रवृत्ति का विकास 'छायावाद' के प्रभाव से हुआ है। आध्यान्तरिक चित्रण में प्रकृति विशेष आकर्षक और प्रिय हो जाती है और वह हमारे अधिक निकट आ जाती है। इसका कारण यह है कि प्रकृति को जब हम जड़ रूप में देखते हैं तब उसके सौन्दर्य से हमारा वाह्य सम्पर्क मात्र ही

होता है। परन्तु जब कवि उसे जीवन-दान देकर उसमें आत्मा और मन की भी प्रतिष्ठा कर देता है तब हम उसके बाह्य सम्पर्क मात्र से सन्तुष्ट नहीं हो सकते। उसमें आत्मीयता की प्रतिष्ठा हो जाने से वह केवल हमारे लोभ की वस्तु न रहकर प्रेम की वस्तु बन जाती है। इसी सजीव रूप में छायावादी कवियों ने प्रकृति में एक सचेतन साथी की खोज की है।

ऊपर प्रकृति-वर्णन की भिन्न-भिन्न प्रणालियों की ओर संकेत किया गया है। आधुनिक हिन्दी कविता में प्रायः सभी प्रणालियों की कविता मिलती है। वैसे तो उपरोक्त सभी प्रणालियों के प्रकृति-चित्रण में पर्याप्त उत्साह दिखाई पड़ता है फिर भी दो में विशेष नवीनता है। अन्तिम अर्थात् आध्यान्तरिक (Subjectiv) चित्रण की प्रणाली बहुत कुछ नवीन है। (और ऊपर इस पर कुछ विस्तार से लिखा है) इसका मार्मिक और सुन्दर काव्य में सबसे अधिक प्रयोग दिखाई पड़ता है। दूसरा अलंकार रूप में प्रकृति के प्रयोग में भी विशेष उत्साह और नूतनता दिखाई पड़ रही है। अलंकार रूप में प्रकृति का प्रयोग यद्यपि प्राचीन काल से होता चला आ रहा है। उपमाओं के लिए कालिदास प्रकृति के ही मनोरम दृश्य प्रायः लेते रहे हैं और उनकी उपमा प्रसिद्ध है परन्तु आजकल प्रतीकों और रूपकों के द्वारा नाना भावों, रूपों और तथ्यों की व्यंजना की एक शैली ही चल पड़ी है। इसमें कुछ तो प्राचीन शैली का पुनर्विकास हुआ है और कुछ पाश्चात्य साहित्य की प्रतीक शैली से प्रेरणा मिली है। यहाँ इस शैली के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

निराला अपनी 'तुम और मैं' नामक कविता में प्रकृति से ईश्वर और जीव के संबंध की उपमायें रखते हैं·

"तुम गंध कुसुम कोमल पराग,
मैं मृदु-गति मलय-समीर।

× × × ×

तुम आशा के मधुमास और मैं पिक कल कूँजन तान।"

(परिमल पृ० ८६)

और जंगबहादुर सिंह तिरस्कृत प्रेम में लिखते हैं—

"उमड़-घुमड़ कर हृदय-गगन में,
दुख के बादल उठते हैं।
अश्रु-वृष्टि में धैर्य सहन की,
पुष्ट भित्ति जर्जरित हुई।"

[माधुरी, अप्रैल १९४३]

परन्तु इस शैली के प्रकृति वर्णन में जयशंकर 'प्रसाद' का सर्वोच्च स्थान है।

कालिदास की भाँति उन्होंने भी प्रकृति के अक्षय भंडार से उपमा और रूपकों की सृष्टि की। 'प्रेम पथिक' से एक सुन्दर दृश्य देखिये :

"खेल खेल कर खिली हृदय की कली मधुर मकरन्द हुआ;
खिलता था नव प्रणयानिल से नंदन कानन का अरविंद।
विमल हृदय आकाश मार्ग में अरुण विभा दिखलाता था;
फैल रही थी नव जीवन-सी वसंत की सुखमय संध्या।
खेल रही थी नव सरवर में तरी पवन अनुकूल लिए,
सम्मोहन वंशी बजती थी नव तमाल के कुंजों में।" इत्यादि

और आँसू में तो इस प्रकार के उदाहरणों की भरमार है। दो उदाहरण देखिये —

"शशि-मुख पर घूँघट डाले, आँचल में दीप छिपाये,
जीवन की गोधूली में कौतूहल से तुम आये।"
"बस गई एक बसती है स्मृतियों की इसी हृदय में,
नक्षत्रलोक फैला है मेरे इस नील निलय में॥"

सूर का नायिका-भेद

[श्री महावीर सिंह गहलोत, एम० ए०]

'साहित्य लहरी', सूरदास कृत एक रीति रचना है और इसका हेतु भी है; अधिकारी कृष्णदास (अष्टछाप) को अलंकार, नायिका, रस आदि का ज्ञान कराना।[1] 'साहित्य लहरी' के इस प्रतिपादित रूप से हिन्दी साहित्य के रीति साहित्य का विकास भी स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाता है। अभी तक सम्भावना प्रकट की जाती रही कि—"रस मंजरी (नंददास कृत) भाषा-साहित्य में कदाचित् नायिका-भेद का पहला ग्रंथ है।" पर वस्तुस्थिति कुछ अन्य ही है। इस क्षेत्र में अग्रज रहने का श्रेय कृपाराम को है। इन्होंने वि० संवत् १५९८ में 'हिततरंगिनी' नामक ग्रंथ की रचना की। ग्रंथ का हेतु, उसका स्थान, उसका कारण क्या है? कृपाराम जी से ही सुनिए—

'रचौं ग्रंथ कवि मत धरे, धरे कृष्ण को ध्यान।
राखे सरस उदाहरन, लक्षनजुत सज्ञान॥३॥

---

[1] सम्मेलन-पत्रिका, भाग ३२ संख्या ११ पृष्ठ ६।

बरनत कवि सिंगार रस, छंद बड़े विस्तारि।
मैं बरन्यों दोहान बिच, यातें सुघर बिचारि ॥४॥
ग्रंथ अनेक पढ़े प्रथम, पुनि बिचारि के चित्त।
मैं बरन्यों सिंगार रस, सजन तिहारे हित्त ॥५॥[1]

इस कथन से इतना और ज्ञान हो जाता है कि इस रचना के सूत्रपात के पहले कई कवियों ने श्रृंगार-रस का वर्णन किया था। जब तक कोई नया कवि शोध से नहीं ज्ञात हो जाता है तब तक कृपाराम को हमें रीति-ग्रंथ-रचना में अग्रज मानना चाहिए। इनके पश्चात् हमें सूर को स्थान देना चाहिए। सूर के पश्चात् नंददास और उनके पश्चात् मुनिलाल (कृत 'रामप्रकाश', संवत् १६४२ वि०) इस परम्परा में आवेंगे। वि० संवत् १६७१ में सूर ने साहित्य-लहरी की रचना की।[2] यह रचना हमारे काव्य की अपूर्व निधि है। विषय प्रतिपादन में सर्वथा मौलिक भी है तभी तो स्वयं सूर ने कहा है—"बिचारि सूर नवीन।" यह ग्रंथ कूट पद में पूर्ण हुआ है। कूट पदों का विषय गेय पदों-सा ही है, पर उन पदों में रस, अलंकार, नायिका भेद आदि का क्रमबद्ध उल्लेख है। जिस पद में जिस अलंकार का उल्लेख है, वह उस अलंकार का उदाहरण भी है। इस प्रकार प्रत्येक पद गेय पद की भाँति स्वतंत्र भी है। बिना किसी हानि के वह पद कहीं से भी गाया जा सकता है।

प्रत्येक पद में एक अलंकार और एक नायिका का उल्लेख है। नायिका वर्णन के पश्चात् सूर ने नव रस और भाव आदि का अलंकारों के साथ उल्लेख किया है। सूर ने उदाहरण मात्र दिए हैं; लक्षण नहीं दिए हैं। इस हेतु 'साहित्य-लहरी' एक रीति शास्त्र का न होकर, एक रीति रचना मात्र है। यहाँ पर एक शंका अवश्य उठेगी कि लहरी में क्षेपकों या रिक्त पदों का पता कैसे लगेगा? यह शंका गेय पदों के संग्रहों के विषय में विशेषकर के उठती है। इसका समाधान तो बहुत सरल है कि पदों में अलंकारों और नायिकाओं के उल्लेख हैं और उनके क्रम में जहाँ बाधा पहुँचेगी वहाँ या तो क्षेपक पद होगा या मूल पद का लोप हो गया होगा। यह क्रम यदि केवल अलंकारों का होता तो अवश्य कठिनाई पड़ती, क्योंकि सम्भव है सूर ने कोई अलंकार छोड़ दिया हो। इस प्रकार की कठिनाई पड़ने पर हम साथ में चलने वाले नायिका या रस या भाव आदि के क्रम से पता लगा सकते हैं कि यहाँ पर कोई पद है या नहीं। लहरी से क्षेपकों को इस प्रकार निकाला भी जा सकता है तो लुप्त पदों के रिक्त स्थानों का अन्वेषण भी हो जाता

---

[1] 'हिततरंगिनी' की प्रथम तरंग के प्रारम्भिक दोहे।
[2] सम्मेलन-पत्रिका, भाग ३३ संख्या ३ पृष्ठ १।

है। इस कसौटी के सहारे सूर को भाट सिद्ध करनेवाला पद क्षेपक ही जान पड़ेगा।

अब हमें संक्षेप में सूर द्वारा मान्य नायिका-भेद के उल्लेखों को आँक लेना चाहिए। यहाँ पर इतना और कह देना चाहते हैं कि कहीं-कहीं सूर ने पदों में केवल अलंकार या केवल नायिका का ही उल्लेख किया है। इसका सहज कारण कवि की अपनी सुविधा है। इस पर विशेष विचार फिर कभी करेंगे। सूर ने नायिकाओं के नाम भी कूट शब्दों में दिए हैं। इस से अलंकार और नायिका का संकेत करनेवाले शब्द पद के साधारण अर्थ में उपयुक्त बैठ जाते हैं। यहाँ पर मूल शब्द देकर कूट शब्दों की विशद व्याख्या नहीं करना चाहते, इस हेतु नायिकाओं के नाम मात्र उद्धृत करते हैं*—१. स्वकीया २. अज्ञातयौवना ३. ज्ञातयौवना ४. मध्या ५. प्रौढा ६. धीरा ७. ज्येष्ठा और कनिष्ठा ८. परकीया ९. अनूढा १०. सुरतगुप्ता ११. वचन विदग्धा १२. क्रिया विदग्धा १३. लक्षिता १४. मुदिता १५. अनुशयना १६. अन्यसुरतदुखिता १७. प्रेमगर्विता १८. रूपगर्विता १९. कलहान्तरिता २०. मानिन २१. (क्षेपक) २२. प्रोषितभर्तृका, २३ से २७ तक केवल अलंकारों का उल्लेख है। २८. खण्डिता २९. केवल अलंकार, ३० से ३३ तक क्षेपक, ३४. उत्कण्ठिता ३५. वासकसज्जा ३६. स्वाधीनपतिका ३७. अभिसारिका ३८. पतिगमनी ३९. आगतपतिका।

साहित्य लहरी के प्रथम ३९ पदों का हमने लेखा लिया तो उन में से पाँच पद तो क्षेपक निकल आए और छ पदों में केवल अलंकारों का ही उल्लेख है। इस प्रकार २८ पदों में नायिकाओं के नामों का उल्लेख है। इन सभी नायिकाओं का वर्गीकरण इस प्रकार कर सकते हैं—

१. स्वकीया—(मुग्धा)—१. ज्ञात यौवना—२. अज्ञात यौवना।
—मध्या।
—प्रौढा।
धीरा, ज्येष्ठा और कनिष्ठा

२. परकीया—अनूढा।
—१. सुरतगुप्ता, २. वचनविदग्धा, ३. क्रियाविदग्धा, ४. लक्षिता, ५. मुदिता और ६. अनुशयना।

(स्वभावानुसार से)—१. अन्यसुरतदुखिता २. रूपगर्विता ३. मोह (प्रेम) गर्विता ४. मानवती।

(अवस्था भेद से)—१. प्रोषितभर्तृका २. खण्डिता ४. उत्कण्ठिता ४. वासकसज्जा

---

*यह संख्या साहित्य लहरी के पदों की है।

५. स्वाधीनपतिका ६. अभिसारिका ७. पतिगमनी ८. आगतपतिका ९. कलहान्तरिता।

उपर्युक्त वर्गीकरण में कई विशेषतायें हैं, जिन से सूर के दर्शन और सम्प्रदाय पर नया प्रकाश पड़ता है। उदाहरण स्वरूप सूर ने सामान्या का उल्लेख नहीं किया है। वास्तव में नायिका के आठ गुणों में से शील, कुल, प्रेम, वैभव आदि का सामान्या में अभाव ही रहता है। सामान्या रस का कारण नहीं हो सकती और न भगवद् विषयक रति में इसका कोई स्थान ही है। नंददास ने सामान्या का संकेत मात्र दिया है पर उसका कोई उदाहरण नहीं रचा है। कृपाराम ने इसका वर्णन किया है क्योंकि उन्होंने अपना आधार भरत मुनि के नाट्य शास्त्र को रखा है। यह सामान्या केशवदास और दास द्वारा भी उपेक्षित रही। कुछ लोगों ने नाम मात्र को गिन लिया; पर इस पर विशद चर्चा रसलीन ने की जो कि अधिक प्रचार नहीं पा सकी। हमारे सूर सामान्या को ही नहीं वरन् परकीया के ऊढा भेद को भी नहीं मानते हैं। समाज में संयम रहे, यही सूर की कामना रही। इसी हेतु सूर की राधा का विवाह कृष्ण से हो जाता है, पर इस स्नेह-लग्न के कारण राधा पत्नी न बन कर प्रेयसी ही बनी रहती है। सूर की अनूढा राधा चंडीदास और विद्यापति की राधा से इस कारण भिन्न भी है। कुछ भी हो सूर के नायिका भेद से हम बहुत कुछ तथ्य निकाल सकेंगे। सूर के इस नये रूप से, हिन्दी साहित्य में रीतिकाल का बीजारोपण कब हुआ — इस पर विचार करनेवालों को अवश्य नई सामग्री मिलेगी—ऐसी आशा है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन और हिन्दी प्रचार

[श्री चन्द्रपाल बाजपेयी, शास्त्री]

हिन्दी साहित्य सम्मेलन हिन्दी भाषा का प्रतिनिधित्व करने वाली अखिल भारतीय संस्था है। भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में आज जो स्थान कांग्रेस का है, भाषा और साहित्य के क्षेत्र में सम्मेलन का यदि वही स्थान कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी। अपने ३२, ३३ वर्ष के जीवन में सम्मेलन ने हिन्दी की जो सेवा की है, देश के सामने है। कार्य की दृष्टि से सम्मेलन ने देश के दो क्षेत्र बनाये हैं। (१) अहिन्दी भाषी प्रान्त (२) हिन्दी भाषी प्रान्त। अहिन्दी भाषी प्रान्तों में हिन्दी के राष्ट्र भाषा रूप के प्रचार का कार्य चल रहा है, इसका भार सम्मेलन की राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति पर है। अहिन्दी प्रान्तों में कार्य करनेवाली प्रचार समितियाँ इस समिति के आदेशानुसार साहित्य, विद्यालय, परीक्षा और प्रचार के द्वारा राष्ट्र भाषा का व्यापक प्रचार कर रही हैं। १९१८ से अब तक इन प्रान्तों में जितना काम हुआ है, वह संभावना से अधिक और उत्साहवर्द्धक है।

हिन्दी भाषी प्रान्तों में सम्मेलन की प्रचार समिति हिन्दी की सर्वांगीण उन्नति और प्रचार के लिये यत्नशील रही है। इन प्रान्तों में सम्मेलन से सम्बद्ध बहुत-सी साहित्यिक संस्थायें यत्र-तत्र कार्य कर रही हैं। और प्रायः प्रत्येक नगर में सम्मेलन के परीक्षा केन्द्र स्थापित हैं। किन्तु अब समय की पुकार है कि हिन्दी भाषी प्रदेश में सम्मेलन का अधिक व्यापक और दृढ़ संघटन किया जाय। प्रत्येक हिन्दी प्रान्त का प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन सुदृढ़ और सुसंघटित हो और प्रान्त के प्रत्येक जिले में जिले भर के प्रतिनिधि रूप जनपद हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना की जाय।

इस वर्ष की प्रचार समिति ने ऐसे व्यापक संघटन के लिये एक प्रचार योजना प्रस्तुत की है। उक्त योजनानुसार संयुक्त-प्रान्त में विगत बारह चौदह मास से काम हो रहा है। लगभग ३० जिलों में जनपद सम्मेलन बन चुके हैं। आशा है, शेष जिलों में भी यह कार्य वर्षान्त तक सम्पादित हो जायगा। विहार, मध्यप्रान्त, सेंट्रल इंडिया, दिल्ली, राजस्थान, पंजाब और काश्मीर के हिन्दी सेवी भी अपने-अपने यहाँ यह कार्य उठा लें तो संघटन का कार्य शीघ्र हो सकता है।

प्रचार समिति ने जिला हिन्दी साहित्य सम्मेलन की अपेक्षा जनपद हिन्दी साहित्य सम्मेलन नाम अधिक उपयुक्त और समयोचित समझा है। उसका अनुरोध है कि प्रत्येक प्रान्त के जिला सम्मेलन यह नाम अपना लें। जनपद शब्द एक मधुर, साहित्यिक और ऐतिहासिक शब्द है। जो गम्भीर भाव इसमें है, जिला में नहीं। जिले भर की प्रतिनिधि निधि रूप साहित्यिक संस्था का नाम इससे अच्छा नहीं मिल सकता। हमारे साहित्य में विभिन्न भौगोलिक सीमा के जन सम्पन्न भूभागों को जनपद नाम से पुकारा जाता रहा है। यह सीमायें वर्तमान शासन में विलीन हो गयीं। उनका स्थान नई सीमाओं ने ले लिया है। इन नयी सीमाओं ने पुराने जनपदों को नये उप जनपदों (जिलों) में बांट दिया है, जिससे पुरानी सीमायें आज ढूंढना कठिन है। इन जिलों को ही जनपद मान कर हिन्दी का अपना संघटन बनाया जा सकता है। तथा इन जनपदों में संघटित सम्मेलनों द्वारा प्राचीन जनपदीय भाषा और संस्कृति का अध्ययन किया जा सकता है।

सम्मेलन ने अपने हरिद्वार अधिवेशन में जनपदों के अध्ययन के संबंध में यह प्रस्ताव स्वीकृत किया था कि भारत के विभिन्न जनपदों की भाषा, पशु-पक्षी, वनस्पति ग्रामगीत, जलविज्ञान, संस्कृति, साहित्य तथा उपज का अध्ययन हो। हमारे यह नवसंघटित जनपद सम्मेलन इस प्रस्ताव को कार्यान्वित करेंगे और मातृभाषा की श्रीवृद्धि में योग देंगे। जनपदों में हमारी निधि बिखरी पड़ी है। इस निधि का एक करना जनपद सम्मेलनों का मुख्य कार्य होगा। यह कार्य थोड़े दिन का नहीं, वरन् वर्षों और पीढ़ियों का है।

जिन नगरों में हिन्दी की पुरानी संस्थाये कार्य कर रही हैं, उनमें कहीं-कहीं लोगों को

संदेह होता है कि इस योजना के कार्यान्वित होने से उनकी संस्था का महत्त्व घट जायेगा। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि जब हमारी एक संस्था कार्य कर रही है तो दूसरी स्थापित करने की क्या आवश्यकता है। जो लोग ऐसी आशंकायें करते हैं, वे सम्मेलन की बृहद् योजना को संकुचित दृष्टि से देखते हैं। सम्मेलन जिलों में कोई दूसरी या तीसरी संस्था नहीं बनाने जा रहा है और न किसी संस्था की प्रतिस्पर्द्धा का ही प्रश्न है। जनपद सम्मेलनों का संघटन सभी हिन्दी संस्थाओं और हिन्दी प्रेमियों को एक सूत्र में बाँधने के लिये है। जिलों में जो संस्थायें कार्य कर रही हैं न तो उनमें एकरूपता है न उनका संघटन ही विस्तृत है। जनपद सम्मेलन सभी जिलों की एक-सी जिला संस्था होगी और उसका क्षेत्र पूरे जिले में होगा। हिन्दी की सेवा करनेवाली सभी संस्थाओं का प्रतिनिधित्व उसमें होगा और जिले के सब विद्वानों, अध्यापकों, कवियों, लेखकों, पत्रकारों, प्रकाशकों, अध्येताओं और प्रेमियों को इस संघटन में लाने का यत्न होगा। हिन्दी के पुस्तकालय, विद्यालय, गोष्ठियाँ तथा अन्य बहुमूल्य कर्तव्यों का सम्पादन करनेवाली उपसंस्थायें हमारे जनपद संघटन की स्तम्भ होंगी। प्रत्येक जिले में इस प्रकार के संघटन से वहाँ के जीवन पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा। केन्द्रों तथा बड़े नगरों से दूर के उपनगरों और जिलों में साधारणतः साहित्यिक वातावरण का अभाव-सा है। साहित्यिक रुचि रखनेवाली जो दो एक मूर्तियाँ मिलती भी हैं, वे अपने को उपेक्षित समझती हैं। उनके साधन बहुत ही अल्प होते हैं। हमारे यह संघटन उन सुदूर उपनगरों और ग्रामों में भी साहित्यिक जागरण का संदेश पहुँचायेंगे और ऐसी उपेक्षित साधन हीन साहित्यिक मूर्तियों के सहयोग से जिले के कोने-कोने में सरस साहित्यिक वातावरण बना देंगे। अनेकों प्रतिभायें जिलों में पैदा होती हैं, पर बिना प्रकाश में आये ही वे लुप्त हो जाती हैं। अनेकों कलियाँ अधखिली ही मुरझा जाती हैं। यह संघटन ऐसी सभी प्रतिभाओं को प्रकाश में लायेंगे और तब हमारा शताब्दियों का पिछड़ा कार्य चल निकलेगा।

जनपद सम्मेलनों के जिम्मे बहुत बड़ा कार्य और कर्तव्य होगा। इसमें हिन्दी से प्रेम रखनेवाले सभी विचारों के व्यक्तियों का सहयोग अपेक्षित है। जनपद सम्मेलन विशुद्ध साहित्यिक संघटन होगा। उसमें किसी प्रकार की राजनैतिक या धार्मिक अथवा दलबन्दी नहीं होनी चाहिये। सभी विचार के लोग इस उद्देश्य को लेकर सहयोग दें कि हम हिन्दी की सेवा करेंगे। व्यर्थ के विवादों का अखाड़ा न बनाकर वैज्ञानिक, साहित्यिक और शास्त्रीय दृष्टि से विचार करने की प्रवृत्ति को हमें प्रोत्साहन देना है। खेद है कि हमारे जिलों में इस प्रकार से विचार करने के लिए सार्वजनिक मंच की बहुत बड़ी कमी है। आर्य समाजी संस्थाओं में तुलसी जयन्ती वर्जित-सी है। सनातन धर्मी संस्थाओं में स्वामी दयानन्द की साहित्यिक सेवा का कोई आदर नहीं होता। जनपद सम्मेलन ऐसी कमियों की पूर्ति करेगा।

जनपद सम्मेलन की ओर से जिले में जगह-जगह हिन्दी के पुस्तकालय और वाचनालय खोले जायेंगे, जिनमें अच्छा साहित्य दिया जायगा। इन पुस्तकालयों और वाचनालयों में समय-समय पर विद्वान इकट्ठे होकर बैठें, विचार करें और साहित्यिक गोष्ठियों का आयोजन हो, जिनमें कविता-पाठ, निबन्ध-पाठ के अतिरिक्त सामयिक साहित्य-चर्चा भी हो। प्रतिभावान् नवयुवकों को अपनी रुचि के विषयों की ओर विशेष अध्ययन के लिये प्रेरित किया जाय और नये साहित्य निर्माण के लिये अच्छे विद्वान् तैयार हों। लिखने की सामग्री भी प्रस्तुत करने का यत्न हो। हमारा साहित्य-भण्डार ऐसे ही भरेगा। अच्छे साहित्य की हमारे पास कितनी कमी है, हम सभी जानते हैं। आधुनिक ज्ञान-विज्ञान पर अभी हमारी भाषा में कुछ भी नहीं हुआ है। हमारा पुराना ही ज्ञान हिन्दी में कितना मौलिक और कितना अनूदित हुआ है। जनपद सम्मेलनों का ध्यान इधर अवश्य ही जायगा। प्रत्येक जिले में इस दिशा की ओर भी विद्वानों की रुचि हो तो अच्छा काम हो सकता है।

स्कूलों और कालेजों में हिन्दी परिषदों की स्थापना कर वहाँ हिन्दी का वातावरण उत्पन्न किया जायगा तथा छात्रों में हिन्दी पढ़ने और हिन्दी साहित्य के अध्ययन की अभिरुचि उत्पन्न होगी। जहाँ आवश्यकता हो हिन्दी साहित्य के अध्ययन के लिये विद्यालय स्थापित किये जायें और हिन्दी की परीक्षा के केन्द्र खोले जायँ। इन परीक्षाओं में बैठने वाले छात्रों के अध्ययन की व्यवस्था भी होनी चाहिये।

हमारा सुन्दर और सर्वोत्तम साहित्य हमारे ग्राम-गीतों में है। भारतीय संस्कृति उनमें ओत प्रोत है। अभी तक उनका न तो संतोषजनक संग्रह ही हो सका है और न अध्ययन ही। इन जनपद सम्मेलनों द्वारा ही ग्राम-गीतों और लोक-कथाओं का संग्रह और अध्ययन हो सकता है। यदि प्रत्येक जिले के जनपद इधर लग जायें तो बहुत ही थोड़ी अवधि में हमारे पास अच्छी सामग्री इकट्ठी हो जायगी। केवल एक वर्ष में ही विभिन्न जनपद सम्मेलन अपने-अपने जिले के गीतों, लोकोक्तियों और कथाओं का संग्रह करके बहुत बड़ा और वर्षों का कार्य कर सकते हैं तथा हिन्दी साहित्य की प्रगति को बहुत आगे बढ़ा सकते हैं।

सैकड़ों प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकें अँधेरे में पड़ी सड़ रही हैं। जनपद सम्मेलनों द्वारा उनका संग्रह और प्रकाशन हो सकता है। हर जिले में ऐसी पुस्तकों के संग्रह से साहित्यिक भण्डार तो बढ़ेगा ही, हमारी बहुत-सी खोई हुई और अँधेरे में पड़ी हुई इतिहास की लड़ियाँ भी जुड़ेंगी। अनेक अनमोल मोतियों का अभी तक हमें पता ही नहीं है। जनपद सम्मेलनों के इस खोज कार्य से सैकड़ों गुदड़ी में छिपे लाल निकलेंगे, जिनसे हमारा वाङ्मय चमक उठेगा।

साहित्यिक विभूतियों की स्मृति बनाये रखने के लिये उनकी जयंतियाँ और पुण्य

तिथियां मनाने का पुण्य कार्य भी जनपद सम्मेलन करेंगे। देश-व्यापी और इतिहास में ख्याति प्राप्त विभूतियों के अतिरिक्त जिलों की अपनी विभूतियाँ भी हैं। अनेकों तो ऐसी मिलेंगी जो बिना यथेष्ट यश और कीर्ति पाये ही अन्तर्ध्यान हो गयीं। उन्हें प्रचार का संसार नहीं जानता। उन्होंने बिना अपने को जनाये और अपनी प्रशंसा के गीत गवाये ही हिन्दी की सेवा की। जनपद सम्मेलन उन्हें यथेष्ट स्थान पर लायेंगे और उनकी स्मृति को जीवित करेंगे।

जनपद सम्मेलनों द्वारा जो इमारतें बनें, चाहे पुस्तकालय हों चाहे वाचनालय, चाहे सम्मेलन-भवन ही हों उनका नामकरण इन विभूतियों के स्मारक स्वरूप में हो। नगरों तथा उपनगरों के पार्क और सड़कों के नाम भी ऐसे व्यक्तियों के नाम पर रखे जा सकते हैं। छोटे जिलों की महान् विभूतियों के भी स्मारक नहीं बन पाते। मलिक मुहम्मद जायसी और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के स्मारकों के लिये आज किसका ध्यान जाता है? इनका सम्मान करना जनपद सम्मेलनों का काम होगा।

यह सब जनपद सम्मेलनों के ठोस काम हैं, जो अपने अपने छोटे क्षेत्रों में बड़ी खूबी के साथ किये जा सकते हैं। सभी प्रान्तों के साहित्य सेवी और हिन्दी प्रेमी अपने अपने जिले में इन कामों को जनपद सम्मेलन की ओर से संघटित होकर करने लगें तो अनुमान कीजिये कितना अधिक काम हम कर ले जायेंगे। और हमारे ऐसे काम कितने ठोस होंगे।

उपर्युक्त रचनात्मक कार्यक्रम के अतिरिक्त हमें प्रचार कार्य भी करना है, जिसका महत्त्व कम नहीं है। कचहरियाँ हिन्दी की उपेक्षा की हमें बराबर याद दिलाती हैं। हिन्दी की शिक्षा में बहुत ही तीव्र प्रगति हुई है, पर ऐसी प्रगति और शिक्षा किस काम की यदि उसका व्यावहारिक क्षेत्र से कोई प्रयोजन न हो। जनपद सम्मेलनों को यह कार्य बड़ी गम्भीरता और साहस से अपने हाथ में लेना होगा। कचहरियों और सरकारी दफ़्तरों से अपनी भाषा का निषेध हम अब नहीं सह सकते! यह काम कुछ कठिन नहीं है। केवल एक परम्परा तोड़नी है। हिन्दी भाषी जनता को थोड़े से उत्साह की आवश्यकता है। उसकी ओर से प्रत्येक सरकारी कार्यालय में हिन्दी की माँग हो। जिस भाषा में हम लिख पढ़ और समझ सकते हैं उसी में अपने कागद पत्र देंगे और लेंगे तथा जो हमारी भाषा में काम करेंगे उन्हीं से हम काम करायेंगे—यह वाक्य घर घर गूजें और हर हिन्दी भाषी दृढ़ता के साथ कहे। वकीलों, मुंशियों और अर्जीनवीसों को हिन्दी में काम करने के लिये प्रेरित किया जाय। संस्थाओं, व्यापारियों तथा व्यक्तिगत कार्यों में हिन्दी से ही काम लिया जाय। अंग्रेजी हम पर कितना अधिकार जमाती जा रही है। विदेशी भाषा की स्वेच्छा से लादी हुई इस दासता का अन्त होना चाहिए और अपनी राष्ट्रलिपि व मातृभाषा का गौरव अनुभव कर

प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में हिन्दी प्रेम व हिन्दी-सेवा का व्रत ले लेना चाहिये। मातृभाषा का स्वाभिमान जाग्रत होते ही प्रत्येक दिशामें भाषाकी शुद्धता और सुरुचि की ओर अवश्य ही प्रवृत्ति बढ़ेगी। सरकारी तथा अर्द्ध सरकारी साइन बोर्डों और विज्ञापनों की लिखावट में प्रायः हिन्दी की विशुद्धता का ध्यान नहीं रखा जाता। जो जिसके जी में आता है लिख मारता है, जनपद सम्मेलन हिन्दी वालों में ऐसी सुरुचि पैदा करेंगे कि जिस से उनकी दृष्टि अशुद्ध लिखावट को देखते ही दुखे। कानों को अशुद्ध सुनते ही कड़ुवा लगे और उसे शुद्ध करने के लिये तत्काल जिम्मेदार व्यक्ति को सूचित किया जाय।

जनपद सम्मेलन रेडियो की भाषा सुधारने का आन्दोलन भी करेंगे। प्रमुख साहित्यकों के असहयोग और हिन्दी साहित्य सम्मेलन के विरोध के बावजूद भी रेडियो की नीति अभी नहीं बदली। जनपद सम्मेलन जनता में व्यापक प्रचार करेंगे कि रेडियो हमारी भाषा का प्रतिनिधित्व नहीं करता। भाषा पर होनेवाले बाह्य और आन्तरिक आक्रमणों से विशाल हिन्दी-भाषा-जनसमूह को यह सम्मेलन अपने-अपने क्षेत्रों को सचेत करते रहेंगे। उन्हें उनके नीरस और शुष्क कमाने खानेवाले जीवन से ऊपर उठाकर साक्षर बनायेंगे, सरसता लायेंगे और ज्ञानोपार्जन की ओर प्रेरित कर मानसिक विकास के मार्ग में सहयोग देंगे।

सम्मेलन की शाखाओं द्वारा किये जाने वाले कार्य का यहाँ पर मैंने संक्षेप में वर्णन किया है। यह तो किन किन दिशाओं की ओर हमें लगना है इसका निर्देश मात्र है। इस निर्देश के अनुसार अपनी स्थिति और जिले की विशिष्टताओं को देखकर प्रत्येक जनपद सम्मेलन अपना स्वतंत्र कार्यक्रम तफसील में बना सकता है। इस कार्यक्रम से कुछ ही वर्षों में सम्मेलन का देश भर में एक दृढ़ संगठन हो जायगा। प्रत्येक व्यक्ति और संस्था का सम्मेलन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होगा, कण-कण और जन-जन से परिचय होगा तथा सब के सम्बद्ध कार्य और ज्ञान से हमारी भारतीयता चमक उठेगी और उसके प्रकाश में प्रत्येक जनपद खिल उठेगा। एक जनपद का ज्ञान दूसरे जनपद को जगायेगा। दूर-दूर के फैले जनपद एक दूसरे के निकट आयेंगे, परस्पर का सम्पर्क बढ़ेगा। इस प्रकार विद्वद्वर पं० चन्द्रबली पाण्डेय के शब्दों में "समूचा भारत एक स्वर में बोल उठेगा और उसकी राष्ट्रवाणी हिन्दी राष्ट्र भावना के साथ दिगन्त-व्यापिनी हो सकेगी।"

स्थायी समिति का द्वितीय अधिवेशन

स्थायी समिति की बैठक रविवार ६ मार्गशीर्ष संवत् २००२, तारीख २५ नवम्बर १९४५ को २ बजे दिन से सम्मेलन कार्यालय में आरम्भ हुई। निम्नलिखित सदस्य उपस्थित थे—

सर्वश्री माननीय पुरुषोत्तमदास जी टंडन; डा० सत्यप्रकाश; पृथ्वीनाथ कुलश्रेष्ठ; महेश-चन्द्र; प्रेमनारायण शुक्ल; केदारनाथ मिश्र; सत्यनारायण पाण्डेय; हरनारायण गौड़; बाल-मुकुन्द गुप्त; पुरुषोत्तमदास टंडन; लक्ष्मीनारायण मिश्र; गिरिजादत्त शुक्ल; कमलनारायण देव; आनन्द कौसल्यायन; राधेश्याम पाठक; श्रीनाथ पाठक; हाकिमसिंह सेंगर; विद्याधर कुल श्रेष्ठ; नवरत्न विद्यालंकार; लक्ष्मीनारायण दीक्षित; विश्वनाथ कुलश्रेष्ठ; बालाभ्यासी शर्मा; काशीप्रसाद तिवारी; गंगाधर इंदूरकर; विश्वेश्वरदयाल कुलश्रेष्ठ; सत्यदेव शास्त्री; जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल; बलभद्रप्रसाद मिश्र; गौरीशंकर मिश्र; वंशगोपाल; जगदम्बाप्रसाद 'हितैषी'; बालकृष्ण पाण्डेय; हर्षदेव मालवीय; केदारनाथ गुप्त प्रिंसिपल; रामचरण अग्रवाल; काशी दत्त पाण्डेय; प्रभात मिश्र; रामबहोरी शुक्ल; वाचस्पति पाठक; भूपेन्द्रपति त्रिपाठी; 'व्यथित हृदय'; शिवसेवक मिश्र; रामबालक पाण्डेय; ओंकारनाथ मिश्र; उदयनारायण तिवारी; उमेश मिश्र; रामचन्द्र टंडन; श्रीमती सुमित्राकुमारी सिनहा; श्रीमती रामकुमारी चौहान; रामलखन शुक्ल; मौलिचन्द्र शर्मा; प्रमुदयाल मीतल; लक्ष्मीनारायण आचार्य; राजनाथ पाण्डेय; जयदेव गुप्त; हनुमानप्रसाद सक्सेना; महावीरप्रसाद श्रीवास्तव; अनन्तप्रसाद विद्यार्थी; शम्भूनाथ चोपड़ा; सालिकराम जायसवाल; शुकदेव चौबे; रामकुमार वर्मा; शंकरलाल गुप्त।

१—नियमानुसार माननीय श्री पुरुषोत्तमदास जी टंडन ने सभापति का आसन ग्रहण किया।

२—प्रधान मंत्री ने गत वर्ष की स्थायी समिति की सातवीं बैठक की तथा वर्तमान स्थायी समिति की प्रथम बैठक की कार्यवाही पढ़ कर सुनाई, जो स्वीकृत हुई।

३—प्रधान मंत्री ने नियमानुसार विभिन्न समितियों के संगठन का प्रश्न उपस्थित किया। श्री पृथ्वीनाथ कमल कुलश्रेष्ठ ने इस आशय का प्रस्ताव उपस्थित किया कि कार्यवाहक उपसभापति तथा विभागीय मंत्रियों को अधिकार दे दिया जाय कि वे लोग सब समितियों का संगठन कर लें।

श्री बालाभ्यासी शर्मा ने प्रस्ताव का समर्थन किया।

श्री सत्यनारायण पाण्डेय, श्री जयदेव गुप्त तथा श्री वाचस्पति पाठक ने प्रस्ताव का विरोध किया।

श्री वंशगोपाल जी ने प्रस्ताव उपस्थित किया कि प्रस्ताव के अनुसार वे लोग नाम दे दें और उन नामों पर यहीं विचार हो जाय।

श्री 'हितैषी' जी ने कहा कि नए लोगों के नाम ले लिए जाँय।

विचार विनिमय के पश्चात् प्रस्ताव बहुमत से अस्वीकार किया गया।

बहुमत से निम्नलिखित दस व्यक्ति कार्यसमिति के सदस्य चुने गए—

सर्व श्री वाचस्पति पाठक; उदयनारायण तिवारी; बलभद्रप्रसाद मिश्र; श्रीनारायण चतुर्वेदी; डा० बाबूराम सक्सेना; जगन्नाथप्रसाद शुक्ल; शुकदेव चौबे; माखनलाल चतुर्वेदी; अयोध्यानाथ शर्मा; रामनारायण मिश्र, काशी;

४ श्री सभापति जी की आज्ञा से प्रधान मंत्री ने बताया कि संवत् २००० का मंगलाप्रसाद पारितोषिक 'क्षयरोग' नामक पुस्तक के लेखक डाक्टर शंकरलाल गुप्त को दिया जाना निश्चय हुआ है। इसका निर्णय इतने विलम्ब से हुआ था कि डा० साहब उदयपुर नहीं पहुँच सकते थे। अधिवेशन में इसकी घोषणा कर दी गई थी। नियमानुसार पारितोषिक का रूपया और ताम्रपत्र समिति के इस अधिवेशन के अवसर पर प्रदान किया जाना चहिए। श्री शंकर लाल जी यहाँ उपस्थित हैं।

श्री सभापति जी ने डाक्टर शंकरलाल गुप्त को पारितोषिक के बारह सौ रुपए का चेक तथा ताम्रपत्र प्रदान किया।

५—साहित्य समिति के लिए निम्नलिखित सज्जन बहुमत से सदस्य चुने गए—सर्वश्री माननीय श्री पुरुषोत्तमदास जी टंडन; उदय नारायण तिवारी; वाचस्पति पाठक; श्री नारायण चतुर्वेदी; आनन्द कौसल्यायन; बलभद्रप्रसाद मिश्र; गिरिजादत्त शुक्ल।

६—बहुमत से निम्नलिखित सज्जन प्रचार समिति के सदस्य चुने गए—सर्वश्री माननीय पुरुषोत्तमदास जी टंडन; जगदम्बाप्रसाद 'हितैषी' कानपुर; भागीरथ कानोडिया, कलकत्ता; श्रीनाथ पाठक; केदार नाथ मिश्र, कालपी; राजनाथ पांडे गोरखपुर; महाबीर प्रसाद शुक्ल प्रयाग; पुत्तूलाल वर्मा, दिल्ली; शुकदेव चौबे, प्रयाग; जनार्दन राय नागर, उदयपुर; सालिकराम जायसवाल, प्रयाग; नीतीश्वरप्रसाद सिंह, मुजफ्फरपुर; काशीप्रसाद तिवारी, प्रयाग; श्रीमती सुमित्राकुमारी सिनहा, उन्नाव।

७—बहुमत से निम्नलिखित सज्जन संग्रहसमिति के सदस्य चुने गए—माननीय श्री पुरुषोत्तमदास जी टंडन, जगन्नाथप्रसाद शुक्ल; उदयनारायण तिवारी; ब्रजमोहन व्यास; हीरालाल दुबे; रामचरण मेहरोत्र; वासुदेव उपाध्याय; प्रभात मिश्र; कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'; नीतीश्वरप्रसाद सिंह; श्रीमती रानी टंडन; वासुदेवशरण अग्रवाल; अगरचन्द

नाहटा; ललितमोहन वसु ।

८—बहुमत से निम्नलिखित बीस सज्जन विश्वविद्यालय परिषद् के सदस्य चुने गए—भूपेन्द्रपति त्रिपाठी, •रामबहोरी शुक्ल; 'व्यथित हृदय' अमरनाथ झा; हर्षदेव मालवीय, शुकदेव चौबे; सत्यनारायण पाण्डेय, काशीदत्त पाँण्डेय; बलभद्र प्रसाद मिश्र, राजनाथ पाण्डेय; रामचरण अग्रवाल, बालमुकुन्द गुप्त; माखनलाल चतुर्वेदी, प्रेमनारायण शुक्ल; बाबूराम सक्सेना, केदारनाथ मिश्र; हरिनारायण गौड, काशीप्रसाद तिवारी; धीरेन्द्रवर्मा, महावीरप्रसाद श्रीवास्तव ।

९—उसके पश्चात् प्रधान मंत्री ने संवत् २००२ के लिए विभिन्न परितोषिक समितिय के संगठन का प्रश्न उपस्थित किया— निम्नलिखित रूप में समितियों का संगठन हुआ—

मंगलाप्रसाद पारितोषिक समिति

१—श्री मान् गोकुलचन्द रईस, २—माननीय टंडन जी ३—श्री बाबूराम सक्सेना,
४—श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी
५—श्री प्रधान मंत्री (संयोजक)

सेकसरिया पारितोषिक समिति

१—श्री सीताराम सेकसरिया २—श्री साहित्य मंत्री (संयोजक) ३—श्रीमती रामकुमारी चौहान; ४—श्रीमती रत्नकुमारी; ५—श्री रामबहोरी शुक्ल;

मुरारका पारितोषिक समिति

१—श्री बसन्तलाल मुरारका; २—श्री परीक्षा-मंत्री (संयोजक) ३—श्री दयाशंकर दुबे, ४—राजनाथ पाण्डेय; ५—वासुदेव उपाध्याय;

राधामोहन गोकुल जी पुरस्कार समिति

१—दाता का एक प्रतिनिधि—२—श्री प्रबन्धमंत्री (संयोजक) ३—श्री बालमुकुन्द गुप्त; ४—श्रीमती सुमित्राकुमारी सिनहा; ५—श्री सत्यनारायण पाण्डेय ।

जैन पारितोषिक समिति

१—दाता का एक प्रतिनिधि २—श्री प्रबन्धमंत्री (संयोजक) ३—श्री ग्रामोद्योग संघ वर्धा का एक प्रतिनिधि; ४—श्री महेशचन्द्र अग्रवाल; ५—श्री शुकदेव चौबे;

नारंग पुरस्कार समिति

१—श्री गोकुलचन्द नारंग; २—श्री संग्रह मंत्री (संयोजक) ३—श्री अनन्तप्रसाद विद्यार्थी; ४—श्री ओंकारनाथ मिश्र ५—श्री प्रेमनारायण शुक्ल;

रत्नकुमारी पुरस्कार समिति

१—श्रीमती रत्नकुमारी; २—श्री साहित्य मंत्री (संयोजक) ३—श्री लक्ष्मी नारायण दीक्षित ४—श्री प्रभात मिश्र; ५—श्री जगदीशनारायण दीक्षित।

गोपाल पुरस्कार समिति

१—दाता का एक प्रतिनिधि २—श्री प्रचार मंत्री (संयोजक) ३—श्री हरनारायण गौड़; ४—श्री भूपेन्द्रपति त्रिपाठी; ५—श्री शुकदेव चौबे;

१०—प्रधान मंत्री ने उदयपुर अधिवेशन में स्वीकृत निश्चयों को कार्यरूप में परिणत करने का प्रश्न उपस्थित किया—

१—प्रथम निश्चय शोक और समवेदना सूचक था। प्रस्ताव की प्रतिलिपि दिवंगत आत्माओं के कुटुम्बियों के पास भेजी जा चुकी है।

दूसरा निश्चय—

सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि प्रचार विभाग द्वारा इसका अधिक से अधिक प्रकाशन होना चाहिए।

महात्मा गांधी जी के त्यागपत्र के सम्बन्ध में निश्चय हुआ कि स्थायी समिति के सौर १२-६-२००२ के मंतव्य के उत्तर में महात्मा गांधी जी का जो उत्तर आया है उसे पढ़ने के बाद समिति अन्य कोई मार्ग न देख बहुत दुःख और नम्रता के साथ महात्मा गांधी जी का त्यागपत्र स्वीकार करती है।

साथ ही राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की सदस्यता से श्रीमन्नारायण अग्रवाल का २५ जुलाई का त्यागपत्र भी उपस्थित किया गया। खेद के साथ समिति ने इनका त्यागपत्र स्वीकार किया।

इसी प्रकार श्रीमती पेरीन बेन कैप्टेन का भी त्यागपत्र खेद के साथ स्वीकार किया गया।

यह भी निश्चय हुआ कि राष्ट्रभाषा प्रचार समिति इन रिक्त स्थानों की पूर्ति कर ले।

३—तीसरा निश्चय इस प्रकार था—

[३]

(क) जिन देशी राज्यों में सब राज-कार्यों में नागरी लिपि का प्रयोग होता है उनमें से अधिकतर राज्यों में भी प्रचलित राजभाषा अभी तक सर्वजनसुलभ हिन्दी नहीं हो पाई है और अभी तक विदेशी शब्दों और वाक्यांशों का भार उस पर से नहीं उतारा जा सका है। यह सम्मेलन ऐसे राज्यों के शासनों से प्रार्थना करता है कि प्रजा के अधिकार और सुभीते को ध्यान में रखकर सब कार्यों में हिन्दी भाषा का व्यवहार अनिवार्य रूप से करें।

इसके साथ ही अँगरेजी के बढ़ते हुये प्रभाव को, जो राष्ट्रीय दृष्टि से अवांछनीय और भारतीय राज्यों की उदात्त परम्परा के प्रतिकूल है, रोकें।

यह सम्मेलन उन राज्यों के हिन्दी प्रेमी न्यायाधीशों, वकीलों एवं कर्मचारियों से अनुरोध करता है कि वे भी इस लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए क्लिष्ट अरबी तथा फारसी शब्दों के प्रयोग को रोककर और उनके स्थान में हिन्दी शब्दों को प्रयुक्त कर अपने कर्त्तव्य का पालन करें।

(ख) यह सम्मेलन जयपुर शासन के उस निर्णय को, जिसके द्वारा प्रार्थियों को अनुज्ञा दी गई है कि वे उर्दू के साथ हिन्दी में भी प्रार्थनाएँ उपस्थित कर सकते हैं, अपर्याप्त और वस्तुस्थिति के प्रतिकूल मानता है। राज्य की आज्ञाएँ और मिसिलें अभी तक प्रायः फारसी लिपि में लिखी जाती हैं। जयपुर की अधिकांश साक्षर जनता केवल हिन्दी ही जानती है, वही सदा से वहाँ की सार्वजनिक भाषा रही है। वहाँ हिन्दी की समकक्षता किसी और भाषा को राजभाषा रूप से नहीं दी जा सकती। अतः सम्मेलन जयपुर शासन से अनुरोध करता है कि वे राजपूताना और मध्य भारत के अन्य राज्यों की भांति हिन्दी को राज की एक मात्र भाषा के रूप में स्थापित कर प्रजा के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करें।

(ग) सम्मेलन को यह जानकर खेद है कि धौलपुर की कचहरियों में अभी तक हिन्दी का प्रचलन नहीं है। सम्मेलन धौलपुर शासन से सानुरोध निवेदन करता है कि अपनी प्रजा के अधिकार को ध्यान में रखकर अपने सब कार्यालयों और कचहरियों में सर्वजन सुलभ हिन्दी को तुरन्त प्रचलित करने की आज्ञा दे।

(घ) यह सम्मेलन ट्रावनकोर राज्य के उस निर्णय का स्वागत करता है, जिसके द्वारा प्राथमिक शिक्षा का समस्त भार राज्य ने अपने ऊपर लिया है और राज्य के शासन से प्रार्थना करता है कि ट्रावनकोर में राष्ट्रभाषा हिन्दी की बढ़ती हुई लोकप्रियता को दृष्टि में रखते हुये वहाँ के शिक्षण क्रम में हिन्दी को अनिवार्य स्थान दे।

(ङ) इस सम्मेलन को यह देखकर खेद है कि मैसूर में हिन्दी के शिक्षण के लिए राज्य की ओर से कोई उपयुक्त प्रबन्ध नहीं है। सम्मेलन राज्य के शासन से प्रार्थना करता है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी को वहाँ के शिक्षण क्रम में स्थान दें।

(च) यह सम्मेलन इस बात पर तीव्र असन्तोष प्रकट करता है कि बार-बार ध्यान आकर्षित कराये जाने पर भी हैदराबाद की निजाम गवर्नमेंट हिन्दी के प्रति अपनी विरोधी तथा पक्षपातपूर्ण नीति में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं कर रही है। निजाम गवर्नमेंट हिन्दी को गैर मुल्की भाषा बताकर लगभग ४ लाख हिन्दी भाषी तथा अगणित हिन्दी प्रेमियों को हिन्दी शिक्षा से वंचित रखकर तथा हिन्दी पत्रों के प्रकाशन और हिन्दी से

संबंधित आयोजनों के लिये अनुमति न देकर जो नागरिकता के सामान्य अधिकारों का अपहरण कर रही है सम्मेलन उसकी निन्दा करता है और यह स्पष्ट कर देना चाहता है कि हिन्दी को गैर मुल्की कह कर हैदराबादी उर्दू को जो विदेशी शब्दों से लदी एक कृत्रिम शैली है और जिसे राज्य की दस प्रति शत जनता से अधिक नहीं समझती, मुल्की बताना हास्यास्पद समझता है।

सम्मेलन निजाम गवर्नमेंट से अनुरोध करता है कि वह राज्य में हिन्दी माध्यम द्वारा कम से कम हाई स्कूल तक की शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा प्रदान करे और उन प्रतिबन्धों को हटा दे जिनके कारण राज्य में प्राइवेट स्कूल तथा कालेज स्थापित नहीं किये जा सकते, साथ ही उस्मानिया विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में हिन्दी साहित्य को एक स्वतंत्र विषय के रूप में स्थान दे।

(छ) पंजाब के पहाड़ों के जिन अनेक राज्यों ने हिन्दी को राज भाषा रूप से स्थापित कर अपनी प्रजा की स्वाभाविक माँग का आदर किया है सम्मेलन उन्हें बधाई देता है। जिन राज्यों ने अभी ऐसा नहीं किया है उनसे सम्मेलन सानुरोध प्रार्थना करता है कि वे शीघ्रतर ऐसा करें।

(ज) सम्मेलन पटियाला प्रमुख उन पंजाबी राज्यों को बधाई देता है जिन्होंने जनता की भाषा पंजाबी को राज्य भाषा रूपेण स्थापित किया है। साथ ही सम्मेलन उनसे प्रार्थना करता है कि प्रजा में प्रचलित देवनागरी लिपि को भी गुरुमुखी लिपि के साथ-साथ पंजाबी भाषा लिखने के लिए उपयोग किये जाने की स्वीकृति दें और अपने राज्यों की नागरी प्रेमी जनता की माँग को पूर्ण करें। सम्मेलन पंजाब के अन्य राज्यों से अनुरोध करता है कि इसी प्रकार वे भी जन-भाषा और जन-लिपि का शासन कार्यों में प्रचलन स्वीकार करें।

निश्चय हुआ कि प्रधान मंत्री इस बात का ध्यान रखेंगे कि मंतव्य का (क) भाग उन देशी रियासतों के अधिकारियों के पास न भेजा जाय जहाँ की भाषा हिन्दी नहीं है।

अन्य भाग जिन राज्यों से सम्बन्ध रखते हों उनके अधिकारियों के पास भेजे जायँ। प्रस्ताव का अंगरेजी अनुवाद भी भेजा जाय।

(ज) भाग के विषय में पत्र में यह भी लिखा जाय कि वे इस सम्बन्ध में सम्मेलन से जो सेवा लेना चाहें लिखें।

४—चौथा मंतव्य इस प्रकार था

[४]

सम्मेलन ने अपने गत अधिवेशन में भारतीय रेडियो की नीति विषयक जो प्रस्ताव किये थे उनको मानकर हिन्दी के लेखकों और कवियों ने रेडियो विभाग से जो असहयोग किया—सम्मेलन उसकी सराहना करता है और उनकी दृढ़ता पर उन्हें बधाई देता है।

इसी प्रकार हिन्दी और अन्य भाषाओं के पत्रों तथा सार्वजनिक संस्थाओं ने इस आन्दोलन में जो सक्रिय सहयोग प्रदान किया है उसके लिए सम्मेलन उन्हें धन्यवाद देता है।

भारतीय गवर्नमेंट ने अब तक सम्मेलन की न्याययुक्त माँगों को स्वीकार न कर अपनी अराष्ट्रीय, साम्प्रदायिक और पक्षपातपूर्ण नीति का स्पष्ट प्रदर्शन किया है। सम्मेलन इसकी निन्दा करता है और स्थायी समिति द्वारा गत २५ मार्च को स्वीकृत मंतव्य की पुष्टि करते हुए वायसराय महोदय से बलपूर्वक अनुरोध करता है कि वह सूचना और प्रचार विभाग को सर सुल्तान अहमद के अधीन और अधिक न रहने दें और किसी ऐसे सदस्य को सौंपें जो साम्प्रदायिकता और हिन्दी विरोध के हठ से बचकर निष्पक्ष भाव से हिन्दी के साथ न्याय कर सकें।

सम्मेलन को ज्ञात हुआ है कि रेडियो विभाग के डाइरेक्टर जनरल मुंशी बुखारी का दूसरा पंचवर्षीय कार्यकाल समाप्त होने वाला है। वे अपने १० वर्ष के लम्बे कार्यकाल में निरन्तर हिन्दीविरोध की खुली नीति बरतते रहे हैं। यह सम्मेलन समस्त हिन्दी जगत की ओर से बलपूर्वक भारत सरकार से माँग करता है कि मुंशी बुखारी सदृश पक्षपातपूर्ण व्यक्ति को अब तीसरे पंचवर्षीय काल के लिये पुनः कदापि नियुक्त न किया जाय। उनको फिर नियुक्त करना केवल वैयक्तिक पक्षपात और हिन्दी जगत के प्रति असह्य अत्याचार होगा।

सम्मेलन की यह दृढ़ माँग है कि पिछले १५ वर्ष में रेडियो विभाग की ओर से हिन्दी के प्रति जो अन्याय होता रहा है उसे भारतीय गवर्नमेंट समाप्त करे और मौलवी बुखारी के स्थान पर हिन्दी के किसी ऊँचे विद्वान् को नियुक्त करे।

भारत-सरकार के प्रत्येक विभाग की नीति के लिये सरकार समष्टि रूप से उत्तर-दायी है। अतः यह सम्मेलन भारत सरकार की कार्यकारिणी कौंसिल के सदस्यों से अनुरोध करता है कि वे रेडियो विभाग की नीति को बदलवावें और यह नीति स्वीकृत करावें कि हिन्दी में समाचार आदि सब विषयों का प्रसार उत्तर भारतीय केन्द्रों से आरम्भ किया जाये और रेडियो विभाग में मुख्य डाइरेक्टर तथा अन्य डाइरेक्टरों के पदों पर हिन्दी के विद्वानों को काम करने का अवसर दिया जाय। सम्मेलन हिन्दी जगत को आदेश देता है कि इस विषय का आन्दोलन तीव्रगति से आगे बढ़ावे और तब तक जारी रखे जब तक सम्मेलन की माँगें स्वीकार न हो जायें।

निश्चय हुआ कि प्रधान मंत्री के पत्र के साथ डाक्टर जयकर साहब की राय का पत्र तथा सम्मेलन के मंतव्य का अंगरेजी अनुवाद भारत सरकार और एक्जीक्यूटिव कौंसिल के सब सदस्यों के पास भेजा जाय।

५—पांचवां निश्चय निम्नप्रकार था—

[५]

हिन्दी चल-चित्रों की भाषा साहित्य और कला की दृष्टि से हिन्दी के सर्वजन-सुलभ रूप से अनिच्छित दिशा में दूर हट रही है। विदेशी शब्दों, भावों तथा संस्कृति का प्रभाव बढ़ रहा है। समाज के जीवन में दृश्य-काव्य के महत्त्व को दृष्टि में रखते हुए यह सम्मेलन इस प्रवृत्ति को समाज के सांस्कृतिक विकास के लिए घातक समझता है। इस सम्मेलन के विचार में भारतीय चल-चित्रों में अच्छी हिन्दी का ही प्रयोग किया जाना चाहिये। सम्मेलन के मत में भारत-सरकार के सूचना विभाग की ओर से निर्मित प्रचार और शिक्षण चित्रों की भाषा में भी अच्छी हिन्दी नहीं है।

उपयुक्त चित्रों के निर्माण और प्रचार में सहायता देने तथा अवांछित प्रवृत्तियों का निराकरण करने के लिए यह सम्मेलन स्थायी समिति को आदेश देता है कि एक समिति बनावे जो चित्र निर्माताओं, वितरकों, प्रदर्शकों, लेखकों, कवियों, कलाकारों तथा पत्रकारों और जनता का सहयोग प्राप्त कर इस उद्देश्य की पूर्ति करे।

प्रधान मंत्री ने बताया कि बम्बई में उन्होंने सिनेमा कम्पनी के कलाकारों तथा डाइरेक्टरों से इस विषय में बातचीत की है। वे लोग सहयोग देने को तैयार हैं।

निश्चय हुआ कि इस विषय में कोई कमेटी बनाने का प्रश्न अभी स्थगित रखा जाय।

६—छठा मंतव्य इस प्रकार था—

[६]

पंजाब विश्व विद्यालय ने पंजाबी भाषा के लिखने के लिए नागरी लिपि को स्वीकार कर पञ्जाब की जनता के एक बहुत बड़े भाग के साथ न्याय किया है। इसके लिये यह सम्मेलन पञ्जाब विश्वविद्यलय को धन्यवाद देता है।

प्रधान मंत्री ने बताया कि एक पत्र के साथ निश्चय की प्रतिलिपि उक्त विश्वविद्यालय के वाइस चैंसलर तथा वहां के रजिस्ट्रार के पास भेजी जा चुकी है।

निश्चय हुआ कि निश्चय की प्रतिलिपि अंगरेजी में भी भेजी जाय।

७—सातवाँ निश्चय इस प्रकार था—

[७]

दिल्ली प्रांतीय सम्मेलन ने दिल्ली म्युनिस्पिल्टी के चुनावों में खड़े होने वाले निर्वाचन इच्छुकों से दिल्ली म्युनिस्पिल कमेटी में हिंन्दी भाषा को स्वीकृत कराने की प्रतिज्ञा लेकर जो कार्य किया है उसके लिए यह सम्मेलन उसे बधाई देता है।

प्रधान मंत्री ने बताया कि निश्चय की प्रतिलिपि दिल्ली प्रान्तीय हिंदी साहित्य सम्मेलन के मंत्री के पास भेजी जाचुकी है।

[८]

हिंदी कार्य को उत्तेजना देने के लिए उदयपुर के हिन्दी विद्यापीठ ने जो पंचवर्षीय योजना उपस्थित की है उसके लिए सम्मेलन उसे धन्यवाद देता है, किन्तु उसमें कई बातें ऐसी हैं जिन पर गम्भीर विचार की आवश्यकता है। अतः सम्मेलन निम्नलिखित सज्जनों की समिति उस पर विचार करने और अपना मत स्थायी समिति के सामने उपस्थित करने के लिये नियत करता है—

१—श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी
२—श्री पुरुषोत्तमदास टंडन
३—श्री मौलिचंद्र शर्मा
४—श्री मुनि जिनविजय
५—श्री जनार्दनराय नागर (संयोजक)

प्रधानमंत्री ने बताया कि निश्चय की प्रतिलिपि श्री संयोजक जी के पास भेजी जा चुकी है।

[९]

यह सम्मेलन नियमावली पर पुनः विचार और आवश्यक संशोधन करने की दृष्टि से श्री मौलिचन्द्र शर्मा, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, श्री महेन्द्र जी, श्री मथुराप्रसाद सिंह तथा श्री उदयनारायण त्रिपाठी (संयोजक) की समिति नियत करता है और उनको आदेश देता है कि वे अपने संशोधन स्थायी समिति के सामने यथाशीघ्र उपस्थित करें। सम्मेलन कार्यालय द्वारा ये संशोधन स्थायी समिति के सदस्यों के पास भेज दिए जायंगे। स्थायी समिति कम से कम १५ दिन पश्चात् इन संशोधनों पर विचार करेगी और अपने निर्णय से नियमावली में आवश्यक संशोधन कर नई स्वीकृत नियमावली के अनुसार कार्य प्रारंभ कर देगी।

प्रधानमंत्री ने सूचित किया कि निश्चय की प्रतिलिपि उक्त विषय में निर्मित समिति के संयोजक के पास भेजी जा चुकी है।

[१०]

१०—दसवाँ निश्चय निम्नप्रकार था—

इस सम्मेलन का निश्चित मत है कि राजस्थान के साहित्य का हिन्दी में उतना ही स्थान है जितना ब्रजभाषा, अवधी तथा भोजपुरी का। सम्मेलन का मत है कि विश्व-विद्यालयों और प्रान्तीय तथा रियासती शासनों के शिक्षा विभागों की परीक्षाओं के ग्रन्थों में राजस्थान की साहित्यिक कृतियों का उचित स्थान होना चाहिये। सम्मेलन का अनुरोध है कि हिंदी के लेखक इस ओर ध्यान रखेंगे।

निश्चय हुआ कि मंतव्य की प्रतिलिपि राजस्थान हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पास, सब विश्वविद्यालयों, प्रान्तीय तथा रियासतों के शासनों के प्राइम मिनिस्टरों तथा डाइरेक्टरों के पास भेजी जाय।

११—ग्यारहवाँ निश्चय निम्न प्रकार था—

[११]

इस सम्मेलन को पता लगा है कि भारत-सरकार के अर्थ विभाग ने दो सहस्र रुपए के एक पारितोषिक की घोषणा की है और तत्संबंधी प्रतियोगिता में भाग लेने वालों से यह मांग की है कि वह दाशमिक रीति की मुद्राओं के लिए अपने कच्चे चित्र उपस्थित करें। सम्मेलन इस प्रश्न पर कि दाशमिक रीति उचित होगी या अनुचित कोई मत प्रकट नहीं करता। किन्तु यदि नई दाशमिक रीति के अनुसार सिक्कों का चलन किया जाय तो सम्मेलन के मत में रुपए के सौवें अंश का नाम पैसा ही रखना उचित होगा। पच्चीस पैसे के सिक्के को पचीसा और पचास पैसे के सिक्के को पचासा कहा जाय।

चालू सिक्कों के चारों ओर जो लताचित्र हैं उनमें कमल के साथ जो अन्य देशों के प्रतीक स्वरूप कुछ फूल रखे गए हैं वे अनावश्यक हैं। सम्मेलन का मत है कि केवल कमल ही पर्याप्त और उचित है।

चालू सिक्कों में रोमन अक्षरों में इंडिया और उसके नीचे ईसवी सन् दिया रहता है। सम्मेलन की सम्मति में इंडिया के स्थान पर देवनागरी अक्षरों में 'हिंद' और 'पैसा', 'पचीसा' आदि लिखा रहना चाहिए।

निश्चय हुआ कि इस विषय में प्रचार किया जाय और केन्द्रीय सरकार के पास मंतव्य की प्रतिलिपि भेजी जाय।

१२—बारहवाँ निश्चय निम्न प्रकार था—

[१२]

हिंदी माध्यम द्वारा उच्च शिक्षा प्रदान के अभिप्राय से बिड़ला एजुकेशनल ट्रस्ट ने बी० ए०, बी० एस्सी० और बी० काम के भिन्न-भिन्न विषयों पर हिन्दी में पाठ्य पुस्तकें प्रस्तुत करने की जो योजना की है उसका यह सम्मेलन हार्दिक अभिनंदन करता है और आशा करता है कि उसके प्रकाशित निश्चय के अनुसार जून सन् १९४६ तक सौ पाठ्य पुस्तकें प्रकाशित हो जायँगी और ट्रस्ट आगे भी उच्च से उच्च शिक्षा के योग्य ग्रन्थ निर्माण के काम में दत्तचित रह कर हिन्दी की एक आवश्यकता की पूर्ति करेगा।

प्रधान मंत्री ने बताया कि निश्चय की प्रतिलिपि पिलानी के पते पर ट्रस्ट के मंत्री के पास भेज दी गई है।

१३—तेरहवाँ निश्चय निम्न प्रकार था—

[१३]

यह सम्मेलन इस बात पर असंतोष प्रकट करता है कि देश के हिन्दी भाषी प्रान्तों के विश्वविद्यालयों में हिन्दी भाषा को अभी तक स्वाभाविक स्थान और महत्त्व नहीं दिया गया है। अब तक सभी विश्वविद्यालयों में हिन्दी के माध्यम द्वारा शिक्षा का प्रबंध हो जाना चाहिए था। अतएव यह सम्मेलन उक्त संस्थाओं से आग्रह करता है कि इस संबंध में अपने कर्तव्य की ओर ध्यान दें और हिन्दी के माध्यम द्वारा शिक्षण प्रबंध करके हमारी राष्ट्रीयता को प्रोत्साहित करें।

यह सम्मेलन काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से तो विशेष कर यह आशा रखता है कि वह उच्चतम परीक्षाओं तक के लिये अविलम्ब हिन्दी माध्यम की व्यवस्था करेगा। काशी विश्वविद्यालय के छात्रों में भी हिन्दी माध्यम के लिए प्रबल इच्छा है और उन्होंने इसके लिए माँग की है। सम्मेलन इस माँग का समर्थन करता है और विश्वविद्यालय के अधिकारियों से आशा करता है कि वे शीघ्रतर इस माँग को पूर्ण करेंगे।

निश्चय हुआ कि प्रान्तों के विश्वविद्यालयों के पास इसकी प्रतिलिपि भेजी जाय।

१४—चौदहवाँ निश्चय इस प्रकार था—

[१४]

यह सम्मेलन मेरठ के चौधरी मुख्तारसिंह जी के विज्ञान-कला भवन की स्थापना पर और उसके द्वारा हिन्दी में कला और उद्योग संबंधी शिक्षा की योजना और पुस्तक प्रकाशन पर हर्ष एवं संतोष प्रकट करता है और उन्हें बधाई देता है।

प्रधान मंत्री ने सूचित किया कि निश्चय की प्रतिलिपि विज्ञान-कला-भवन के मंत्री के पास भेज दी गई है।

१५—पन्द्रवाँ निश्चय निम्न प्रकार था—

[१५]

यह सम्मेलन लाहौर के सरस्वती-विहार द्वारा आयोजित आँग्लभारतीय महाकोष के रसायन-शास्त्र खण्ड को प्रकाशित देखकर अपनी प्रसन्नता प्रकट करता है। सम्मेलन इस महत्त्वपूर्ण प्रयत्न की सराहना करता है और सरस्वती-विहार को हार्दिक बधाई देता है।

प्रधान मंत्री ने बताया कि निश्चय की प्रतिलिपि एक पत्र के साथ सरस्वती-विहार के मंत्री के पास भेज दी गई है।

१६—सोलहवाँ निश्चय निम्न प्रकार था—

[१६]

यह सम्मेलन काशी के हिन्दी रेलवे टाइम टेबुल कार्यालय के हिन्दी में प्रकाशित टाइम टेबुलों का हार्दिक स्वागत करता है और प्रकाशक को हिन्दी प्रचार का यह उपयोगी

कार्य करने के लिए बधाई देता है।

प्रधान मंत्री ने सूचना दी कि प्रस्ताव की प्रतिलिपि एक पत्र के साथ श्री मुकुन्दी-लाल जी के पास भेजी जा चुकी है।

[१७]

यह सम्मेलन हिन्दी में लिखी जाने वाली गणित और विज्ञान की पाठ्य-पुस्तकों में रोमन अंकों के व्यवहार को अनुचित समझता है और प्रांतीय शिक्षा-विभाग से अनुरोध करता है कि अब इस संबंध की जो पुस्तकें हिन्दी में प्रकाशित की जायँ उनमें नागरी अंकों का ही प्रयोग किया जाय।

निश्चय हुआ कि एक पत्र के साथ निश्चय की प्रतिलिपि प्रान्तीय शिक्षा-विभागों तथा राज्य के डाइरेक्टरों के पास भेजी जाय।

[१८]

यह सम्मेलन अनुभव करता है कि हिन्दी का एक पूर्ण तथा परिष्कृत व्याकरण बनना चाहिये। व्याकरण के विद्वानों तथा विभिन्न विश्वविद्यालयों को इस संबंध में तुरंत क्रियात्मक ध्यान देने की आवश्यकता है।

निश्चय हुआ कि यह समिति साहित्य समिति को आदेश करती है कि वह एक पूर्ण व्याकरण तैयार करने का आयोजन करे।

[१९]

यह सम्मेलन समस्त भारतीय राज्यों से अनुरोध करता है कि वे अपने-अपने राज्यों में कम से कम एक हिन्दी विद्यालय स्थापित करें जहाँ हिन्दी विश्वविद्यालय की प्रथमा से उत्तमा तक शिक्षा दी जाय और जहाँ पहिले से ऐसे विद्यालय स्थापित हैं वहाँ उन्हें पर्याप्त आर्थिक सहायता एवं सहयोग प्रदान करें और हिन्दी के विद्वानों को आश्रय दें।

निश्चय हुआ कि सब राज्यों के प्राइममिनिस्टरों, म्युनिस्पिल बोर्ड के चेयरमैन तथा शिक्षा विभाग के डाइरेक्टरों से पूछा जाय कि क्या वे इस काम के लिए धन की सहायता कर सकते हैं।

२०-बीसवाँ निश्चय इस प्रकार था—

[२०]

यह सम्मेलन पञ्जाब की हिन्दी-भाषी शिक्षा संस्थाओं से यह अनुरोध करता है कि वे अपनी संस्थाओं में हिन्दी भाषा और नागरी लिपि को प्रारंभिक तथा माध्यमिक शिक्षा का 'माध्यम' बनावें।

निश्चय हुआ कि पंजाब की शिक्षा संस्थाओं के पास निश्चय की प्रतिलिपि भेजी जाय।

२१—इक्कीसवाँ निश्चय निम्न प्रकार था—

[२१]

यह सम्मेलन सिंध शासन के सरक्यूलर नम्बर ५० जी० बी० वी० (ए) १-२ का जिसमें उसने हिंदुस्तानी की शिक्षा के संबंध में साम्प्रदायिक दृष्टि से यह निर्णय किया है कि मुसलमान छात्रों के लिए उर्दू या सिंधी लिपि के द्वारा ही सिखाई जाने वाली हिन्दुस्तानी ही अनिवार्य रहेगी, विरोध करता है। शिक्षा विभाग के लिए यह उचित है कि या तो सभी सिंधी छात्रों के लिए हिन्दुस्तानी को देवनागरी या फारसी लिपि के द्वारा सीखने की स्वतंत्रता हो या फिर मुसलमानों की तरह हिन्दू छात्रों के लिए भी हिन्दुस्तानी को देवनागरी लिपि या सिंधी लिपि के द्वारा सीखना अनिवार्य हो।

निश्चय हुआ कि निश्चय की प्रतिलिपि सिंध सरकार के पास भेजी जाय।

२२—बाइसवाँ निश्चय निम्नप्रकार था—

[२२]

सिंध के प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अगला अधिवेशन कराची में करने का जो निमंत्रण दिया है उसके संबंध में यह सम्मेलन स्थायी समिति को आदेश देता है कि वह आवश्यक पत्र-व्यवहार करे और यदि उसे संतोष हो तो निमंत्रण स्वीकार करे।

निश्चय हुआ कि कार्यालय से इस विषय में लिखा-पढ़ी की जाय तथा उसके बाद उचित कार्यवाही की जाय।

११—प्रधान मन्त्री ने स्थायी समिति के सदस्य श्री श्रीनाथ सिंह जी का समिति की सदस्यता तथा सम्मेलन की साधारण सदस्यता से त्यागपत्र उपस्थित किया।

सर्व सम्मति से सखेद त्यागपत्र स्वीकार किया गया।

१२—प्रधान मंत्री ने बताया कि दिल्ली के श्री सत्यदेव विद्यालंकार स्थायी समिति में दो निर्वाचन क्षेत्रों अर्थात् अन्य पारितोषिक प्राप्त विद्वानों की ओर से तथा दिल्ली प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से, प्रतिनिधि हैं। एक स्थान (दिल्ली प्रान्तीय सम्मेलन की ओर) से उन्होंने त्यागपत्र भेजा है।

सर्वसम्मति से उनका त्यागपत्र स्वीकार किया गया।

१३—प्रधान मंत्री ने श्री नारायणदास बाजोरिया का स्थायी समिति की सदस्यता से त्याग पत्र उपस्थित करते हुये बताया कि उन्होंने पत्र में लिखा है कि वे समितियों में उपस्थित नहीं हो सकते।

सर्व सम्मति से खेदपूर्वक उनका त्यागपत्र स्वीकार किया गया।

१४—प्रश्न उपस्थित हुआ कि प्रधान मंत्री जी के प्रायः बाहर रहने के कारण बैंको से रुपया कैसे निकाला जाय ?

सर्व सम्मति से निश्चय हुआ कि पंजाब नेशनल बैंक और इम्पीरियल बैंक के चलते खाते से प्रबन्ध मंत्री और अर्थ मंत्री के हस्ताक्षर से रुपया निकाला जाय।

१५—प्रश्न उपस्थित किया गया कि सम्मेलन का सम्बन्ध कमर्शियल बैंक से भी स्थापित किया जाय।

निश्चय हुआ कि कुछ रूपया कमर्शियल बैंक में भी जमा किया जाय।

१६—प्रधान मंत्री ने बताया कि राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के मंत्री ने २८०००) रु० सम्मेलन में जमा किया है।

निश्चय हुआ कि राष्ट्रभाषा प्रचार समिति से जो धन प्राप्त हुआ है वह किसी बैंक में अलग जमा किया जाय और उसका जो ब्याज मिले वह उसी में जमा हो।

स्थायी समिति का तृतीय अधिवेशन

स्थायी समिति की बैठक रविवार सौर १४ माघ संवत २००२, तारीख २७ जनवरी १९४६ को २ बजे दिन से सम्मेलन कार्यालय में हुई। निम्नलिखित सदस्य उपस्थित थे—

सर्वश्री माननीय पुरुषोत्तमदास टंडन; गुलाबराय; भदन्त आनन्दकौसल्यायन; सत्यप्रकाश; पृथ्वीनाथ कुलश्रेष्ठ; कमलनारायण देव; गंगाधर इंदूरकर; वाचस्पति पाठक; बलभद्रप्रसाद मिश्र; 'व्यथित हृदय'; मथुराप्रसाद सिंह; लक्ष्मीनारायण दीक्षित; भूपेन्द्रपति त्रिपाठी; ओंकारनाथ मिश्र; शुकदेव चौबे; उदयनारायण तिवारी; श्री रामचरण अग्रवाल; जयदेव गुप्त; महावीर प्रसाद श्रीवास्तव; जगन्नाथप्रसाद शुक्ल; सत्यदेव शास्त्री; रामचन्द्र टंडन; रामकुमार वर्मा; प्रभात मिश्र; रामलखन शुक्ल; (प्रबन्ध मंत्री)

१—नियमानुसार माननीय श्री पुरुषोत्तमदास जी टंडन ने सभापति का आसन ग्रहण किया।

२—प्रबन्ध मंत्री ने गत बैठक की कार्यवाही पढ़कर सुनाई जो स्वीकृत हुई।

३—प्रबन्ध-मंत्री ने मार्गशीर्ष सौर १ संवत् २००२ से ३० कार्तिक संवत् २००३ तक के आय-व्यय का अनुमान पत्र उपस्थित करते हुए बताया कि उस अनुमान पत्र पर पिछली कार्य समिति में विचार हो चुका है।

सर्वसम्मति से परिशिष्ट (क) के रूप में अनुमान पत्र स्वीकृत हुआ।

४—प्रबन्ध मंत्री ने स्थायी समिति के निम्नलिखित सदस्यों का त्याग-पत्र उपस्थित किया—

१-श्री श्यामसुन्दर लाल दीक्षित, आगरा; २-श्री अनन्तप्रसाद विद्यार्थी, प्रयाग; ३-श्री नरोत्तमप्रसाद नागर, प्रयाग; ४ श्री ब्रह्मदत्त विद्यार्थी, प्रयाग; ५-श्री विष्णुदत्त मिश्र 'तरंगी', दिल्ली; ६-श्री गिरिजाशंकर द्विवेदी, लखनऊ; ७-श्री जगदम्बाप्रसाद 'हितैषी' कानपुर।

और बताया कि श्री श्यामसुन्दरलाल दीक्षित जी के विषय में जब ज्ञात हुआ कि वे रेडियो विभाग को अपना सहयोग देने लगे हैं तब उनसे, एक पत्र लिखकर, वस्तुस्थिति पूछी गयी। किन्तु आज तक उस का कोई उत्तर नहीं आया। श्री दीक्षित जी का त्यागपत्र पढ़ा गया।

निश्चय हुआ कि सम्मेलन के सम्बन्ध में उनके आक्षेप निर्मूल हैं, उनका त्याग-पत्र स्वीकार किया जाय।

श्री अनन्तप्रसाद विद्यार्थी; श्री नरोत्तमप्रसाद नागर तथा श्री ब्रह्मदत्त विद्यार्थी इन तीन सदस्यों का सम्मिलित त्यागपत्र पढ़ा गया, जिसमें उन्होंने लिखा था कि वे लोग 'हिन्दुस्तानी' को राष्ट्रभाषा मानते हैं, हिन्दी को नहीं।

निश्चय हुआ कि समिति उक्त व्यक्तियों का त्यागपत्र स्वीकार करती है।

तत्पश्चात् श्री विष्णुदत्त मिश्र 'तरंगी' तथा श्री गिरिजाशंकर द्विवेदी के त्यागपत्र पढ़े गये। उन लोगों ने अपने-अपने त्यागपत्र का कारण सम्मेलन की भाषा नीति से अपनी असहमति प्रकट किया था।

निश्चय हुआ कि उक्त दोनों सज्जनों के त्यागपत्र स्वीकार किये जायँ।

इसके बाद प्रबन्ध-मंत्री ने श्री 'हितैषी' जी का स्थायी समिति तथा सम्मेलन की अन्य समितियों से त्यागपत्र उपस्थित करते हुए बताया कि उन्होंने अपने पत्र में लिखा है कि उनकी अभिरुचि अशान्त वातावरण से पृथक् रहने की है।

निश्चय हुआ कि 'हितैषी' जी को लिखा जाय कि उनका सम्मेलन से पुराना सम्बन्ध रहा है और वे इसके मान्य कार्यकर्त्ता हैं। सम्मेलन से उनका सम्बन्ध बना रहना ही उचित है।

५—आगामी अधिवेशन के विषय में सिंध प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रधान श्री बालमुकुन्द खन्ना जी का पत्र पढ़ा गया। साथ ही श्री इन्द्रदेव शर्मा का भी पत्र पढ़ा गया। सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि आगामी अधिवेशन नियम के अनुसार बड़े दिन की छुट्टियों में करांची में किया जाय। और श्री खन्ना जी को लिखा जाय कि वह प्रान्तीय सम्मेलन के प्रधान हैं इसलिए यह समिति उनका उक्त पत्र स्थान निर्णय करने के सम्बंध में पर्याप्त समझती है। किसी और से पूछने की आवश्यकता अब नहीं रही।

६—दिल्ली प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मंत्री का इस आशय का पत्र उपस्थित किया गया कि उक्त प्रान्तीय सम्मेलन की ओर से स्थायी समिति के सदस्य श्री सत्यदेव विद्यालंकार के स्थान पर—जिनका त्यागपत्र गत बैठक में स्वीकृत हो चुका है—श्री विष्णु प्रभाकर जी समिति के सदस्य स्वीकार किए जायँ।

सर्व सम्मति से श्री विष्णु प्रभाकर जी स्थायी समिति के सदस्य स्वीकार किए गये।

७—प्रबन्ध मंत्री ने सेवदह के राजेन्द्र साहित्य महाविद्यालय के प्रधानाध्यापक का पत्र उपस्थित करते हुए बताया कि उन्होंने लिखा है कि उनके विद्यालय को इस वर्ष सम्मेलन की हिन्दी विश्वविद्यालय परिषद् में प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया। इसके पूर्व दिया जाता रहा है।

निश्चय हुआ कि यह पत्र कार्यसमिति के सामने उपस्थित किया जाय।

८—प्रबन्ध मंत्री ने बताया कि सेठ गोविन्दराम सेकसरिया चेअरिटी ट्रस्ट के मंत्री ने एक पत्र भेजकर यह इच्छा प्रकट की है कि ट्रस्ट द्वारा दिए जाने वाले दो पुरस्कारों का प्रबन्ध तथा घोषणा आदि सम्मेलन द्वारा की जाय।

निश्चय हुआ कि कार्यालय इस विषय में पत्र-व्यवहार करके उनकी निश्चित योजना की जानकारी करे।

९—इसके पश्चात् निम्नलिखित शोक प्रस्ताव खड़े होकर स्वीकार किये गये—

"यह समिति हिन्दी के श्रेष्ठ और प्रसिद्ध उपन्यासकार तथा कहानी लेखक श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' और संस्कृत और हिन्दी के कवि तथा 'संसार' के सहायक संपादक श्री ईशदत्त शास्त्री 'श्रीश' की असामयिक मृत्यु पर हार्दिक शोक और उनके कुटुम्बियों के साथ समवेदना प्रकट करती है तथा उनकी आत्मा की शान्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना करती है।"

यह समिति हिन्दी के महान् पंडित साहित्य वाचस्पति श्री जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' के देहावसान पर अपना हार्दिक शोक और उनके कुटुम्बियों के साथ समवेदना प्रकट करती है। 'भानु' जी ने हिन्दी की जो सेवाएं की हैं उनसे वे हिन्दी-साहित्य के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेंगे।

रामलखन शुक्ल एम० ए०
प्रबन्ध मंत्री
२६-१-४६

कार्यसमिति का द्वितीय अधिवेशन

कार्यसमिति की बैठक रविवार १४ माघ, संवत् २००२, तारीख २७ जनवरी १९४६ को १२ बजे दिन से सम्मेलन-कार्यालय में हुई। निम्नलिखित सदस्य उपस्थित थे—

सर्वश्री माननीय पुरुषोत्तमदास टंडन; रामकुमार वर्मा; उदयनारायण तिवारी; वाचस्पति पाठक; रामचन्द्र टंडन; सत्यदेव शास्त्री; सत्यप्रकाश; आनन्द कौसल्यायन; बलभद्रप्रसाद मिश्र; जगन्नाथप्रसाद शुक्ल; शुकदेव चौबे, रामलखन शुक्ल। (प्रबन्ध मंत्री)

१—नियमानुसार माननीय श्री पुरुषोत्तमदास जी टंडन ने सभापति का आसन ग्रहण किया।

२—प्रबन्ध मंत्री ने पिछली बैठक की कार्यवाही पढ़कर सुनाई। उसमें एक स्थान पर कुछ परिवर्तन की आवश्यकता थी। सभापति जी को अधिकार दिया गया कि वे ठीक कर कुल कार्यवाही स्वीकार करें।

३—प्रबंध मंत्री ने काडर-समिति की रिपोर्ट उपस्थित की तथा इसी संबंध का अपना एक लिखित वक्तव्य पढ़ा। बहुत देर तक विचार विनिमय के पश्चात् काडर कमेटी की रिपोर्ट अंशतः स्वीकृत हुई। शेष अंश पर फिर विचार किया जायगा।

४—परीक्षा मंत्री जी ने प्रथमा, मध्यमा, उत्तमा, शीघ्रलिपि तथा हिन्दी टाइपिंग के पाठ्यक्रम की नियमित पढ़ाई के सम्बन्ध में एक योजना उपस्थित की—

सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि कार्यवाहक उपसभापति जी की अनुमति से कार्य आरंभ किया जाय और योजना की स्वीकृति विश्वविद्यालय परिषद् से ले ली जाय।

५—प्रबन्ध मंत्री ने बताया कि श्री प्रधान मंत्री जी ने कलकत्ते से पत्र लिखा है कि दिल्ली के रेडियो विरोधी लेखक संघ को रेडियो विरोधी आन्दोलन को प्रगति देने के लिए सहायता रूप में १००) सम्मेलन की ओर से दिए जाने चाहिए।

सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि उक्त संघ को १००) दिए जायँ।

६—प्रबन्ध मंत्री ने सिंध प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की सम्बद्धता का प्रश्न उपस्थित करते हुए बताया कि नियमानुसार सम्बन्ध तथा वार्षिक शुल्क आदि कार्यालय में आ चुका है। साथ ही उन्होंने यह भी सूचना दी है कि उक्त प्रान्तीय सम्मेलन के विषय में जानकारी कराने का कार्य राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के मंत्री को सौंपा गया था किन्तु अभी उनका कोई उत्तर नहीं आया।

सर्वसम्मति से निश्चिय हुआ कि यदि राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के मन्त्री की रिपोर्ट

अनुकूल आवे तो श्री कार्यवाहक उपसभापति जी को अधिकार होगा कि वे उक्त सम्मेलन का सम्बन्ध स्वीकार करें।

७—प्रबन्ध मन्त्री ने युक्तप्रान्त के प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रधान मंत्री का रेडियो विरोधी आन्दोलन के लिए आर्थिक सहायता विषयक पत्र उपस्थित किया। निश्चय हुआ कि ७५) सहायता रूप में दिए जायँ।

अधिक विलम्ब हो जाने के कारण समिति की बैठक ३० जनवरी १९४६ को ७ बजे सायंकाल के लिए स्थगित की गई।

समिति की स्थगित बैठक ३० जनवरी १९४६ को ७ बजे सायंकाल से कार्यालय में हुइ। निम्नलिखित सदस्य उपस्थित थे—

सर्वश्री माननीय पुरुषोत्तमदास टंडन; रामचन्द्र टंडन; आनन्द कौसल्यायन; शुकदेव चौबे; रामलखन शुक्ल।

कोरम न होने के कारण समिति की बैठक पुनः स्थगित कर दी गई।

स्थगित समिति की बैठक शनिवार ४ फाल्गुन संवत् २००२ तारीख १६ फरवरी १९४६ को ४ बजे संध्या से सम्मेलन-कार्यालय में हुई। निम्नलिखित सदस्य उपस्थित थे—

सर्वश्री माननीय पुरुषोत्तमदास टंडन; वाचस्पति पाठक; उदयनारायण तिवारी; रामचन्द्र टंडन; आनन्द कौसल्यायन; सत्यदेव शास्त्री; सत्यप्रकाश; जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल; रामलखन शुक्ल।

१—नियमानुसार माननीय टंडन जी ने सभापति का आसन ग्रहण किया।

२—सम्मेलन के प्रकाशनों की विक्री के सम्बन्ध में नियुक्त सोल एजेन्ट की छ मास की विक्री की संक्षिप्त रिपोर्ट पढ़ी गई। साथ ही इस विषय में कार्यसमिति का निश्चय भी पढ़ा गया।

श्री साहित्य मंत्री जी ने नियमावली के उपनियम १४ (ग) में उल्लिखित अपने कर्तव्य की ओर समिति का ध्यान आकृष्ट किया। विचार विनिमय के पश्चात् निश्चिय हुआ कि सोल एजेंट माघ मास के अन्त तक का पूरा व्योरा उपस्थित करें और अर्थ विभाग इस विषय में अपनी रिपोर्ट दे कि—

(क)—इस प्रबन्ध के पहले पिछले वर्ष के इन्हीं छ महीनों में कितने रुपए की बिक्री हुई थी?

(ख)—जहाँ तक सम्भव हो अर्थ बिभाग यह भी बतावे कि साधारण पुस्तकें कितने रुपये की बिकी थीं और कोर्स की कितने रुपयों की बिकीं थीं?

(ग)—संवत् २००० तथा २००१ की विक्री तथा उन्हीं दिनों का कार्यालय का

व्यय भी दिखाया जाय।

(घ)—यह भी स्पष्ट दिखाया जाय कि उक्त दो वर्षों में कार्यालय में कितने रुपए की फुटकल बिक्री हुई थी और आजकल सोल एजेन्ट के द्वारा कितने की हुई?

इस रिपोर्ट के साथ यह प्रश्न अगली कार्य समिति में रखा जाय।

यह भी निश्चय हुआ कि जब तक इस प्रश्न पर कोई अन्य निर्णय नहीं हो जाता तब तक वर्तमान प्रबन्ध जारी रखा जाय।

३—श्री सभापति जी की आज्ञा से श्री प्रचार मंत्री जी ने दो प्रचारकों की नियुक्ति का प्रश्न उपस्थित किया।

सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि श्री गनेश प्रसाद वर्मा (संयुक्तप्रान्त तथा बिहार के लिए) और श्री भागीरथी द्विवेदी (मध्यप्रान्त तथा राजपूताना के लिए) प्रचारक नियुक्त किए जायँ। इनको ५०) मासिक वेतन तथा १५) मासिक मंहगी का भत्ता दिया जाय। मार्ग व्यय इसके अतिरिक्त होगा।

अधिक समय बीत जाने के कारण समिति की बैठक १८ फरवरी को ७ बजे सायंकाल के लिए स्थगित की गई।

स्थगित बैठक की कार्यवाही १८ फरवरी १९४६ को ७ बजे सायंकाल से माननीय टंडन जी के सभापतित्व में प्रारम्भ हुई। निम्नलिखित सदस्य उपस्थित थे—

सर्वश्री माननीय टंडन जी, आनन्द कौसल्यायन, सत्यदेव शास्त्री, वाचस्पति पाठक, रामकुमार वर्मा, रामचन्द्र टंडन, रामलखन शुक्ल।

१—केन्द्रीय गवर्नमेंट के रेडियो विभाग का ८ जनवरी १९४६ का पत्र पढ़ा गया। जिसके द्वारा सम्मेलन को सूचना दी गई थी कि अखिल भारतीय रेडियो की भाषा सम्बन्धी भावी नीति स्थिर करने के लिए केन्द्रीय सरकार ने चार सदस्यों की एक अस्थायी कमेटी बनाई है। यह पत्र कार्यालय द्वारा भेजे गए पत्र के उत्तर में आया था।

निश्चय हुआ कि पत्र के अनुसार जो कमेटी बनाई गई है उसने हाल ही में कुछ निश्चय किए हैं। इसलिए इस विषय में जब तक उन निश्चयों का ज्ञान न हो जाय कोई कार्यवाही करने की आवश्यकता नहीं है।

२—ओरछा नरेश का पंचवर्षीय योजना बनाने के विषय का पत्र उपस्थित किया गया और इस विषय में संग्रहमंत्री डाक्टर सत्यप्रकाश जी के लिखित विचार भी पढ़े गए।

निश्चय हुआ कि यह पत्र श्री साहित्यमंत्री जी को सुपुर्द किया जाय और वे डाक्टर साहब के सुझावों पर विचार करके तथा अन्य लोगों से सलाह करके इस विषय में उचित उत्तर दे दें कि किस प्रकार से इस रुपए का उपयोग अच्छा होगा।

३—प्रबन्ध मंत्री ने सम्बद्धता के विषय में कुछ संस्थाओं के आवेदन पत्र विचारार्थ उपस्थित किए—

निश्चय हुआ कि यह प्रश्न आगामी कार्यसमिति में प्रबन्ध मंत्री जी के नोट के साथ उपस्थित किया जाय।

४—साधारण सदस्यता के विषय में कुछ सज्जनों के आवेदन पत्र विचारार्थ उपस्थित किए गए।

निश्चय हुआ कि उक्त सज्जनों का ध्यान उदयपुर अधिवेशन में स्वीकृत निश्चय ६ की ओर आकृष्ट करते हुए लिखा जाय कि 'इस निश्चय में जो समिति नियुक्त की गई थी उसके सामने वर्तमान नियमावली का संशोधन विचाराधीन है और साधारण सदस्यता के सम्बन्ध में जो नियम इस समय है उसको हटा देने का प्रश्न भी समिति के सामने है। यदि यह समझकर कि जब तक वर्तमान नियम रहेगा तब तक ही उसका लाभ आपको मिलेगा, आप सदस्य बनना चाहें तो बन सकते हैं। क्योंकि नये नियम स्थायी समिति की स्वीकृति पाकर वर्ष की समाप्ति से पहले ही चालू हो सकते हैं। यदि आप सदस्यता के लिए भेजे गए अपने पत्र और शुल्क को वापस करना चाहें तो कर सकते हैं।'

रात्रि के ६ बज जाने के कारण समिति का शेष कार्य २२ फरवरी को ७ बजे सायंकाल के लिए स्थगित किया गया।

स्थगित बैठक सौर फाल्गुन १० संवत् २००२, तारीख २२ फरवरी १९४६ को ७ बजे सायंकाल से कार्यालय में हुई। निम्नलिखित सदस्य उपस्थित थे—

सर्वश्री माननीय पुरुषोत्तमदास टंडन; उदयनारायण तिवारी; सत्यदेव शास्त्री; जगन्नाथप्रसाद शुक्ल; आनन्द कौसल्यायन; रामकुमार वर्मा; रामचन्द्र टंडन; रामलखन शुक्ल, (पबन्ध मंत्री)।

१—नियमानुसार माननीय टंडन जी ने सभापति का आसन ग्रहण किया।

२—प्रबन्ध मंत्री ने निम्नलिखित संस्थाओं के आर्थिक सहायता विषयक प्रार्थना-पत्र उपस्थित किए—

१—नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा।

२—राजेन्द्र साहित्य विद्यालय सेवदह।

३—राष्ट्रभाषा विद्यालय, बरहज।

४—राष्ट्रभाषा विद्यालय, काशी।

और बताया कि गतवर्ष उपर्युक्त क्रम के अनुसार प्रथम तीन संस्थाओं को १५०) १००) तथा १००) रु० सहायतार्थ दिए गये थे।

निश्चय हुआ कि गतवर्ष की भांति इस वर्ष भी आगरा की नागरी प्रचारिणी सभा को १५०) सेवदह के विद्यालय को १००) तथा बरहज के विद्यालय को १००) सहायतार्थ भेजे जायं। और नागरी प्रचारिणी सभा के मंत्री को लिखा जाय कि पिछले वर्ष १५०) रु० दिए गए थे वही इस वर्ष भी स्वीकार किया गया है। काशी के राष्ट्रभाषा विद्यालय के सम्बन्ध में जानकारी पर्याप्त न होने के कारण इसको सहायता देने का प्रश्न स्थगित कर दिया गया।

३—प्रबन्ध मंत्री ने श्री सहायक मंत्री को प्रधान मंत्री जी की स्वीकृति से पचपन दिनों की रियायती छुट्टी दिये जाने का विषय समिति की सूचना के लिए उपस्थित किया और बताया कि स० मंत्री इस समय इस छुट्टी का उपभोग कर रहे हैं।

सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि प्रधान मंत्री जी के इस निर्णय से समिति सहमत है।

४—प्रबन्ध मंत्री ने बताया कि जम्मू स्टेट के श्री विष्णु शर्मा दाधीच जी साधारण सदस्यता का पचास वर्षों का वार्षिक चन्दा एकमुश्त जमा करना चाहते हैं।

निश्चय हुआ कि श्री दाधीच जी को लिख दिया जाय कि पचास वर्षों का शुल्क इस प्रकार एक साथ स्वीकार करने में हम असमर्थ हैं।

५—प्रबन्ध मंत्री ने सेवदह के राजेन्द्र साहित्य विद्यालय के प्रधानाध्यापक का हिन्दी विश्वविद्यालय परिषद् में उक्त विद्यालय को प्रतिनिधित्व देने का प्रार्थनापत्र उपस्थित किया तथा इस विषय में पिछली कार्य समिति की ११ आश्विन संवत् २००२ ता० २७ सितम्बर १९४५ की बैठक का निश्चय पढ़ सुनाया। विचार विनिमय के बाद निश्चय हुआ कि कार्य समिति के पिछले निर्णय को बदलने की आवश्यकता नहीं है। अगले वर्ष इन शिक्षा-संस्थाओं की सूची पर विचार किया जाय।

६—प्रबन्ध मंत्री ने बताया कि पंजाब और काश्मीर में परीक्षाओं के जो केन्द्र तथा विद्यालय चलाये जाते हैं उनके व्यय का धन प्रति मास यहाँ से भेजा जाता है। श्री तेगराम जी चाहते हैं कि प्रति मास के बदले ६-६ महीने का धन एक साथ भेज दिया जाया करे।

निश्चय हुआ कि परीक्षा मंत्री जी विचार करके अपनी सम्मति दें कि सहायता का धन ६-६ महीने का भेजा जाय या प्रतिमास भेजने का वर्तमान प्रबन्ध ही चालू रखा जाय। इस विषय में परीक्षा विभाग से पूरा विवरण मांगा जाय।

रामलखन शुक्ल, एम० ए०
प्रबन्ध मन्त्री

हिन्दी जगत्

रेडियो की भाषा

[श्री रविशंकर शुक्ल]

रेडियो की भाषा-सम्बन्धी नई घोषणा के द्वारा रेडियो की हिन्दुस्तानी विषयक नीति में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं किया गया है। केवल हिन्दुस्तानी शब्दावली के विषय में आल इण्डिया रेडियो के डाइरेक्टर जेनरल को परामर्श देने के लिए स्थायी परामर्श-समिति बनाने की घोषणा की गयी है। इस समिति में सम्मेलन, अंजुमन उर्दू और हिन्दुस्तानी प्रचार सभा के प्रतिनिधि होंगे और कुछ सदस्य डाइरेक्टर जेनरल नामजद करेंगे। खबरों के अतिरिक्त शेष प्रोग्राम हिन्दी और उर्दू में होंगे, खबरें केवल हिन्दुस्तानी में होती रहेंगी।

केवल पारिभाषिक शब्दों का मामला तो नहीं है। समाचारों की, दिल्ली से नित्य ६-२५ पर होने वाले 'ऐलानों' की, स्त्री और बच्चों के प्रोग्रामों के संचालकों की और बी० बी० सी० की 'हिंदुस्तानी' सुनकर समझ में नहीं आता कि बिना आमूल परिवर्तन किये इस भाषा में सुधार होना किस प्रकार सम्भव है ? 'गाड' का अनुवाद 'ईश्वर' होगा कि 'खुदा', 'फ्राइडे' का अनुवाद 'शुक्र' होगा कि 'जुमा' ? क्या इन बातों पर समझौता हो सकता है ? हिंदुस्तान, बलगेरिया, बाल्कन, बेलग्रेड, चौरासी, चौवन, चौवालिस, सत्तावन इत्यादि बोले जायँगे कि हिंदोस्तान, बलगारिया, बलकान, बलगराड, चवरासी, चवालिस, सतावन इत्यादि ? बृटेन होगा कि बरतानिया ? इलाहाबाद होगा कि अलाहाबाद ? विदेशी, व्यापार, समुद्र, सामाजिक होगा कि बिदेशी, बैपार, समन्दर, समाजी ? 'हिंदुस्तानी' की कोई साहित्यिक परम्परा तो है नहीं! इन सब बातों का निर्णय कैसे होगा ? जिस किसी सिद्धांत का प्रतिपादन परामर्श-समिति करेगी उसका वर्तमान उर्दू वाले सम्पादक और घोषक किस प्रकार पालन कर सकेंगे।

आजकल की परिस्थिति देखते हुए इस हिंदुस्तानी को हिन्दुस्तानी प्रचार सभा का समर्थन मजे में मिल जायगा और वैसे भी परामर्श-समिति में नामजद सदस्य ऐसे और इतने होंगे कि सम्मेलन के प्रतिनिधि अकेले पड़ जायँगे। यदि उस समय सम्मेलन प्रतिनिधियों को अलग होना पड़ा तो सारे संसार के सामने घोषित किया जायगा कि हिन्दुस्तानी तो बन गयी और उसे सब ने मान भी लिया। बस केवल सम्मेलन नहीं मानता और फिर

वही हिन्दुस्तानी चलती रहेगी। रोज-रोज एक-एक शब्द के बारे में कौन झगड़ा करेगा और कौन सुनेगा ? इस मायाजाल में फँसने और समय नष्ट करने से यह कहीं अच्छा है कि अभी ही कहा जाय कि भारत में रेडियो से उस भाषा में खबरें तथा अन्य सरकारी प्रोग्राम देने ही पड़ेंगे जिसका नाम हिन्दी है। जब बङ्गला, मराठी आदि में खबरें हो सकती हैं तब एक हिन्दी ही क्यों नहीं हो सकतीं ?

हिंदुस्तानी के रहते आल इण्डिया रेडियो प्रोग्राम-स्टाफ की भरती सम्बन्धी नीति में कोई परिवर्तन करने को बाध्य न होगा। उर्दू के पण्डितों और श्री बोखारी के दोस्तों और सम्बन्धियों के लिए द्वार इस प्रकार खुला रहेगा। वर्तमान स्टाफ का ज्ञान इतना विस्तृत है है कि उन्हें हिन्दी के कवियों और उनके ग्रन्थों के नाम भी नहीं मालूम हैं। इन्हीं लोगों की परवरिश के लिए रेडियो-विभाग इतना परेशान रहता है।

हिन्दी में समाचार न घोषित होने का अर्थ है कि हिन्दी का कोई आफिशियल अस्तित्व नहीं है और सरकार हिन्दी को स्वीकृत नहीं करती—आफिशियल भाषा 'हिंदुस्तानी' है। गत आफिशियल प्रोग्राम को हिन्दी में होने की छूट इसलिये दे दी है कि बाहरी लेखकों का सरकारी भाषा 'हिंदुस्तानी' में लिखने के लिए बाध्य करना संभव नहीं है। जब समाचार केवल 'हिंदुस्तानी' में होंगे तो यह तो स्पष्ट ही है कि अन्य सरकारी प्रोग्राम अर्थात् वे प्रोग्राम भी, जिनको रेडियो का वेतनभोगी स्टाफ लिखता है, केवल 'हिंदुस्तानी' में होंगे। दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि हिंदुस्तानी के निर्माण में योग देना हिंदी का प्रांतीय भाषा के पद से भी निकालने की ओर पहला कदम है। आज कहा जा रहा है कि सरकारी प्रचार हिंदी में नहीं होंगे। कल कहा जायगा कि युक्तप्रान्त की राज-भाषा अर्थात् सरकारी काम-काज की भाषा 'हिंदुस्तानी' होगी। हाँ, जो नागरिक चाहे वह हिंदी में बोल सकता है और हिंदी में अर्जी दे सकता है।

रेडियो की हिंदुस्तानी जैसी बनेगी उसी में इन्फार्मेशन फिल्म, न्यूज-फिल्म और एजुकेशनल फिल्म भी बनेंगे, अर्थात् ये फिल्म बंगला, मराठी, गुजराती आदि प्रान्तीय भाषाओं में बनेंगे और 'हिंदुस्तानी' में बनेंगे, हिंदी में नहीं बनेंगे। बी० बी० सी० आज भी ऐसा ही कर रहा है और जब तक आल इण्डिया रेडियो सरकारी प्रोग्रामों के लिए हिंदी को स्वतन्त्र स्थान नहीं देगा तब तक ऐसा ही करता रहेगा।

सम्मेलन सिद्धान्त की दृष्टि से भली भांति सोच देखे। यह बात नहीं है [illegible] कुल मिलाकर चालीस मिनट की खबरें हैं, चाहे जैसे और चाहे जिस भाषा में हो [illegible]य। वास्तव में सारा दारोमदार इसी पर है। सम्मेलन राष्ट्रीय सरकार से हिंदी की [illegible]वृद्धि की आशा न रक्खे। उसका रवैया हिंदी-उर्दू के स्थान में केवल हिंदुस्तानी प्र[illegible]ग करने और प्रांतीय

भाषाओं की सूचना से हिंदी को निकालने के विषय में और भी सख्त होगा। स्थिति से ऐसा ही मालूम होता है।

बिना प्रोग्राम स्टाफ का सुधार हुए और सब सुधार फाइलों में धरे रह जायँगे। हिंदुस्तानी समाचार बुलेटिन उर्दू लिपि में ही लिखे जाते रहेंगे और केवल उर्दू जानने वाले घोषकों द्वारा पढ़े जाते रहेंगे जिससे साधारण से साधारण हिंदी शब्दों और नामों की कपाल-क्रिया होती रहेगी?

गजलों और गीतों का भाषा से सीधा सम्बन्ध है। ये चीजें खबरों के अतिरिक्त हैं और इसलिए इनका अनुपात भी परामर्श समिति को निर्धारित करना चाहिये। आज कल ये प्रत्येक स्टेशन से ९० प्रतिशत गजलें और वे भी उर्दू के महान कवियों की साहित्यिक गजलें और मुश्किल से १० प्रतिशत गीत ब्राडकास्ट कर रहे हैं। गीतों में भी अधिकांश ९० प्रतिशत के रचयिता मुसलमान हैं, जिनको हिंदी का ज्ञान नहीं और जिनकी भाषा उर्दू प्रधान है—केवल दो चार हिंदी शब्द तोड़ मरोड़कर इधर-उधर रख दिये जाते हैं। ये गीत भावशून्य होते हैं। हिंदी के साहित्यिक गीतों का और आधुनिक हिंदी कवियों के गीतों का पूर्ण बहिष्कार कर दिया गया है। स्टाफ में दो सज्जन गजल और गीत छांटने के लिए रखे गये हैं वे उर्दू के तो पण्डित हैं परन्तु हिंदी का 'क', 'ख', 'ग' भी नहीं जानते। जो गीत उर्दू लिपि में लिखकर मुसलमान कवि भेज देते हैं उनमें से कुछ छांटकर दो-दो, चार-चार गजलों के बाद एक-एक गीत रख देते हैं।

अन्त में मैं फिर यह कहूँगा कि जब तक हिंदी को एक स्वतन्त्र भाषा के रूप में सरकारी तौरपर सरकारी प्रोग्रामों जैसे खबरों के लिए स्वीकृत नहीं किया जाता जब तक रेडियो की नीति में सुधार होने की आशा नहीं है।

———

जातक

[प्रथम द्वितीय तथा तृतीय खण्ड]

अनुवादक : भदन्त आनन्द कौसल्यायन

इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् पं० जयचन्द्रविद्यालंकार का कथन है कि "विश्व के वाङ्मय में 'जातक' जन-साधारण की सब से पुरानी कहानियाँ हैं; मनोरंजकता, सुरुचि, सरलता, आडम्बरहीन सौन्दर्य और शिक्षाप्रद होने में उनका मुकाबला नहीं हो सकता। ये बच्चों के लिये सरल और आकर्षक, जवानों और बूढ़ों के लिये भी रुचिकर और विद्वानों के लिये प्राचीन भारत के जीवन का जीता-जागता चित्रण करने के कारण अत्यन्त मूल्यवान हैं।"

प्रथम खंड, पृष्ठ संख्या ५४०, डिमाई साइज़; सजिल्द मूल्य ७॥)
द्वितीय खंड, पृष्ठ संख्या ४६४, डिमाई साइज़; सजिल्द मूल्य ७॥)
तृतीय खंड, पृष्ठ संख्या ४४८, डिमाई साइज़; सुन्दर जिल्द मूल्य १०)

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अभूतपूर्व प्रकाशन

प्रेमघन-सर्वस्व

(प्रथम भाग)

'दो शब्द'-लेखक, माननीय श्री पुरुषोत्तमदास जी टंडन
परिचय-लेखक, स्वर्गीय आचार्य पंडित रामचंद्र शुक्ल

आधुनिक हिन्दी के एक निर्माता, हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के भूतपूर्व सभापति, स्वर्गीय उपाध्याय पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की सम्पूर्ण कविताओं का विशाल संग्रह-ग्रंथ। हिन्दी में प्रथम और अपूर्व काव्य। लेखक के चित्रों से सुसज्जित और सजिल्द। मूल्य ६)

साहित्य मंत्री—हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

सम्मेलन-पत्रिका

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की मुख-पत्रिका

पौष २००२

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन
प्रयाग

सम्पादक—श्री रामचंद्र टंडन

विषय-सूची

भाग ३३, संख्या ३ : पौष २००२

सम्मेलन-पत्रिका

"साहित्य लहरी" का रचना काल

(श्री महावीरसिंह, गहलोत एम० ए०, रिसर्चस्कालर, काशी हिंदू विश्वविद्यालय)

सूर रचित बृहत् काव्य में केवल "साहित्य लहरी" का एक सौ नवाँ पद ही है, जिसमें स्वयं कवि ने काल का निर्देश दिया है। इस पद को सूर साहित्य के सभी समीक्षक अनिवार्य रूप से तिथि ज्ञात करने के लिए उपयोग में लाते हैं। न मालूम किस धारणा के आधार पर आज तक के अधिकांश शोधक "लहरी" को कवि की अंतिम रचना मानकर, 'सूर-सारावली" से कवि का ६७ वर्ष का संकेत लेकर,[१] चट से कवि की जन्मतिथि खोज निकालते हैं। इस प्रकार का निष्कर्ष निकालना उचित नहीं है। उदाहरण स्वरूप विद्या-विभाग (काँकरोली) के श्री द्वारकादास परिख का निष्कर्ष उन्हीं के शब्दों में सुनिए—"ओ तो निश्चय छे के सूरसागर नी रचना पछीज सारावली अने साहित्य लहरी नी रचना थपेली छे"।[२] इस धारणा के आधार पर वे सूर के जीवन संबन्धी कई तिथियों को शोध निकालते हैं जो कि सर्वथा असंगत है। प्रथम तो यह कि क्या सूर ने संवत् १६०७ तक एक लाख पद बना लिए थे ?[३] सूर का शरण काल संवत् १५६६ (काँकरोली द्वारा मान्य) है जब केवल ४१ वर्षों में कवि ने एक लाख पद रचे तो अपने शेष जीवन अर्थात् ३३ वर्षों में (संवत् १६०७ से संवत् १६४० तक) उसने क्या एक भी पद नहीं बनाया ? दूसरी ओर लोग यह भी कहते हैं कि सूर के अंत समय तक एक लाख पद बने थे और भगवान ने "सूरश्याम" छाप के २५ हज़ार पद सागर में जोड़े। इसकी आंशिक पुष्टि गो० हरिराम जी के "भावप्रकाश" से भी हो सकती है।[४] इन विरोधी बातों को देख कर हमें अब "सारावली" का नाता "लहरी" की रचना-तिथि से नहीं जोड़ना चाहिए। और यह भी नहीं मानना चाहिए कि "साहित्य लहरी" कवि की अंतिम रचना है।

---

१. 'गुरु प्रसाद होत यह दरशन सरसठ वरष प्रवीन", सारावली पंक्ति १००२।
२. प्राचीन वार्तारहस्य, भाग २रा, पृ० ४३ (गुजराती विभाग)।
३. 'ता दिन ते हरिलीला गाई एक लक्ष पद बन्द" सारावली, पंक्ति ११०३।
४. प्राचीन वार्ता रहस्य, भाग २रा पृ० ४७।
५. सम्मेलन-पत्रिका, भाग ३२ संख्या ११ पृ० ६।

"साहित्य लहरी" की रचना का क्या हेतु है? यह हम प्रकट कर चुके हैं। अभी लहरी के रचना काल पर ही विशेष ध्यान देना है। "साहित्य लहरी" का एक सौ नवाँ पद है—

मुनि पुनि रसन के रस लेख।
दसन-गोरी-नन्द को लिखि सुबल संवत् पेख ॥
नन्दनन्दन मास छैते हीन तृतिया बार।
नन्दनन्दन जनम ते हैं बान सुख आगार ॥
तृतिय रीछ सुकर्म योग विचार सूर नवीन।
नन्दनन्दन दास हित साहित्य लहरी कीन ॥ १०६ ॥

इस पद की प्रथम पंक्ति और अंतिम पंक्ति के अर्थ पर बहुत कुछ विचार उठ रहा है। अंतिम पंक्ति का अर्थ तो हम प्रकट कर चुके हैं।[1] प्रथम पंक्ति के अर्थ पर यहाँ विचार करना है। इस पंक्ति का अर्थ बहुत विद्वानों ने लगाया है, जिनमें प्रमुख हैं (क्रमशः)— १. सरदार कवि २. भारतेन्दु (और बा० रामदीन सिंह) ३. स्व० पं० रामचन्द्र शुक्ल और ४. प्रो० मुन्शीरामजी शर्मा। अन्य विद्वानों ने उपर्युक्तों के मतों को ही उलट फेर करके अपना तर्क दिया है। प्रथम दो पंक्तियों का अर्थ इस प्रकार हुआ—

"मुनि पुनि रसन के रस लेख।
दसन-गोरी-नन्द को लिखि सुबल संवत् पेख ॥"

मुनि = ७ रसन (रस नहीं अर्थात् शून्य) = ० रस = ६

दसन-गोरी-नन्द (गणेशजी का एक दाँत) = १. 'अंकानां वामतो गति', के अनुसार संवत् १६०७ हुआ।

यही अर्थ सभी को मान्य है, पर सब लोगों का मतभेद 'रसन' शब्द के अर्थ पर है। सरदार कवि ने 'रसन' का उपर्युक्त अर्थ ही लिया है पर उन्होंने 'रसन' शब्द की ाख्या नहीं की है।

स्व० पं० रामचन्द्रजी शुक्ल अर्थ तो संवत् १६०७ ही निकालते हैं पर अन्य प्रकार से—'पुनि' के स्थान पर 'सुनि' पाठ मानकर शून्य ० अर्थ लेते हैं और 'रसन के रस' (रसना के रस) का अर्थ ६ लेते हैं। भारतेन्दु के तिलक में एक विचित्रता है। एकसौ नवें पद की व्याख्या करते समय तो 'रसन' (रसना) का अर्थ १ लगाया गया है, पर अन्त में संवत् १६०७ लिखा गया है।[2] बहुत सम्भव है भारतेन्दुजी ने १६१७ संवत् का अर्थ लगाया

१. "सम्मेलन-पत्रिका", भाग ३२ संख्या ११ पृ० ६।
२. "साहित्य लहरी"—खड्ग विलास प्रेस (प्रथम संस्करण) पृ० १०२।

हो और सम्पादन के समय (जो कि भारतेन्दुजी के स्वर्गवास के ८ वर्ष पश्चात् हुआ था) बा० रामदीन सिंह जी ने इस फेर पर ध्यान न देकर (उस समय का मान्य) संवत् १६०७ लिख दिया हो ?

प्रो० मुन्शीरामजी शर्मा (कानपुर) हमारे सन्मुख सूर के सम्बन्ध में दो नई बातें लेकर आते हैं । आप सूर को ब्रह्मभट्ट सिद्ध करने के अतिरिक्त लहरी का रचनाकाल संवत् १६२७ मानते हैं ।[१] आप 'रसन' का अर्थ रसना' लगा कर उसकी व्यापार वृत्ति की ओर संकेत करके २ लगाते हैं । आपका तर्क है कि "वृषभ संवत्" १६२७ में ही पड़ा था । एकसौ नवें पद में "सुबल संवत् पेख" (पंक्ति दूसरी में) दिया गया है । मुन्शीरामजी 'सुबल संवत्' का अर्थ 'वृषभ संवत्' लगाते हैं । इस प्रकार अर्थ लगाने का क्या अर्थ है ? यह रहस्य वे ही जाने ? संवत्सरों की सूची में अड़तालीसवाँ संवत्सर अवश्य ही "वृषभ" आता है ।[२] पर वह 'सुबल संवत्' से क्या नाता रखता है यह विज्ञ ज्योतिषियों के लिए भी एक पहेली है । आशा है कोई इसके मंडन में प्रमाण हों तो प्रकट करने की कृपा करेंगे ? यह धारणा नितान्त कल्पित ही जान पड़ेगी जब हम आगे जाकर गणित द्वारा इस संवत् की तिथि और बार का निर्णय करेंगे । हाँ, तो इस समय तीन मत लहरी की रचना तिथि के संवत् के विषय में हैं—१६०७, १६१७ और १६२७ ।

एकसौ नवें पद में संवत् के अतिरिक्त तिथि, वार, नक्षत्र और योग भी दिए हैं, तनिक उन्हें भी निश्चय करलें । "नन्दनन्दन मास"—का अर्थ कृष्ण मास लगाया जाता है । इसका अर्थ कुछ कृष्ण द्वारा गीता में कथित "मासानाम मार्गशिर्षा:" न लगावें, वरन् कृष्ण मास (बैशाख मास) ही ठीक है क्योंकि बैशाख में ही अक्षय तृतीया और कृतिका नक्षत्र आते हैं (जो कि आगे पद में दिए हैं) ।

"छैते हीन तृतिया" (क्षय से हीन तृतिया) अर्थात् अक्षय तृतीया । "वार, नन्द-नन्दन जनम ते हैं बान" (कृष्ण जन्म दिवस से ५वाँ वार) अर्थात् बुधवार से ५वाँ वार, रविवार हुआ । कृष्ण जन्म दिवस के संबन्ध में भले ही[3] विवाद हों पर हमें बुधवार ही मानना है क्योंकि स्वयं सूर ने बधाई के पद में गाया है—

"रोहिणी, बुध, आठै अंधियारी, हर्षन जोग परयौ है ।"

---

[१] "सूर-सौरभ"—प्रो० मुन्शीरामजी शर्मा कृत ।

[२] लिस्ट आफ़ सम्वत्स यूज़्ड इन नार्थ इण्डिया (इण्डियन ऐण्ड फ़ारेन क्रानालोजी १६२८ ए. डी.) बाई बी. बी. केटकर पृष्ठ ७७ चेप्टर ११ ।

पृष्ठ ३ की टिप्पणी—

[३] बधाई का पद—"नन्दजू मेरे आनन्द भयो ।"

"तृतीय तीज" (३रा नक्षत्र)—अर्थात् कृतिका नक्षत्र।

"सुकर्म योग"—एक योग विशेष जो अक्षय तृतीया को पड़ता है।

इस प्रकार हमारे पद का अर्थ हुआ—संवत् (?) में बैशाख मास, अक्षयतृतीया, रविवार, कृतिका नक्षत्र और सुकर्मयोग में सूर ने साहित्य लहरी रची।[१] अब पञ्चांग के गणित द्वारा देखेंगे कि कौन संवत् ठीक पड़ता है?[१]—वैशाख मास, अक्षयतृतीया, कृतिका नक्षत्र और सुकर्म योग में—

संवत् १६०७ (चैत्रादि) को शनिवार था। (१६ अप्रेल १५५० ए० डी०)
संवत् १६१७ (,,) को रविवार था। (२८ अप्रेल १५६० ए० डी०)
संवत् १६२७ (,,) को शनिवार था। (८ अप्रेल १५७० ए० डी०)

उपर्युक्त तालिका से संवत् १६१७ ही "साहित्य लहरी" का रचनाकाल सिद्ध होता है। लगे हाथों एक भावी समस्या से अभी ही निपट लेते हैं। कुछ का कथन है कि लहरी का संकलन (कूट पदों का संग्रह) रहीम जी ने करवाया था और सम्भव है संकलनकर्त्ता ने यह एक सौ नवाँ पद रचा हो। इस पक्ष के पंडित अर्थ करते हैं—मुनि = ७ पुनि (पुनः) = ७ रसन के रस = ६ अर्थात् संवत् १६७७। इस संबन्ध में (यदि रहीम जी को इस काल तक जीवित मान भी लिया जाय तो) नम्र निवेदन है कि लहरी कोई कूट पदों का संग्रह नहीं है। वह तो एक शुद्ध क्रमबद्ध रीति-रचना है। लहरी की रचना का एक स्पष्ट हेतु है और वह है अधिकारी कृष्णराम (अष्टछाप) को काव्य का ज्ञान कराना। इसलिए वह सूर द्वारा इस रूप में नहीं रची गई, इस पर सन्देह करने का कोई कारण नहीं।[१] संवत् १६७७ तक सूर जीवित ही नहीं रहे। सम्वत् १६१७ को अमुक तिथि, मास, वार और योग को रविवार था, पर सम्वत् १६७७ (चैत्रादि) को सोमवार पड़ता है। (२४ अप्रेल १६२० ए० डी०) इसलिए पद का अर्थ संवत् १६७७ के पक्ष में नहीं लग सकता और साथ में इस अर्थ से लगी उपर्युक्त दंतकथा भी अप्रामाणिक ठहरती है।

हमें अब "साहित्य लहरी" को संवत् १६१७ (चैत्रादि) बैशाख मास, अक्षय तृतीया, रविवार, कृत्तिका नक्षत्र और सुकर्म योग में रची मानने में कुछ भी आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

—(०००)—

---

१. तिथियों के लिए देखिये—"इण्डियन इफेमेरिस भाग ५ पृष्ठ ३०४ आदि बाई सी. डी. एस. पिलाई, मद्रास १६२२ ए. डी.

पंडित प्रताप नारायण मिश्र

अनुवादक के रूप में

(श्री त्रिलोकीनारायण दीक्षित, एम० ए०)

भारतेन्दु-युग साहित्यिक जाग्रति का समय था। बाबू हरिश्चन्द्र तथा उनके समकालीन विद्वानों ने अपने सराहनीय परिश्रम द्वारा नाटक तथा निबन्ध साहित्य का सृजन किया। वास्तव में निबन्ध साहित्य उस समय की सबसे बड़ी आवश्यकता थी। उस युग में निबन्ध साहित्य का क्षेत्र अधिक विस्तृत हो गया। कहानी लेखक भी निबन्ध के माध्यम से ही अपने विचार प्रकट करते थे। परन्तु कहानीलेखक स्वतंत्र रूप से साहित्य के इस अंग की ओर अग्रसर नहीं हो रहे थे। संघर्षशील उस युग में कहानी के कल्पित जगत में भ्रमण करने का उन्हें अवकाश ही कहां था? इसी कारण कहानी तथा उपन्यास के क्षेत्र प्रायः अछूते ही पड़े रहे। प्रत्येक साहित्य में जातीय गौरव के रक्षा के भाव निहित रहते हैं। साहित्यकारों की यह हार्दिक अभिलाषा होती है कि उनकी जाति का गौरव प्रकाश में आ जाय। इस कार्य सम्पादन के साधनों में उपन्यास एवं कहानी का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। पं० प्रतापनारायणमिश्र ने इसी उद्देश्य से कुछ बंगला उपन्यासों तथा कहानियों का अपनी भाषा में अनुवाद किया था।

जिस समय हिन्दी में 'परीक्षा गुरु', 'नूतन ब्रह्मचारी' निस्सहाय हिन्दू, "सौ अजान और एक सुजान," इत्यादि छोटे-छोटे उपन्यास लिखे जा रहे थे उस समय बंगला साहित्य में उच्च कोटि के स्वाभाविक उपन्यासों की रचना हो चुकी थी। इसीलिए हिन्दी में उच्च कोटि का कथानक तथा कथा वस्तु लाने के हेतु मिश्र जी ने बंगला के उपन्यासों का अनुवाद करना आवश्यक समझा। इस ओर भारतेन्दु बाबू ने पहले भी अग्रदूत के रूप में कार्य प्रारम्भ किया था परन्तु समाप्त करने के पूर्व ही वे इस संसार से चल बसे। भारतेन्दु बाबू की इस अपूर्ण अभिलाषा को मिश्र जी ने पूरी की थी। जो वास्तव में साहित्य के लिए अत्यन्त लाभकर सिद्ध हुई।

मिश्र जी ने बंगला के चार उपन्यास 'राजसिंह', 'राधारानी', 'इन्दिरा', तथा 'युगलांगुरीय' का हिन्दी में भावपूर्ण अनुवाद किया था। इसके अतिरिक्त उन्होंने श्री ईश्वर चन्द्र विद्यासागर कृत 'कथामाला' का भी भावपूर्ण अनुवाद किया था। उपर्युक्त पाँच अनूदित पुस्तकें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त मिश्र जी की निम्नलिखित पुस्तकें भी अनुवाद ही हैं जो खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित हुई थीं और जिनके मुद्रक बाबू रामदीन सिंह जी थे;—

१. चरिताष्टक, २. पञ्चामृत, ३. नीति रत्नावली, ४. वर्ण परिचय, ५. भाग, ६. सेनवंश, ७. त्रिपुरा का इतिहास, ८. सूबे बंगाल का इतिहास, ९. सूबे बंगाल का भूगोल।

इस प्रकार पं० प्रताप नारायण मिश्र द्वारा अनुवादित उपलब्ध पुस्तकों की संख्या तेरह है। पूर्व उल्लिखित चार उपन्यास ही थे। उनके न तो अनुवाद का समय ही ज्ञात होता है और न उन पर प्रकाशन संवत् ही छपा है। 'चरिताष्टक' पुस्तक के अंतिम पृष्ठ पर जो संवत् १९५१ में छपी थी प्रकाशक ने अपनी ओर से निम्नलिखित नोट लिखा था :—"हिन्दी भाषा में उपन्यास की कमी और उसके प्रेमियों की अधिकता देखकर हम लोगों ने बड़े व्यय और उद्योग से वंग भाषा के उपन्यास प्रचारक श्रीयुक्त बंकिमचन्द्र चेटर्जी से आज्ञा प्राप्त करके इस बड़े काम का बोझा अपने शिर लिया। हिन्दी भाषा के सुप्रसिद्ध 'ब्राह्मण' सम्पादक पंडित प्रतापनारायण मिश्र ने इन उपन्यासों का अनुवाद किया और अब छप कर प्रस्तुत है।"

उपर्युक्त उद्धरण से ज्ञात होता है कि उन चारों उपन्यासों का अनुवाद संवत् १९५१ से पूर्व ही हुआ था। इस अनुमान के अतिरिक्त निश्चय मत पर पहुँचने के लिए हमारे पास वर्तमान काल में कोई उपलब्ध प्रमाण नहीं है।

'चरिताष्टक' बंगाल के आठ महापुरुषों की जीवनी का संग्रह है तथा 'पञ्चामृत' में पांच देवताओं का अभिन्नत्व दर्शित किया गया है। 'कथामाला' तथा वर्णपरिचय' बालकोपयोगी पुस्तकें हैं जिनका अनुवाद बंगाल के 'डाइरेक्टर आफ पब्लिक इस्ट्रक्शन' सर अल्फ्रेड उडले क्रोफ्ट के० सी० आई० ई० की आज्ञा तथा बाबू रामदीन सिंह की प्रेरणा से हुआ था। ये पुस्तकें सुदीर्घ काल तक पाठ्यक्रम में भी प्रचलित रही हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि सेनवंशीय राजाओं के इतिहास 'सेनवंश' तथा 'सूबे बंगाल का भूगोल' और 'सूबे बंगाल का इतिहास' भी इसी पाठ्यक्रम के दृष्टिकोण से अनुवादित हुई थीं।

अनुवाद के लिए पुस्तकों का चुनाव खड्गविलास प्रेस के अध्यक्ष बाबू रामदीन सिंह ही करते थे। मिश्र जी को इस विषय में लेशमात्र भी स्वतंत्रता नहीं थी। अनुवादित पुस्तकों की प्रकृति स्पष्ट रूप से दो प्रकार की है। एक तो अधिकारियों की आज्ञा तथा प्रेरणाओं द्वारा अनुवादित पुस्तकें जिनका महत्व बालकोपयोगी होने के अतिरिक्त शून्यवत है। दूसरे प्रकार के वे अनुवाद हैं जिनका विषय कथासाहित्य है और जो रोमांच तथा रोमांस द्वारा पाठकों को निरन्तर आकृष्ट किए रहती है। इन अनुवादित पुस्तकों द्वारा मिश्र जी की रुचि परखना, उनके प्रति अन्याय करना होगा।

कुछ पुस्तकों का अनुवाद मिश्र जी ने अक्षरशः किया है। अतः उनके पात्र, कथानक, चरित्रचित्रण आदि पर विचार करना अभीष्ट नहीं है। जिस प्रकार साहित्य के अन्यान्य विषयों में मिश्र जी की शैली का प्रधान गुण रोचकता रहती थी उसी प्रकार

अनुवाद करने में भी उनकी शैली इस गुण से युक्त है। उनकी अनुवादित पुस्तकों को पढ़कर पाठकों का चित्त उखड़ने नहीं लगता है। भाषा के प्रवाह में उनके पाठकों का चित्त बढ़ जाता है और यही मिश्र जी की शैली की सफलता है। इन रचनाओं में फारसी और अरबी के केवल प्रचलित तथा सर्व प्रिय शब्दों का प्रयोग उपलब्ध होता है। इन पुस्तकों में नित्यप्रति प्रयुक्त होने वाले अंगरेजी के शब्द का प्रयोग भी सुलभ है। मिश्र जी की इन रचनाओं में बंगला शब्द तथा उसके वाक्य रचना की भी छाप मिलती है जो वास्तव में अत्यन्त स्वाभाविक सी बात है। इन अनुवादों में बैसवारी तथा पूर्वी हिन्दी के शब्दों के कतिपय प्रयोग उपलब्ध होते हैं।

अनुवादित ग्रंथों का गद्य न तो परिमार्जित है और न उनकी स्वतंत्र रचनाशैली के अनुकूल ही है। वास्तव में मिश्र जी ने धन उपार्जन के लिए इस ओर अपना पैर बढ़ाया था। अतः इस अनुवाद साहित्य को उनकी साहित्यिक रचनाओं में सम्मिलित करना और उनके कारण उनकी साहित्य-रचना और प्रतिभा पर मत स्थिर करना संगत न होगा।

गरुडध्वज

(श्री रामनिधि शर्मा संग्रहाध्यक्ष, हिन्दी संग्रहालय)

गरुडध्वज ऐतिहासिक नाटक है। ऐतिहासिक कथावस्तु के आधार मात्र पर अपनी ऊँची कल्पना के द्वारा मिश्र जी ने जो भव्य कलापूर्ण प्रासाद खड़ा किया है उसकी मनोरमता किसी भी पारखी के चित्त को आकृष्ट किये बिना नहीं रह सकती। गरुडध्वज के प्रारम्भ नाटक के नायक विदिशा के शुंग सेनापति विक्रममित्र के राजप्रासाद के प्रहरियों के आपसी मनोरंजनार्थ वार्तालाप से होता है। इस बातचीत की स्वाभाविक सरलता के कारण साधारण पाठक की भी नाटक के भीतर घुसने की इच्छा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है और बिना ग्रंथ को समाप्त किये सन्तोष नहीं होता। इस स्वाभाविक, सरल एवं मनोरञ्जक कथोपकथन का महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है जब वह एक ऊँचे सिद्धान्त की मर्यादा के बाँध में छेद न करने की ओर निर्देश करता है।

नागसेन—.........अभी तीन वर्ष हुए पुष्कर को भी हल्दी लगी थी और अब तुम्हें यह चिढ़ा रहे हैं।

पुष्कर—अरे भाई इसमें चिढ़ाना क्या है? धरती पर पुत्र गिरा नहीं कि घर वाले पुत्रवधू की चिन्ता में पड़े। यह छिपाता जो है तो अपने लिए नहीं तुम्हारे लिए भाँवर घूम आये।

नागसेन—दुष्ट ! वह मेरा छोटा भाई है ।

फिर

'सेनापति पुष्यमित्र ने लोकरञ्जन के लिए मर्यादा का जो बाँध बाँधा था उसमें तुम छेद न करोगे । उस मर्यादा में किस तरह के शब्द और कर्म वर्जित हैं यह तुम उस दिन जान जाओगे' ।

यह चेतावनी है उस अक्षम्य अपराध के लिए जो पुष्कर ने सेनापति विक्रममित्र के लिए वर्जित एवं निषिद्ध महाराज शब्द का प्रयोग करके किया था । इस प्रकार प्रथम सर्ग के आदि में ही मर्यादा, कर्तव्यपरायणता, तथा अनुशासन का एक ऐसा ऊँचा तल रख दिया गया है जिसको अन्त तक उठाये रखना और कहीं भी किसी प्रकार से भी नीचे न गिरने देना साधारण प्रतिभा का काम नहीं है । मिश्र जी इस कसौटी पर पूर्ण खरे उतरे हैं । जिस मनोविनोद के वातावरण से हम नाटक प्रारम्भ करते हैं उसी सुख की परिस्थिति में नाटक का अन्त भी होता है । बीच-बीच में जो विषम कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं वे भी वर्तमान समय में स्वराज्य के लिए जेल जाने के समान साधारण और सुखकर ही प्रतीत होती हैं और उनका अपना एक अलग महत्त्व रहता है ।

प्रस्तुत नाटक के चरित्रों की ओर जब हम ध्यान देते हैं तो विक्रम मित्र जैसा ऊपर कहा गया है नायक के रूप में हमारे सामने आता है । वह शुंग सेनापति है जो अपने को प्रजा का सेवक कहता ही नहीं, जानता ही नहीं वरन व्यवहारतः मानता भी है । सेवक पद के सामने उसके लिए महाराज की उपाधि अग्राह्य और तुच्छ है । गो०तुलसीदास जी के कथनानुसार 'सबसे सेवक धरम कठोरा' को अक्षरशः मानने वाला तथा तदनुकूल आचरण करने वाला वह एक वीर राष्ट्रनायक है । उसके पौरुष, उसके त्याग और चरित्र की पवित्रता से सारा राष्ट्र प्रभावित है । नागसेन जैसे प्रहरी के हृदय में भी देश की संस्कृति और उसकी मर्यादा की रक्षा की आग धधक रही है और वह भी कह उठता है 'बैठ गया है मन में किसी दिन उन गुफाओं में जाकर आग लगा दूँगा,' सेनापति की न्याय प्रियता में सबको अटूट विश्वास है । लोमश के कहने पर पुष्कर कहता है—"जानता हूँ अन्याय नहीं करेंगे ………उनका न्याय मैं देख चुका हूँ……न्याय के लिए वे अपनी आँख फोड़ सकते हैं—अपना हाथ काट सकते हैं……। मेरे साथ न्याय का एक ही रूप है और वह है मेरी मृत्यु । (पर मुझे) मृत्यु से (डर) नहीं है । (डर है) अपवाद और अनुशासन भंग के दोष से ।" प्रजा एवं कर्मचारियों की इस नैतिक उँचाई का कारण एक मात्र सेनापति का पवित्र आचरण ही हो सकता है ।

भारतीयसंस्कृति जीवन को सर्वाङ्गीण देखना चाहती है । जिस प्रकार ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करना एक सीमातक प्रत्येक मानव का धर्म है उसी प्रकार गार्हस्थ्य

जीवन में आना भी तथा तदनुकूल कर्तव्यों का पालन करना भी परम कर्तव्य है। यदि प्रत्येक मनुष्य बालपन से ही संसार से विराग ले ले और प्रकृति के नियमों के विरुद्ध आचरण करने पर ही तुल जाय तो हमें तो उसकी सिद्धि प्राप्ति में संदेह हैं। इसीलिए तो विक्रममित्र कहता है "लोमश! देखो तो क्या है? आज संध्या को तुम चले जाओ अपने घर...... संतान ही समाज का आधार है और जब तक तुम्हें संतान न हो जाय यहाँ न आना।" हमारी संस्कृति कर्म प्रधान है तर्क प्रधान नहीं। तर्क तो हमें बौद्धों की भाँति निष्क्रियता की ओर ले जाता है और संसार से संबंध विच्छेद की दीक्षा देता है। बौद्धों ने तर्क ही को अपनाया और बाल, युवा, वृद्ध नर-नारी सभी एक साथ महात्मा बन बैठे। परिणाम यह हुआ कि देश विदेशियों के अधीन चला गया और इस पवित्र भारत भूमि में दासता का बीजोरोपण हो गया। इसी दासता को निर्बीज करने के लिए विक्रममित्र आजीवन अविवाहित रह कर भीष्म की भाँति कठोर तप साधन करता है जिसमें कि उसी के वंश में पूर्वज अग्निमित्र के काल से चला आता विमाता द्रोह मिट जाय और समूचे देश पर सांस्कृतिक और भौतिक एकाधिपत्य भी पैदा हो जाय। किन्तु फिर भी अपने समाज और संस्कृति की मर्यादा के रक्षा के लिए सन्तानोत्पत्ति को अनिवार्य मानते हुये कहता है "दाम्पत्य मर्यादा में कभी बाधक नहीं हो सकता मैं......लोकतंत्र का यही आधार है।"

विक्रममित्र केवल कोरा देश भक्त ही नहीं है। वह अपने धन, धर्म, संस्कृति, मर्यादा-सर्वस्व का निछावर कर केवल देश को स्वतंत्र ही नहीं करना चाहता। प्राण विहीन शरीर लेकर वह क्या करता? उसे तो वासन्ती का विवाह, यवन श्रेष्ठी की कन्या कौमुदी का देवभूति द्वारा अपहरण, बौद्धों का देशद्रोह तथा विदेशियों का स्वदेश में प्रवेश समान महत्व रखते हैं। अपने धर्म और संस्कृति को खोकर स्वतत्र रहना भी पाप है, और ऐसा कभी सम्भव भी नहीं।

विक्रममित्र के बाद जब हम वासन्ती के चरित्र पर ध्यान देते हैं तो हमें जातकों में वर्णित उन कठोर नियंत्रणों का पता चलता है जिनमें रामायण तथा महाभारत की कथाओं का पठन पाठन भी निषिद्ध है। इस विषय को नाटककार ने वासन्ती के मुख से सीता के दोनों पुत्रों का वाल्मीकि मुनि के आश्रम के बजाय वशिष्ट मुनि के आश्रम में पैदा होने की चरचा कराके बतलाया है। वासन्ती काशिराज की राजकुमारी थी। उसका जीवन ऐसा अविकसित नहीं कहा जा सकता जिससे उसे एक साधारण सी घटना सीता के पुत्रोत्पत्ति के स्थान ही का ठीक ठीक ज्ञान न हो। वासन्ती को अपनी वास्तविक पवित्रता का सच्चा ज्ञान तो हुई है फिर भी भारतीय नारी सुलभ संकोच की भावना उसे खाये जा रही है। सेनापति विक्रममित्र के आश्वासन देने पर भी उसे विश्वास और सन्तोष नहीं होता। यह है एक भारतीय नारी का चरित्र जो चरित्र ही को भगवान् मानती है और रास्ते चलते

प्रेम का उपदेश नहीं दिया करती है। मिश्र जी के नारी पात्रों की यही विशेषता है कि वे भारतीय पद्धति से दूर न जाकर उसको छूती हुई चलती हैं।

तीसरा नर पात्र मेरे सामने कालिदास आता है। किस प्रकार का व्यक्ति कालिदास हो सकता है, उस आकृति एवं स्वरूप की कल्पना करके लेखक ने हिन्दी साहित्य में एक मौलिक काम किया है। कालिदास को विक्रममित्र स्वजात पुत्र की भाँति पालता है और उसे वह केवल मृदुल एवं सरस स्वभाव वाला एक साहित्यिक ही नहीं बनाता, वरन् उसे इस प्रकार दीक्षा देता है कि उसकी लेखनी और तलवार समान रूप से देश की रक्षा के लिए शक्ति सम्पन्न सिद्ध होती हैं। यहीं पर हम मिश्र जी के कालिदास और 'प्रसाद' के कालिदास में अन्तर पाते हैं। 'प्रसाद' का कालिदास केवल एक हाड़ मांस का भावुक पुतला प्रतीत होता है, परन्तु मिश्र जी का कालिदास एक विद्वान कवि, चतुर राजनीतिज्ञ, वीर योधा तथा अडिग देश भक्त है। इसी क्रम में मिश्र जी के दूसरे ऐतिहासिक नाटक 'अशोक' के संबंध में भी थोड़ा विचार कर लेना असंगत न होगा जिसके संबंध में श्री व्रजरत्नदास जी ने कुछ भ्रामक बातें कही हैं। इन आलोचक महोदय ने लिखा है कि प्रसाद जी के चाणक्य की भद्दी नकल है 'मिश्र' जी का धर्मनाथ। कोई चीज़ किसी चीज़ की नकल हो यह तो असंभव नहीं लगता। किन्तु यह तो सर्वथा असंभव है कि भविष्य में घटित होने वाली घटना या वस्तु की नकल वर्षों पहले कर ली जाय। मिश्र जी का 'अशोक' 'प्रसाद' के चन्द्रगुप्त से लगभग चार पाँच वर्ष पहले प्रकाशित हो चुका था। अब यदि हम श्री व्रजरत्नदास जी के विचार से देखें तो निष्कर्ष यही निकलता है कि मिश्र जी के धर्मनाथ की ही नक़ल प्रसाद का चाणक्य है अन्यथा हमें यह मानना पड़ेगा कि जिस प्रकार रामावतार के पहले ही महर्षि वाल्मीकि ने रामायण की रचनाकर दी थी, उसी प्रकार 'प्रसाद' के चाणक्य की उत्पत्ति के पहले ही मिश्र जी ने 'धर्मनाथ' की कल्पना कर ली। किन्तु यह अशोक डी० एल० राय तथा 'प्रसाद' पद्धति का नाटक है जिसमें शेक्सपीरियन अतिरञ्जना और भावावेश का समावेश है जिसके कारण भाषा की स्वाभाविकता नष्ट हो गई है और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण अति शिथिल पड़ गया है। कलिंग की राजकुमारी माया केवल तेरह वर्ष की अवस्था में अशोक की सारी सेना को रौंदती हुई उनके हाथी तक पहुँचकर तलवार का आघात करती है। यह घटना कल्पना जगत में कितनी ही मोहक क्यों न हो किन्तु वास्तविक जीवन में असंभव है।

आत्महत्या भारतीय जीवन में कभी भी समस्याओं का समाधान नहीं रही है। प्रसाद जी के नाटकों में हमें इसकी बहुलता मिलती है जो भारतीय जीवन दर्शन के सर्वथा विपरीत हैं। मिश्र जी अपने नाटकों में इस दोष से मुक्त हैं।

मिश्र जी का प्रस्तुत नाटक आधुनिक नाटक सिद्धान्तों के सर्वथा अनुकूल हैं। इसकी भाषा सरल एवं स्वाभाविक है, अनावश्यक परिस्थिति में गीत कहीं भी नहीं रखे गये हैं।

स्वगत कथन का भी कहीं प्रयोग नहीं किया गया है। अतिरञ्जना, भावावेश झूठे मनोवेग तो छू तक नहीं पाते। मनोवैज्ञानिकता ऊँचे दरजे की है। जिस परिस्थति में जो पात्र जैसी बात कहता है वैसी परिस्थति में कोई भी मनुष्य वही बात प्रकारान्तर से कहेगा अन्यथा नहीं। मिश्र जी पर केवल जी० बी० शा और इब्सन का ही प्रभाव नहीं पड़ा है वरन् यदि हम भास के मृच्छकटिक और कालिदास के शकुन्तला से पद्यभागों को निकाल दें तो स्पष्ट मालूम होता है कि इन संस्कृत नाटकारों से भी मिश्र जी प्रभावित हैं। मिश्र जी का यह नाटक आधुनिक भारतीय राष्ट्रीयता का प्रतिबिम्ब है। इसमें एक ही साथ महात्मा गांधी का उच्च नैतिक आदर्श और सुभाष बाबू का अदम्य पौरुष और बलिदान भाव है।

किन्तु हर एक चीज़ की सीमा होती है। ऐतिहासिक तथ्यों के सम्बन्ध में भी मिश्रजी ने अपनी अत्यधिक कल्पना से काम लिया है, केवल इस आशावादिता पर कि शुंग युग के इतिहास का पूरा पता लग जाने से किसी दिन मिश्र जी की कल्पना तथ्य में परिवर्तित हो जायगी। ऐसा निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। अधिक संभव तो यही लगता है कि मिश्र जी को ही ऐतिहासिक तथ्य के सामने झुकना पड़ेगा। कुछ भी हो मिश्र जी ने इस नाटक में तत्कालीन भारतीय समाज उसकी परिस्थितियों, भावधाराओं, समस्याओं और इनके कारण से पैदा हुये संघर्ष का जो चित्रण किया है वह आँखों के सामने सजीव और यथार्थ सा लगता है। पाठक आज के वस्तु जगत से निकल कर प्रायः दो हज़ार वर्ष पूर्व के भारतवर्ष में विचरण करता है। मिश्र जी के पिछले समस्यानाटक, एक बार पढ़ लेने बाद जिस तरह महीनों तक मस्तिष्क में विचार की प्रक्रिया चलाते रहने में सफल रहे हैं वही सफलता इस नाटक को भी मिली है। ऐतिहासिक नाटक का उद्देश्य यदि बीते युग को जीवनदान देना है तो हम निस्संकोच कहेंगे कि नाटककार ने उस युग को विस्मृति से निकाल कर हमारे सामने रख दिया है, किन्तु उस युग में क्या वे सभी बातें उसी रूप में हैं जिस रूप में इस नाटक में लाई गई हैं? आशा है भारतीय संस्कृति और इतिहास के विद्वान् इस नाटक पर आवश्यक प्रकाश डालेंगे।*

---

*गरुडध्वज—संस्कृति प्रधान ऐतिहासिक नाटक—लेखक—श्री पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र—प्रकाशक; गयाप्रसाद ऐण्ड सन्स, आगरा।

हिन्दी ही राष्ट्रभाषा हो सकती है।

[श्री प्रभात मिश्र, शास्त्री, साहित्य-रत्न]

आज दिन प्रायः सबने यह निर्णय कर लिया है कि अंगरेज़ी भारत की राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती। विदेशी होने के कारण यह हमारे राष्ट्र की उन्नति और हित में बाधक ही होगी। भारतीय भाषाओं में केवल तीन; हिन्दी, उर्दू और बंगला इसका दम भरती है। हम यहाँ केवल हिन्दी उर्दू का ही विश्लेषण करेंगे—बँगला को राष्ट्रभाषा बनाने वालों के बारे में कुछ कहना मैं उन लोगों के लिए छोड़ देता हूँ जो फूट को एकता समझते हैं किंकर्तव्य विमूढ़त्व को सराहनीय नीति मानते हैं। यह आवाज़ समय के साथ ही लुप्त होती जावेगी। मुझे इसके लिए न समय है न यहाँ अधिक स्थान ही।

उर्दू और हिन्दी की ही समस्या रह गई है। भारतीय सुधारकों और नेताओं को धन्यवाद है कि इनके भीतर एक हिन्दुस्तानी भाषा ने जन्म ले लिया है। मुझे उसमें कोई रुचि नहीं है हाँ कुछ-कुछ घृणा हो सकती है यदि मैं बिहार की हिन्दुस्तानी रीडर देखने को पा जाता जिसमें रानी कौशल्या को बेगम और वशिष्ठ को मौलाना की अलभ्य, अगम्य और अपूर्व उपाधि प्रदान की गई है।

हिन्दी में करीब-करीब सब ऐसे गुण वर्तमान हैं जो राष्ट्रभाषा में होने चाहिये। इसकी सरलता की प्रशंसा संसार भर के विद्वानों ने की है। प्रतिस्वर एक वर्ण होता है। इसकी वर्णमाला में प्रत्येक व्यंजन के साथ 'अ' स्वर ही संयुक्त रहता है, ऐसा नहीं कि एक वर्ण र बताने के लिए मुझे 'रे' या 'आर' कहना पड़े। उर्दू की तरह जीम, ज़े, ज़ाल, ज़ो, ज़्वाद सब ज के लिए या अंगरेज़ी की तरह सी, के, सी एच् सब क के लिए न होकर एक ध्वनि का परिचायक एक ही व्यंजन होता है। इसमें अंगरेज़ी की तरह एक अक्षर से दो ध्वनि का भी बोध नहीं होता जैसे 'सी' से स और क अथवा 'जी' से ग और ज। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसकी वर्णमाला में वर्गक्रम वैज्ञानिक और कार्यसाधक बना हुआ है। एक-एक स्थानविशेष के वर्गों में अल्प प्राण, महाप्राण, अघोष सघोष एक ही क्रम से रखे गए हैं। सब के उपरान्त 'नासिक या सह' आता है।

नागरी लिपि के सम्बन्ध में अन्ततः केवल इतना ही कहना समुचित होगा कि यह ब्राह्मी लिपि का सर्वोपरि परिष्कृत रूप है। बंगला और गुजराती लिपि भी सहोदरा ही हैं लेकिन उनमें संस्कार कम हुआ है। दूसरी तरफ उर्दू की बिलकुल विदेशी लिपि है। उसमें भी कुछ गुण हैं लेकिन राष्ट्रभाषा की दृष्टि से नहीं। उसमें समय व स्थान कम लगता है लेकिन न टाइप राइटर न शार्टहैंड कुछ नहीं बन सकता। कम्पोज़िंग में भी बहुत दिक्कत होती है। हिन्दी में तो लिनो टाइप भी बन गया है।

उपर्युक्त दुर्गुणों से युक्त यदि अंगरेज़ी विश्व व्यापिनी हो सकती है तो क्या हिन्दी भारत से भी गई ? और उर्दू तो, मेरा कोई अपशाप नहीं है, कभी वह स्थान पाही नहीं सकती।

इन संस्कारों के अलावा हिन्दी से मिलती जुलती बहुत सी भाषायें हैं। पंजाबी, गुजराती, मराठी, उड़िया, बंगला और सिन्धी भी एकही भाषा की सन्तति हैं। जैसा मैं पहले लिख चुका हूँ कि इन लिपियों में सर्वाधिक संस्कृत नागरी ही है और इनकी पारिवारिक समानता एक दूसरे के लिए ज्ञेय बना देती है। हिन्दी मध्य देशीय होने के कारण सर्वत्र समझी जाती है। ऐसे भी हिन्दी का अपना क्षेत्र बहुत बड़ा है। भारत की आधी से अधिक जनसंख्या हिन्दी का प्रयोग करती है। यदि अन्य उत्तर भारतीय भाषाओं की लिपि एक ही कर दी जाय तो कठिनाई और दूर हो जायगी। वर्णमाला सब की एक ही सी है केवल वर्णों के आकार में थोड़ा परिवर्तन करना होगा।

हिन्दी में केवल एक कठिनाई है कि इसमें लिंग भेद है, सो उर्दू में भी है। हिन्दी और उर्दू तो एक ही भाषा के दो रूप हैं जिनका नाम आप हिन्दुस्तानी या जो चाहें रखदें, परन्तु हैं एक ही। भाषा का या उनके व्याकरण का कोई प्रश्न इन दोनों के अन्तर्गत उपस्थित ही नहीं होता। केवल एक प्रश्न है और उसी में कई प्रकरण हैं—यथा (१) इसमें संस्कृत के तत्सम या तद्भव शब्दों का आधिक्य होगा, अथवा फारसी और अरबी के तत्सम शब्दों का बाहुल्य (२) इसमें किस सभ्यता के पोषक विचारों का प्राधान्य रहेगा, हिन्दू अथवा मुस्लिम (३) इसमें सन्दर्भ अरबी और फारसी साहित्य में से लिए जायेंगे या संस्कृत साहित्य से।

भारत में कम से कम बाइस या तेइस करोड़ आदमी संस्कृत से पैदा हुई भाषाओं को बोलते हैं, ५½ करोड़ आदमी द्राविड़ भाषायें बोलते हैं तथा करीब ३ करोड़ मनुष्य विदेशीय भाषाओं का प्रयोग करते हैं। यह देख कर स्वाभाविकतया यही कहना पड़ता है कि संस्कृत के शब्दों का ही प्रयोग किया जाय तो अधिक मनुष्य समझ सकेंगे। तद्भव शब्दों में प्रांतीय भेद है लेकिन पारिवारिक समानता है और स्वजातीयता है। दूसरे प्रश्न का भी उत्तर उसी आधार पर आश्रित है। हिन्दू सभ्यता को ही प्राधान्य देना होगा क्योंकि हिन्दू अधिक हैं। हमें 'गुलाब' की अपेक्षा कमल को अधिक महत्व देना होगा, हमें बुलबुल की अपेक्षा कोकिल को ही अधिक अपनाना होगा।

इसे कोई भी नकारे परन्तु मेरा तो यही ध्यान है कि हिन्दी और उर्दू एक ही भाषा हैं। उनमें भेद करने के लिए उपर्युक्त बातें एवं कुछ व्याकरण सम्बन्धी समस्यायें (मुश्तर्कात्) हैं। 'लफ़्ज़', 'अमीर' या 'गरीब' कहने में हमें कोई आपत्ति नहीं किन्तु 'अलफाज़', 'उमरा और गुरबा' में अवश्य है। हम 'मजलिस' और उनके 'अमीरों' को

पसन्द करते हैं किन्तु 'मजलिसे उमरा' तक हमारी पहुँच नहीं। यदि उर्दू अमीरों की मजलिस को अपना ले तो हम शायद उस उर्दू का ही दूसरा नामकरण 'हिन्दी' कर देंगे और वही भारत की राष्ट्रभाषा होगी। हिन्दी का साहित्य भी इन पिछले बीस वर्षों में इस योग्य हो गया है कि उसे राष्ट्रभाषा होने का गौरव प्राप्त हो सके।

मेरा तो व्यक्तिगत विचार ऐसा है कि संस्कृत गर्भित हिन्दी ही राष्ट्रभाषा हो सकेगी क्योंकि संस्कृत के शब्द सर्वत्र प्रयोज्य हैं। बंगाल और गुजरात के मुसलमान भी संस्कृत के शब्द प्रान्तीय भाषाओं में बहुत प्रयोग करते हैं। उर्दू तो उनके लिए केवल धार्मिक भाषा है। ग्रियर्सन साहब का कहना है कि व्यापार की दृष्टि से भारत जाने वालों को हिन्दी अवश्य सीखनी चाहिये। उसी प्रकार थामस साहब का कहना है कि संस्कृत ही राष्ट्रभाषा हो सकती है। यदि मैं उनमें समझौता करता हूँ कि संस्कृत मिश्रित हिन्दी राष्ट्रभाषा हो जाय तो क्या हानि है। क्योंकि बाज़ार वाली भाषा (हिन्दुस्तानी) अध्ययन, शिल्प, विज्ञान, सामाजिक, राजनीतिक एवं अध्यात्मिक विचार विनिमय के लिए उपयुक्त नहीं प्रमाणित होती।

हिन्दी जगत

सम्मेलन और बम्बई क्षेत्र

श्री मौलिचन्द्र शर्मा एम. ए. एल-एल. बी. प्रधान मन्त्री हिन्दी साहित्य सम्मेलन।

[१]

हिंदी साहित्य सम्मेलन के प्रधान मंत्री श्री मौलिचन्द्र शर्मा ने अपने बम्बई के दौरे के बाद वहाँ के हिंदी प्रचार के बारे में जो वक्तव्य दिया है वह हिंदी प्रेमियों के विचार और लाभ के लिए यहाँ दिया जा रहा है।

"बम्बई जाने पर मुझे ज्ञात हुआ कि हिंदी साहित्य सम्मेलन द्वारा किए जाने वाले राष्ट्रभाषा-संबंधी उद्योगों की जानकारी इधर कम हुई है, इसीलिए यह लिख रहा हूँ।

हिंदी साहित्य सम्मेलन केवल साहित्योन्नति का ही काम नहीं करता। उसके मुख्य कार्यों में है राष्ट्रभाषा हिन्दी और राष्ट्रलिपि देवनागरी का प्रचार करना। देशपूज्य महात्मा गांधी ने २७ वर्ष तक सम्मेलन को अपने नेतृत्व से शक्तिशाली बनाया और राष्ट्रभाषा-प्रचार के कार्य को प्रगति और बल दिया। अब वे सम्मेलन की सदस्यता से अलग रह कर हिन्दी की उसी प्रकार सेवा करेंगे जैसे कांग्रेस की सदस्यता से स्वतंत्र होकर वे कांग्रेस का नेतृत्व कर रहे हैं—ऐसा उनका मन्तव्य है। बड़ों का मन्तव्य सत्य होता है। उनकी यह इच्छा अवश्य पूर्ण होगी और उनके हाथों निश्चय ही हिन्दी का महान् कल्याण होगा।

इस कार्य के लिए सम्मेलन ने हिन्दी की परीक्षाओं का प्रयत्न किया है, जिनमें महाराष्ट्र और गुजरात से प्रायः २२,००० विद्यार्थी प्रतिवर्ष बैठते हैं। इस कार्य का संचालन सम्मेलन की वर्धा स्थित राष्ट्रभाषा प्रचार समिति करती है। इस प्रांत की जनता के बढ़ते हुए राष्ट्रभाषा प्रेम को देखते यह आवश्यक है कि इस कार्य का प्रस्तार समस्त प्रांत में किया जाय। इसके लिए प्रांत भर के साहित्यिक और सामाजिक नेताओं का साहाय्य अपेक्षित है और मैं यही साहाय्य माँगता हूँ।

दो प्रबल साधन

भाषा के दो प्रबल साधन हैं रेडियो और चलचित्र। इनमें से रेडियो सरकार के हाथ में है। जैसे इस सरकार से आशा होनी चाहिए वह राष्ट्रीयता की वाहिनी राष्ट्रभाषा के संहार का काम खुले तौर पर कर रही है। भारत के बीस करोड़ जनों की मातृभाषा और देश भर की मान्य राष्ट्रभाषा के लिए भारत के रेडियो पर कोई स्थान नहीं है। युद्ध के दिनों में दिल्ली से २५ भाषाओं में रेडियो द्वारा ब्राडकास्ट किए जाते रहे हैं परन्तु उन

२५ में भी हिन्दी की गिनती नहीं थी। हिन्दुस्तानी नाम से जिस भाषा में प्रचार होता है वह अरबी फारसी के गूढ़ और अज्ञात विदेशी शब्दों से लदी दुरूह कृत्रिम उर्दू है जिसे देश के ९० प्रतिशत से अधिक जन नहीं समझते। चार वर्ष से इसका विरोध हो रहा है। पिछले चौदह मास से हिन्दी के लेखकों और कवियों ने रेडियो का पूर्ण बहिष्कार कर रखा है। सहस्रों सार्वजनिक सभाएँ करके भारत सरकार से हिन्दी द्रोह की नीति त्यागने के लिए कहा जा चुका है। परन्तु अभी तक कोई ऐसा पग नहीं उठाया गया है जिससे यह भरोसा हो कि हिन्दी के साथ न्याय होगा। हमारे पिछले वर्ष के रेडियो भाषा विरोधी आन्दोलन की कहानी लम्बी है और वह मैं फिर लिखूँगा। परन्तु इतना बता देना चाहता हूँ कि अन्याय का प्याला अब भर चुका है। हिन्दी जगत जाग गया है और सरकारी अधिकारियों के पाँव काँप रहे हैं।

दो हिन्दी विरोधी

इस हिन्दी विरोधी नीति के दो कर्णधार है—मिस्टर बुखारी जो ब्राडकास्टिंग विभाग के डाइरेक्टर जनरल हैं और सर सुल्तान अहमद जो इस विभाग के उत्तरदायी सदस्य रहे हैं। सर सुल्तान तो भारत सरकार से अलग हो गये हैं। आशा करनी चाहिए कि उनका स्थान लेने वाले सज्जन उनकी नीति को बदलने में देर न करेंगे। परन्तु मिस्टर बुखारी जब तक हैं तब तक डर है कि हिन्दी विरोध की प्रणाली को विभाग की ओर से बराबर शक्ति मिलती रहेगी। बुखारी की सारी चतुराई इस बात में आती है कि सर्वजन सुलभ सरल हिन्दी को अपदस्थ कर अरबी निष्ठ विदेशी शब्द, ध्वनियों और भावों से लदी सर्वजन दुर्लभ उर्दू को "हिन्दुस्तानी" नाम की आड़ में छल से चलाया जाय। बम्बई प्रसार केन्द्र से जैसी 'हिन्दुस्तानी' का प्रसार होता रहा है उससे वहाँ की जनता परिचित ही होगी। इस तथा कथित हिन्दुस्तानी की कथा भी फिर किसी दिन सामने रखूँगा। इस समय तो केवल इतना कहना है कि सम्मेलन ने अपने वार्षिक अधिवेशन में जो दशहरे पर उदयपूर में हुआ था, यह मांग की है कि श्री बुखारी की, जिनका कर्मकाल अब समाप्त हो रहा है, इस पद पर पुनः नियुक्ति न की जाय। विभागीय नियमों के अनुसार भी सुनता हूँ कि एक व्यक्ति को पांच वर्ष के एक कर्मकाल के बाद फिर नियुक्ति नहीं मिलनी चाहिये। परन्तु उन्हें तो दो बार यह मिल चुकी है। और अपने १० वर्ष के इस लम्बे कर्मकाल में उन्होंने हिन्दी जगत और समस्त राष्ट्रवादी जनता को क्षुब्ध किया है। रेडियो का प्रयोग राष्ट्रीय प्रगतियों के विरुद्ध और पाकिस्तान के सदृश देश विघातक आन्दोलनों के पक्ष में किया गया। संगीत में भी भारतीय संस्कृति के आदर्शों को छोड़ एक संकर प्रणाली पर चलाने में विभाग की सारी शक्ति और विपुल धन राशि लगाई गई है जिसके विरुद्ध अभी

पिछले दिनों माननीय श्रीजयकर सदृश संगीतज्ञ ने स्पष्ट शब्दों में मिस्टर बुखारी के विरुद्ध एक संदेश उस संगीत सभा में भेजा था, जिसके अध्यक्ष स्वयं मिस्टर बुखारी बनाये गये थे। सुनता हूँ मिस्टर बुखारी फिर ५ वर्ष के कर्मकाल की नियुक्ति के लिए प्रयत्न कर रहे हैं। सम्मेलन की माँग है कि उन्हें हटाकर कोई ऐसा व्यक्ति उस स्थान पर नियुक्त किया जाय जो भारतीय भाषाओं, विशेषकर हिन्दी का विद्वान् और भारतीय संस्कृति, साहित्य और संगीत की शुद्ध अभिव्यक्ति की वास्तविक योगता रखता हो। मैं आशा करता हूँ इस माँग में बम्बई प्रान्त की पूर्ण सहमति हमें प्राप्त होगी और इसके लिए यहाँ प्रबल आन्दोलन किया जायगा।

चलचित्र

तीसरी बात है चलचित्रों की। वैसे तो फिल्मों में भारतीय संस्कृति की छीछालेदर सदा से होती आ रही है, परन्तु पिछले कुछ वर्षों से, जबसे कन्ट्रोल द्वारा प्राप्त अधिकारों को लेकर भारत सरकार ने फिल्में विशेष कर ऐसे लोगों को देनी आरम्भ करदी, जो इस व्यापार से अपरिचित थे और जिन्हें फिल्में मिलने का कारण शायद उनकी राजनीतिक या साम्प्रदायिक प्रवृत्तियाँ ही थीं। यह देखने में आ रहा है कि फिल्मों में अच्छी हिन्दी का प्रयोग घटता जा रहा है और वही रेडियो वाली अरबी-निष्ठ उर्दू बढ़ाई जा रही है और विशेष प्रकार के साम्प्रदायिक विचारों को सहारा दिया जा रहा है। जिस चित्र का कुछ भी सम्बन्ध इस्लामी जीवन से होता है उसकी भाषा गम्भीर उर्दू होती है परन्तु जिसमें हिन्दु जीवन, इतिहास और यहाँ तक कि धर्म का भी सम्बन्ध होता है वहाँ भाषा की उदात्तशैली लिखने की ओर ध्यान नहीं दिया जाता और हिन्दी के मधुर तथा उपयुक्त शब्दों के स्थान पर कर्णकटु विदेशी अरबी शब्दों का प्रयोग वहाँ भी किया जाता है। कभी सौभाग्य से ही शुद्ध हिन्दी सुनने को मिलती होगी। भारत सरकार के सूचना विभाग द्वारा प्रकाशित चित्रों की भाषा में तो हिन्दी हत्या का क्रम बराबर चलता ही है। राष्ट्रीय भावनाओं की परम वाहिनी हिन्दी जिस संस्कृति की पोषक है वह विदेशी सरकार को कैसे रुच सकती है? परन्तु यह समझ में नहीं आता कि चित्र निर्माता जो जनता के लिए चित्र बनाते हैं, जनभाषा हिन्दी को क्यों नहीं अपनाते? हिन्दी में गरीब की पुकार भूखों का क्रंदन और क्रांतिकारी गुहार है। वह भाषा, उसका साहित्य दृश्य काव्य के रूप में देश के सामने आ जाना चाहिए।

सम्मेलन ने इस कार्य के लिए एक समिति बनाने का निर्णय किया है। मैं भी बम्बई के कुछ निर्माताओं से मिला हूँ। हर्ष है कि मुझे उनमें सहयोगिनी भावनाओं को देख कर प्रोत्साहन मिला है। बम्बई भारत का हालीवुड है और जो शैली यहाँ से चलती है वह देश भर में व्यापक हो जाती हैं। अतः इस विषय में बम्बई के फिल्म निर्माताओं

तथा सामाजिक और साहित्यिक नेताओं पर विशेष दायित्व है। मैं साग्रह उनसे सहयोग के लिए अनुरोध करता हूँ।

प्रान्तीय संगठन

चौथी आवश्यकता है प्रान्तीय संगठन की, जो इस तथा ऐसे ही और कामों को चला सके। बम्बई में एक दृढ़ प्रांतीय सम्मेलन के साथ सम्बद्ध सैकड़ों संस्थाओं का जाल नगर-उपनगर में फैला देना चाहिए। बम्बई के लिए यह है हमारा आगामी वर्ष का कार्यक्रम। सांस्कृतिक विकास में, राष्ट्रीय महायज्ञ में महाराष्ट्र और गुजरात का यह भाग होगा। सदा की भाँति विश्वास है, यह प्रांत अपना भाग पूरा करेगा।

(२)

मैं उदयपूर से सीधे बम्बई चला गया। वहां जाने के लिए पर्याप्त कारण थे। वहाँ जाकर पहली बात जो सामने आई यह थी कि प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन वहाँ दो बन गये हैं। अतः पहला काम वहाँ यह हो गया कि इन दोनों को मिलाकर एक किया जाय। दोनों ओर से मुखियाओं में उदारता और हिन्दी हितों की रक्षा की प्राथमिक भावना सर्वोपरि थी। अतः इस कार्य में देर न लगी। श्री कन्हैयालाल मुन्शी तो वहाँ थे ही उनके अतिरिक्त बम्बई कारपोरेशन के सदस्य और हिन्दी के पुराने पत्रकार श्री काशी प्रसाद सिंह, मारवाड़ी चेम्बर आफ कामर्स के कर्णधार और अनेक सार्वजनिक संस्थाओं के धुरीण श्री उमाशंकर दीक्षित, भारत बैंक के ख्यातनामा मुख्य श्री अंशप्रसाद जैन, बम्बई के प्रसिद्ध व्यवसायी श्री राधाकृष्ण खेमका, श्री व्रजानन्द वर्मा आदि के सहयोग से यह मनोमालिन्य दूर हो गया। श्रीमती लीलावती मुन्शी ने इस काम में विशेष सहायता की। यदि कुछ व्यक्ति इस समय बम्बई से बाहर न रहे होते तो मेरे बम्बई छोड़ने के पहले ही दोनों सम्मेलनों का एकीकरण हो गया होता। उन लोगों के बम्बई लौटने पर विश्वास है कि शीघ्र ही यह कार्य समाप्त हो जायगा।

गुजराती और मराठी पत्रकार

दूसरा महत्वपूर्ण कार्य था गुजराती और महाराष्ट्रीय जनता में राष्ट्र भाषा हिन्दी के संदेश को पहुँचाने का। मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि इस कार्य में गुजराती और मराठी के प्रमुख पत्रकार सहयोग देने को तैयार हैं। हमने उनकी ओर कभी देखा ही नहीं। बम्बई प्रान्त से अगले वर्ष हम क्या चाहते हैं इस विषय पर मेरा लिखा लेख वहां के हिन्दी गुजराती तथा मराठी पत्रों ने बड़े उत्साह से प्रकाशित किया है। आगे के लिए भी उन्होंने लेख माँगे हैं। बम्बई के कार्यकर्ताओं ने उनके मराठी और गुजराती अनुवाद करके छापने के लिए सब सेवा अपने ऊपर ली है। इस प्रकार हिन्दी सम्मेलन विषयक प्रकाशन अब गुजरात महाराष्ट्र में पर्याप्त होगा। और वहाँ के जनमत पर प्रभाव पड़ेगा।

बम्बई और गुजरात में राष्ट्रभाषा प्रचार

राष्ट्रभाषा प्रचार के क्षेत्र में भी इन दिनों गड़बड़ पड़ गई है। बम्बई में श्री पेरीन बहन से राष्ट्रभाषा प्रचार का केन्द्र बिना किसी से पूछेताछे अलग कर द्वैलिपिक हिन्दुस्तानी प्रचार के काम में लगा दिया। प्रसन्नता की बात है कि इससे राष्ट्रभाषा के प्रचार के काम में कोई बाधा न पड़ पाई। श्री कान्तिलाल जी पहले ही की भांति और वैसी ही सफलता से प्रचार कार्य चला रहे हैं और अब आगे और भी बढ़ा सकेंगे। गुजराती में श्री जेठालालजी और श्री कमलेश जी वर्मा कार्य कर रहे हैं और उनका काम यथावत चल रहा है।

महाराष्ट्र में राष्ट्रभाषा प्रचार

महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने इसी प्रकार विधान की चिन्ता न कर निर्णय किया कि उनकी समिति सम्मेलन से स्वतंत्र होकर काम करेगी। मैंने तुरन्त भदन्तजी को तार से बम्बई बुलाया। सभापति मुन्शीजी तथा हम दोनों ने इस विषयपर विचार किया और भदन्त जी के साथ मैं पूना गया। वहाँ जानेपर यह स्पष्ट हो गया कि महाराष्ट्र समिति राष्ट्रभाषा का वही रूप मानती है जो सम्मेलन को मान्य है। वह फारसी लिपि को अनिवार्य बनाने के लिए तैयार नहीं है ! वह वही परीक्षा लेगी जो वर्धा समिति लेती है। केवल वह यह सब कुछ स्वतंत्र रूप से करना चाहती है, सम्मेलन की राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति वर्धा के अधीन रह कर नहीं। अर्थात् जहाँ आदर्श के विषय में भी कोई मतभेद नहीं है वहाँ भी कुछ लोग सम्मेलन के साथ न रह कर उसे दुर्बल करना चाहते हैं। अब प्रश्न आदर्शभेद का नहीं, सम्मेलन के संगठन को छिन्न-भिन्न करना ही मानो स्वयं एक कर्तव्य हो गया है। यह देख वास्तव में दुःख हुआ।

ऐसी दशा में इसके सिवा और कोई चारा न था कि एक नई समिति बना कर उसके ऊपर सम्मेलन के आधीन राष्ट्रभाषा प्रचार और परीक्षाओं का भार डाला जाता। जो समिति बनाई गई है उसमें राष्ट्रभाषा के बड़े-बड़े कालेजों के प्रिंसिपल, अध्यापक आदि पण्डित लोग हैं। उसके मन्त्रित्व का कार्य श्रीमती सोतुबाई काले ने सँभाला है। अभी पाँच व्यक्ति उसमें और बढ़ाए जासकेंगे।

पूना में ८ नवम्बर को एक सार्वजनिक सभा में हम लोगों के भाषण हुए। जनता ने हिंदी के सन्देश को उत्साह से ग्रहण किया और हमें बार-बार वहाँ आने के निमन्त्रण दिया। मुझे महाराष्ट्र से हिंदी के लिए बड़ी आशा हुई। वहाँ हिन्दी के प्रति वैसी श्रद्धा और भक्ति मैंने देखी जैसी भारत में स्वराज्य के प्रति।

इस प्रकार दो सप्ताह बंबई और पूना में लगा और मैंने यह जाना कि यदि बंबई प्रांत के हिन्दी सेवक मन लगा कर काम करें तो पश्चिम भारत में हिन्दी प्रचार बहुत तीव्र गति से बढ़ सकता है और उसे कोई शक्ति रोक नहीं सकती।

सम्मेलन को अब कार्यकर्ता और धन चाहिए। और यह चाहिए बहुत शीघ्र—तुरन्त !

भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी है

रावलपिण्डी में प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन

अधिवेशन की उद्घाटन-विधि हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रधान मंत्री श्री मौलिचन्द्र शर्मा द्वारा सम्पन्न कराई गई। अपने स्वागत-भाषण में आपने कहा कि 'तथाकथित पाकिस्तान की मध्यभूमि इस रावलपिंडी में पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का यह १६वाँ अधिवेशन भारत की अखण्डता में विश्वास न करने वालों को एक चुनौती है कि उनके साम्राज्य के बीचो-बीच रावलपिंडी वह स्थान है जहाँ की शिक्षा-संस्थाओं में हिन्दी माध्यम रूप से चमक रही है और जिसने आज अपने अंचल से हिन्दी की दुन्दुभि सारे पञ्जाब में एक बार फिर बड़े ज़ोर से निनादित की है।' पञ्जाब प्रान्त में बढ़ रहे हिंदी-प्रचार की सराहना करते हुए आपने आर्यसमाजों और सनातनधर्मसभाओं के उन नेताओं की आलोचना की जो अपने स्कूल कालेजों में शिक्षा और संस्कृति के प्रचार के बजाय लड़कों की भर्ती पर प्रतिबन्धस्पर्धा लगाते हैं। आपने कहा कि 'आर्य संस्कृति का प्रचार करनेवाले, आर्य भाषा के व्यवहार पर सर्वस्व निछावर करने वाले ये धर्मध्वज स्कूल और कालेजों में बैठ कर उर्दू और अंग्रेज़ी का प्रचार करते हैं और लड़कों की संख्या बढ़ाने की प्रतियोगिता में संस्कृति साहित्य और भाषा का ध्यान भूल जाते हैं।' आपने इस बात पर जोर दिया कि 'अब समय आ गया है जब सनातनधर्म सभा और आर्यसमाज इन दोनों संस्थाओं को मिल कर हिन्दी को माध्यम बनाने की घोषणा कर देनी चाहिए। ये दोनों संस्थाएँ मिल कर पञ्चवर्षीय कार्यक्रम बनाएँ और इन पाँच वर्षों में समस्त पञ्जाब में हिदी की विजय-वैजयन्ती लहरा दें। इस कार्य का प्रारम्भ शीघ्र-से-शीघ्र हो जाना चाहिये। इस कार्य की सफलता में ही पञ्जाब-प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की सफलता है।'

भाषण को जारी रखते हुए आपने घोषित किया :—

'मुगलों के जाने के बाद फारसी जैसे चली गई वैसेही अंगरेज़ी भी अंगरेज़ों के साथ जा रही है। भारत की राष्ट्रभाषा केवल हिंदी ही हो सकती है। इस लिए आनेवाले युग के साथ चलिए और हिंदी-आन्दोलन में अपना सहयोग दीजिए। हिन्दी हमारे स्वराज्य-प्राप्ति की प्रथम सीढ़ी है। हमें अपने स्वराज्य की साधना के लिए हिन्दी को बलवती बनाना है।'

स्वागताध्यक्ष का भाषण

स्वागताध्यक्ष श्री सीताराम साहनी ने साहित्यसेवियों और प्रतिनिधियों का स्वागत करते हुए कहा कि 'हमें अपने निज के काम-काज में मातृभाषा का व्यवहार करने से कोई

नहीं रोक सकता। परन्तु बार-बार प्रेरणा करने पर भी उर्दू की पराधीनता की बेड़ियाँ आज भी हमारे हाथों को जकड़े हुए हैं। इस जाति का दुर्भाग्य है कि जहाँ दूसरी जातियाँ बेड़ियों को ही नहीं, बेड़ियों वालों को भी निकाल फेंकने की धुन में हैं, वहाँ यह जाति किसी पहचानने वाले के न होने पर भी अनाथ बेड़ियों से अपने हाथों को इस विज्ञान के युग में भी जकड़े बैठी है। मेरा संकेत उस उर्दू भाषा की बेड़ियों की ओर है, जिसका आज कोई भी राज्य स्वामी नहीं।'

आपने आगे चल कर कहा कि 'कोई भी राष्ट्र एकता के धागे में बँधे बिना जीवित नहीं रह सकता। उस एकता के धागे में बाँधने के जहाँ और कई साधन हैं उनके साथ ही एक राष्ट्रभाषा का होना भी एक बहुत बड़ा साधन है। भारतवर्ष में हिन्दी बोलने और समझने वालों की संख्या उर्दू तथा अन्य भाषा वालों से कई गुना अधिक है। इसलिए राष्ट्रभाषा के नाते से हिन्दी को अपनाना हिन्दुओं का ही नहीं सब देशवासियों का कर्तव्य है।

सभापति का रक्तिम अभिनन्दन

स्वागताध्यक्ष के स्वागत-भाषण के बाद रावलपिंडी सम्मेलन की एक आश्चर्यजनक घटना सामने आई। काश्मीर से आये हुए प्रतिनिधियों ने अपना अभिनन्दन पढ़ कर सभापति को समर्पित किया। यह अभिनन्दन-पत्र अलक साहिबा विद्यालय के छात्रों द्वारा रक्त की स्याही से लिखा गया था और इसमें कहा गया था कि हम तन-मन-धन से हिन्दी पर प्राणार्पण करने को सदैव प्रस्तुत रहेंगे।

डाक विभाग पर दावा

अमृतसर के हिन्दी प्रचार मंडल के प्रधानमंत्री द्वारा पोस्ट आफिस पर ५००) हर्जाने का दावा सीनियर सबजज की अदालत में दायर कर दिया गया है, यह घोषणा करते हुए स्वागत-मंत्री ने बताया कि सारे पंजाब निवासियों को पोस्ट आफिस की हिन्दी-विरोधी नीति के लिये जोरदार संगठन करना चाहिए। अमृतसर की घटना के विषय में ज्ञात हुआ है कि पुस्तकों की एक पार्सल जिसमें हिन्दी में पता लिखा हुआ था, वापस कर दी गई थी। कहते हैं कि पी० एम० जी० ने इस घटना की शिकायत पर कोई ध्यान नहीं दिया। अंत में २९ नवम्बर को अमृतसर के प्रमुख वकीलों के उद्योग से गवर्नर जनरल तथा पोस्टमास्टर पर दावा दायर किया गया।

रेडियो-भाषी-सन्देश वहिष्कृत

जब विभिन्न नेताओं और साहित्यिकों के सन्देश पढ़े जा रहे थे तब लाहौर के रेडियो पर बोलने वाले एक सज्जन का संदेश 'विश्वबंधु' सम्पादक श्री माधव के ध्यान दिलाने पर सभापति की आज्ञा से सूची से वहिष्कृत कर दिया गया।

सभापति के भाषण

हिन्दुस्तान की सुप्रसिद्ध फर्म अमृतधारा के संचालक पं० ठाकुरदत्त शर्मा इस अधिवेशन के मनोनीत सभापति थे। अपने भाषण में पंजाब के हिन्दी आन्दोलन की चर्चा करते हुए आपने कहा, पंजाब की परिस्थिति कुछ विचित्र है। यहाँ बहुत काल तक उर्दू का युग रहा। इस काल में हिन्दू भी फारसी और अरबी भाषा में विद्वान होने में अपना गौरव समझते थे। इस युग में पर्याप्त काल व्यतीत हुआ, जिस समय पंजाब केसरी श्री लाजपतराय जी ने दिल्ली में हिन्दी के पक्ष में एक धुआँधार भाषण दिया था उस समय वह स्वयं हिन्दी न जानते थे। वह अरबी फारसी का ही अध्ययन करते थे। परन्तु हिन्दी को अपनी संस्कृति और अपने धर्म के लिए अत्यावश्यक मान कर उन्होंने हिन्दी का ज्ञान उपलब्ध करना प्रारम्भ कर दिया था। अब भी बहुत से हिन्दू अपने पुत्रों को उर्दू में ही शिक्षा देना अपना कर्तव्य समझते हैं। यह हमारा दुर्भाग्य है। हमें आज हिन्दीयुग का निर्माण करना है। युग का चित्र साहित्य में सुरक्षित रहता है। साहित्य में मानव समाज की सभ्यता, संस्कृति, कल्पना भावना, उत्कर्ष-अपकर्ष, बल और दुर्बलता सन्निहित रहती है। परन्तु साहित्य का आधार भाषा है। भाषा के बिना साहित्य पंगु है। आर्यावर्त की राष्ट्रभाषा होने का अधिकार केवल आर्यभाषा हिन्दी को ही प्राप्त है। आर्यभाषा हिन्दी अन्य सभी देशीय व प्रांतीय भाषाओं से अधिक पूर्ण है। भारत तथा अन्य देश के विद्वानों ने भी एक स्वर से देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता, पूर्णता एवं सुन्दरता को सराहा है और इसकी उपादेयता को स्वीकार किया है।

आर्यभाषा हिन्दी संस्कृत के निकटतम होने से सर्वथा पूर्ण है और अन्तर्प्रान्तीय भाषा होने का अधिकार रखती है। भारत की जनगणना को दृष्टि में रखते हुए हम यह कह सकते हैं कि १८ करोड़ की तो यह मातृभाषा है और शेष में से १२ करोड़ इसे भलीभांति समझ सकते हैं। बम्बई, कलकत्ता, मद्रास या कराची कहीं भी चले जाओ वहाँ के निवासी हिन्दी में सुगमतया बातचीत कर सकते हैं। बंगाल, मध्यप्रांत, गुजरात, दक्षिण और राजपूताना के मुसलमान भी उर्दू की अपेक्षा हिन्दी शब्दों को अधिक समझ सकते हैं। पंजाबी में भी संस्कृत शब्दों का बाहुल्य पाया जाता है। गुरुओं की वाणी भी संस्कृत-मिश्रित हिन्दी-सी ही है।

पंजाब में यह बड़ी भारी त्रुटि पाई जाती है कि यहाँ शिक्षारम्भ प्रायः उर्दू से होता है। पीछे कोई कितना भी ज्ञान हिन्दी का प्राप्त करे उसका अधिकतर अभ्यास उर्दू में ही रहता है। हमारा सर्व-प्रथम कर्तव्य यह है कि हम अपने बालकों का शिक्षारम्भ हिन्दी से करावें जैसे कि प्रांत की इस नगरी रावलपिंडी में हो रहा है। पंजाब सरकार की नीति सर्वदा हिन्दी-विरोधी रही है।

पंजाब सरकार की हिन्दी विरोधी नीति हमारे मार्ग में हिमालय पर्वत की उत्तुंग चोटी के समान कठिनाई बनकर खड़ी है। इसे पार करना इस सम्मेलन का ध्येय हैं। सरकार के प्रत्येक विभाग, शिक्षा, डाक और रेडियो में हिन्दी पर घोर अन्याय किया जा रहा है। सरकारी, बोर्ड और म्यूनिसिपल स्कूलों में हिन्दी की जो दुर्दशा की जा रही है उसे देखकर हृदय विदीर्ण हो जाता है। सरकारी तौर पर शिक्षा का माध्यम उर्दू ही माना गया है। माध्यम के विषय में सरकारी घोषणा सर्वथा भ्रम-मूलक है। उसे न तो शिक्षा विभाग ही ठीक करता है और न हम ठीक करवा सके हैं। डाक विभाग तो प्रायः प्रत्येक हिन्दी पते वाला पत्र मुर्दाघर भेज देता है और हिन्दी में लिखा मनीआर्डर प्रायः वापिस कर देता है। रेडियो में हिन्दुस्तानी के नाम पर अरबी फारसी मिश्रित उर्दू का ही प्रचार होता है। जब कभी भूकंप आता है तो कहा जाता है "फलां" "सूबे" में "जलजला" आया जब कहीं युद्ध होता है तो हमें "जंग" की "खबर" दी जाती है और जब हमारे नेता अनशन व्रत रखते हैं तो "इलजाम" लगाया जाता है कि "लीडराने वतन "फाका" कर रहें हैं।

पंजाब सरकार के हिन्दी-अप्रेम को दूर करने का एक साधन यह भी है कि नई बननेवाली धारासभा के निर्वाचन में प्रत्येक पंजाबी इस बात का ध्यान रखे कि वोट उन्हें दिया जावे जो हिन्दी, उर्दू दोनों भाषाभाषियों से न्याय करें। हिन्दी-विरोधियों को डाला गया एक-एक वोट अपनी मां हिन्दी को सूली पर चढ़ा देने के समान समझा जाना चाहिए।

दूसरा दिन

रेडियो की निन्दा : हिन्दी को
साम्प्रदायिक न बनाने की चेतावनी

दूसरे दिन १ दिसम्बर की कार्यवाही रेडियो विरोधी प्रस्ताव से प्रारम्भ हुई। श्री मौलिचन्द्र सभापतित्व कर रहे थे। श्री माधवजी ने रेडियो-विरोधी प्रस्ताव में जिन हिन्दी के साहित्यिकों ने सम्मेलन की मांग पर रेडियो से बहिष्कार कर रखा है उनको धन्यवाद दिया तथा सरकार ने हिन्दी जनमत की अवहेलना करके जो अब तक हिन्दी-विरोधी नीति अपना रखी है और खासकर श्री बुखारी जैसे हिन्दीक्षेत्रों में बदनाम व्यक्ति को वहाँ अभी तक बनाये रखा है। इसकी निन्दा की गई और हिन्दी जनता से प्रार्थना की गई कि वह हिन्दी लेखकों के इस बलिदान को अकारथ न जाने दे।

इस संबंध में हुए भाषणों का उपसंहार करते हुए श्री मौलिचन्द्र शर्मा ने कहा कि यद्यपि आन्दोलन की प्रगति उतनी तीव्र नहीं हुई जितनी कि हो सकती थी, फिर भी त्याग निष्फल नहीं जाता। बाहर से चाहे यह न दीखता हो, परन्तु सरकार का आसन डोल गया है और वह अब इस उद्योग में है कि किसी प्रकार मान रखकर कोई ऐसा रास्ता निकाल सके जिससे सम्मेलन की मांग का सन्तोष भी हो जाय। हमें अभी आशा तो नहीं बाँधनी चाहिए, परन्तु यदि हमारा आन्दोलन प्रगति और बल पकड़े और देशभर में गूँजे तो अवश्य सफलता मिलेगी।

आपने यह भी कहा कि यदि अमेरिका की भाँति यहाँ भी रेडियो की सरकारी 'मोनोपली' नहीं बना रखा गया होता तो हम आज ही अपना एक रेडियो स्टेशन हिन्दी में स्थापित करते और दुनिया देखती कि उर्दू के सरकारी रेडियो के मुकाबले में उसका क्या हाल होता। सरकार यदि इसे अपना ही विभाग बनाये रखना चाहती है तो उसे जनता की भाषा हिन्दी को उसमें प्रधान स्थान देना होगा। अन्यथा देश को कठोर मार्ग का अवलम्बन करना पड़ेगा।

आज के सम्मेलन में भाषण मार्के के हुए। लाहौर के श्री यज्ञ ने समाचार-पत्र-प्रदर्शिनी का उद्घाटन करते हुए पंजाब की हिन्दी प्रेमी जनता को चेतावनी दी कि कृपया हिन्दी को साम्प्रदायिक न बनाइए। हिन्दी केवल हिन्दुओं की ही भाषा नहीं है, वह मुसलमान, सिख, ईसाई सभी की भाषा है। सनातनधर्मी और आर्यसमाजी भाई इसे धार्मिक रूप न दें नहीं तो हम एक ऐतिहासिक गलती करेंगे जिसके लिए हमारी आगामी संतति हमें कोसेगी। साहित्य परिषद के सभापति पद से भाषण देते हुए श्री उदयशंकर भट्ट ने पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य के प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास पर संक्षेप में प्रकाश डाला। आपने कहा कि पंजाब हिन्दी की प्रचारभूमि भी है। यह तक्षशिला की प्राचीन पवित्र भूमि साहित्य के लिए बड़ी उर्वर है।

रात्रि को श्री हरिकृष्ण प्रेमी के सभापतित्व में कवि-सम्मेलन हुआ। लगभग चार घण्टे तक जनता तल्लीनता से कविताएँ सुनती रही।

तैतीसवीं स्थायी समिति का प्रथम अधिवेशन

स्थायी समिति की पहली बैठक शनिवार ३ कातिक सौर संवत् २००२, तारीख २० अक्तूबर १९४५ को ९॥ बजे दिन उदयपुर में विषय निर्वाचिनी समिति के पंडाल में हुई। कुल ८२ सदस्य उपस्थित थे।

१—नियमानुसार श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी जी ने सभापति का आसन ग्रहण किया।

२—पदाधिकारियों के चुनाव का प्रश्न उपस्थित किया गया।

निश्चय हुआ कि दोनों उपसभापतियों तथा प्रधान मंत्री का चुनाव यहाँ कर लिया जाय और शेष पदों की नियुक्ति श्री सभापति और दोनों कार्यवाहक उपसभापति प्रधान मंत्री की सहमति से करें।

सर्व सम्मति से माननीय श्री पुरुषोत्तमदास जी टंडन कार्यवाहक उपसभापति चुने गए।

श्री बालाभ्याली शर्मा ने उपसभापति के लिए श्री दुलारेलाल भार्गव के नाम का प्रस्ताव किया।

श्री लक्ष्मीनारायण दीक्षित ने समर्थन किया।

श्री उदयनारायण तिवारी ने उपसभापति के लिए श्री मुनिजिनविजय के नाम का प्रस्ताव किया।

श्री गंगाधर इंदूरकर ने समर्थन किया।

बहुमत से श्री मुनिजिनविजय जी उपसभापति चुने गए।

श्री गोपालप्रसाद व्यास ने प्रधान मंत्री पद के लिए श्री मौलिचन्द्र शर्मा का नाम उपस्थित किया।

श्री बलभद्रप्रसाद मिश्र ने समर्थन किया।

श्री बालाभ्याली शर्मा ने प्रधान मंत्री के लिए श्री सत्याचरण शास्त्री के नाम का प्रस्ताव किया।

श्री जगदेव 'शान्त' ने समर्थन किया।

बहुमत से श्री मौलिचन्द्र शर्मा प्रधान मंत्री चुने गए।

अन्य पदाधिकारियों का चुनाव निश्चय २ के अनुसार निम्न लिखित हैं।

प्रबन्ध मन्त्री—श्री पं० राम लखन शुक्ल।

साहित्य मन्त्री—श्री बाबू रामचन्द्र टण्डन।

संग्रह मन्त्री—डाक्टर सत्य प्रकाश।

अर्थ मन्त्री—श्री बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन (राजा मुनुवाँ)।
प्रचार मन्त्री—श्री सत्यदेव शास्त्री।
आय व्यय परीक्षक—राय रामचरण अग्रवाल।

स्थायी समिति के दूसरे अधिवेशन (२५ नवम्बर सन् ४५) में सम्मेलन की समितियों का संगठन—

कार्य समिति के सदस्य

१. सर्व श्री वाचस्पति पाठक २. डा० उदयनारायण तिवारी ३. बलभद्र प्रसाद मिश्र ४ श्री नारायण चतुर्वेदी ५ बाबूराम सक्सेना ६. जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल ८. शुकदेव चौबे ८. माखनलाल चतुर्वेदी, ९. अयोध्यानाथ शर्मा, १०. रामनारायण मिश्र, ११. कन्हैया लाल माणिक लाल मुन्शी, १२. माननीय पुरुषोत्तम दास जी टंडन, १३. मौलिचन्द शर्मा, १४. पुरुषोत्तमदास टंडन, [राजामुनुवाँ] १५. रामलखन शुक्ल, १६. डा० रामकुमार वर्मा, १७. रामचन्द टंडन, १८. सत्यदेव शास्त्री, १९. भदन्त आनन्द कौशल्यायन, २०. डाँ० सत्यप्रकाश।

सहित्य-समिति के सदस्य

१. सर्व श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी, २. माननीय श्री पुरुषोत्तम दास जी टंडन, ३. बल्देव प्रसाद जी उपाध्याय, ४. डा० रामकुमार वर्मा, ५. सत्याचरण शास्त्री, ७. श्रीमती सावित्री दुलारे लाल भार्गव, ८. श्री मौलिचन्द शर्मा, ९. रामचन्द्र टंडन, १०. रामलखन शुक्ल, ११. डाँ० सत्य प्रकाश, १२. डा० उदयनारायण तिवारी, १३. वाचस्पति पाठक, १४. श्री नारायण चतुर्वेदी, १५. आनन्द कौशल्यायन, १६. बलभद्र प्रसाद मिश्र १७. गिरजा दत्त शुक्ल, गिरीश।

संग्रह-समिति के सदस्य

१. श्री कन्हैयालाल माणिक लाल मुन्शी, २. माननीय पुरुषोत्तम दास टंडन, ३. मौलिचन्द्र शर्मा, ४. डा० रामकुमार वर्मा, ५. रामचन्द्र टंडन, ३. पुरुषोत्तमदास टंडन [राजामुनुवाँ] ७. रामलखन शुक्ल, ८. डाँ० सत्यप्रकाश, ९. जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल, १०. डा० उदयनारायण तिवारी, ११. ब्रजमोहन व्यास, १२. हीरालाल दुबे, १३. रामचरण मेहरोत्रा १४. वासुदेव उपाध्याय, १५. प्रभात मिश्र, १६. कन्हैयालाल मिश्र, १७. नीतीश्वर प्रसाद सिंह, १८. श्रीमती रानी टंडन, १९. वासुदेव शरण अग्रवाल, २०. अगरचन्द्र नाहटा २१. ललित मोहन बसु।

प्रचार समिति के सदस्य

१. सर्वश्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी, २. माननीय पुरुषोत्तमदास टंडन, ३. मौलिचन्द्र शर्मा, ४. रामलखन् शुक्ल, ५. रामचन्द्र टंडन, ६. डा० सत्यप्रकाश, ७. भदन्त आनन्द कौशल्यायन, ८. सत्यदेव शास्त्री, ९. जगदम्बा प्रसाद हितैषी १०. भागीरथी कनोडिया, ११. श्रीनाथ पाठक, १२. केदारनाथ मिश्र, १३. राजनाथ पाण्डेय, १४. महावीर प्रसाद शुक्ल, १५ पुत्तूलाल वर्मा, १६. शुकदेव चौबे, १७. जनार्दन राय नागर १८. शालिगराम जायसवाल, १९. नीतीश्वरप्रसाद सिंह २०. काशी प्रसाद तिवारी, २१. श्रीमती सुमित्रा कुमारी सिनहा

हिन्दी विश्व विद्यालय परिषद् के सदस्य

सर्व श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी, २६ रिजरोड बम्बई, २. पुरुषोत्तम दास जी टंडन, क्रास्थवेट रोड, प्रयाग ३. मौलिचन्द्र शर्मा ८ पार्क व्यू करोल बाग दिल्ली, ४. रामचन्द्र टंडन एम० ए० प्रयाग, ५. सत्यदेव शास्त्री, प्रयाग, ६. पं० रामलखनजी शुक्ल एम० ए० प्रयाग, ७. डा० सत्य प्रकाश जी एम० ए० प्रयाग, ८. आनन्द कौशल्यायन राष्ट्रभाषा प्रचार समित वर्धा, ९. पुरुषोत्तम दास टंडन (राजा मुनुवां) रानी मन्डी, प्रयाग १०. भूपेन्द्र पति त्रिपाठी व्याकरणाचार्य, अहियापुर प्रयाग, ११. राम बहोरी शुक्ल एम० ए० ट्रेनिंग कालेज, प्रयाग, १२. व्यथित हृदय, कटरा, प्रयाग, १३. पं० अमरनाथ जी झा एम० ए० जार्ज टाउन प्रयाग, १४. हर्ष देव मालवीय, प्रयाग। १५. शुकदेव चौबे एम० ए० प्रिंसिपल राधारमण इंटर कालेज प्रयाग, १६. सत्यनारायण पांडेय एम० ए० सनातन धर्म कालेज कानपुर, १७. काशीदत्त पांडेय राम भवन सिविल लाइंस इटावा, १८. बलभद्र प्रसाद मिश्र एम० ए० लीडर प्रेस, प्रयाग, १९. राजनाथ पांडेय एम.ए. सेंट एंड्रूज कालेज, गोरखपुर, २०. राय रामचरण अग्रवाल एम० ए० बड़ी कोठी दारागंज प्रयाग, २१. बालमुकुन्द गुप्त एम० ए० डी० ए० वी० कालेज कानपुर, २२. माखनलाल चतुर्वेदी संपादक 'कर्मवीर' खंडवा सी० पी०, २३. प्रेम नारायण शुक्ल डी० ए० वी० कालेज कानपुर, २४. डा० बाबूराम सक्सेना एम० ए० डी० लिट् प्रयाग, २५ केदार नाथ मिश्र हिन्दी साहित्य संघ कालपी, २६. हरिनारायण गौड़ हि० सां० मंडल नयागंज कानपुर, २७. काशी प्रसाद तिवारी, प्रयाग, २८. डा० धीरेन्द्र वर्मा एम० ए० डी० लिट्० प्रयाग, २९. महावीर प्रसाद श्रीवास्तव बी० ए० एल० टी० टैगोर टाउन प्रयाग। ३०. लक्ष्मी नारायण दीक्षित एम० ए० 'साहित्य रत्न' प्रयाग, ३१. किशोरीदास वाजेपयी कनखल यू० पी०, ३२. बाल कृष्ण पांडेय एम० ए० कान्य कुब्ज कालेज, कानपुर, ३३. 'साहित्य रत्न' बालाभ्यासी शर्मा गवर्नमेंट हाई, स्कूल उरई ३४. महेश चन्द्र अग्रवाल एम०

ए० प्रयाग विश्व विद्यालय, प्रयाग, ३५. चांद करण शारदा बी० ए० एल एल० बी० मदार दरवाजा अजमेर, ३६. प्रधान मंत्री, मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति तुकोगंज इन्दौर, ३७. रजिस्ट्रार, गुरूकुल विश्व विद्यालय कांगड़ी सहारनपुर, ३८- प्रिंसिपल, टीचर्स ट्रेनिंग कालेज काशी ३९. रजिस्ट्रार हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग,४०. प्रिंसिपल, हिन्दी विद्यापीठ महाविद्यालय उदयपुर, ४१. मुन्शी राम शर्मा एम० ए० डी० ए० वी० कालेज कानपुर, ४२. अयोध्या नाथ शर्मा एम० ए० सनातन धर्म कालेज कानपुर, ४३. अम्बिका प्रसाद उपाध्याय व्याकरणाचार्य ओरियंटल कालेज काशी, ४४. मन्त्री, बिहार प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन कदम कुंआ, पटना। ४५ डा० उदय नारायण तिवारी एम० ए० डी० लिट० प्रयाग, ४६. श्री नारायण चतुर्वेदी एम० ए० दारागंज प्रयाग, ४७. 'साहित्य रत्न' प्रभात मिश्र शास्त्री दारागंज, प्रयाग, ४८. डा० रामकुमार वर्मा एम० ए० पी० एच० डी० प्रयाग, ४९. 'साहित्य रत्न' राम प्रताप त्रिपाठी शास्त्री, प्रयाग, ५०. प्रो. दया शङ्कर जी दुबे एम० ए० एल० एल बी० प्रयाग, ५१. पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र प्रयाग, ५२. आयुर्वेद पंचानन जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, प्रयाग, ५३. वाचस्पति पाठक,लीडर प्रेस प्रयाग ५४. ओंकारनाथ मिश्रअग्रवाल विद्यालय इंटर कालेज प्रयाग, ५५. दुर्गा प्रसाद शर्मा प्रेममहा विद्यालय वृन्दावन, ५६. विश्वेश्वर जी, गुरुकुल विश्व विद्यालय वृन्द्रावन, ५७ वेद व्रत जी गुरुकुल कांगड़ी सहारन पुर,५८. जीवानन्द डोभाल ऋषि कुल ब्रह्मचर्याश्रम हरिद्वार, ५९. प्रेमनारायण माथुर, बनस्थली विद्यापीठ बनस्थली,६० भगवती प्रसाद पांथरी काशी विद्यापीठ काशी, ६१.डा० रामप्रसाद त्रिपाठी एम० ए० डी० एस सी० प्रयाग विश्व विद्यालय प्रयाग, ६२. चेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय एम० ए० प्रयाग विश्व विद्यालय प्रयाग, ६३. डा० सन्त प्रसाद जी टंडन एम ए० एस सी० पी० एच० डी० प्रयाग, ६४. सीता राम चतुर्वेदी एम० ए० टीचर्स ट्रेनिंग कालेज कोल्हुवा, बनारस, ६५. कृष्ण देव प्रसाद गौड़ एम० ए० एल० टी० डी०ए० वी० कालेज, काशी।

परीक्षा समिति के सदस्य

१. सर्व श्री पुरुषोत्तमदासजी टंडन, २. राम बहोरी शुक्ल एम० ए० ट्रेनिंग कालेज, प्रयाग, ३. मुन्शीराम शर्मा एम० ए० डी० ए० वी० कालेज, कानपुर, ४. राय बहादुर श्रीनारायण चतुर्वेदी एम० ए० इंस्पेक्टर आफ़ स्कूल्स आगरा डिवीज़न, ५. व्यथित हृदय कटरा प्रयाग, ६. प्रेम नारायण शुक्ल एम० ए० डी० ए० वी० कालेज कानपुर, ७. साहित्यरत्न प्रभात मिश्र शास्त्री दारागञ्ज, प्रयाग, ८. साहित्यरत्न उदय नारायण तिवारी एम० ए० डी० लिट् प्रयाग, ९. प्रो० रामलखन शुक्ल एम० ए० ईविंग क्रिश्चियन कालेज प्रयाग, १०. काशीदत्त पांडेय एम० ए० राम भवन, सिविल लाइन इटावा, ११. कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी २६ रिज रोड बंबई, १२. मौलिचन्द्र शर्मा ८ पार्क

न्यू करोल बाग दिल्ली, १३. रामचन्द्र टंडन एम० ए० प्रयाग, १४. आनन्द कौसल्यायन, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा, १५. डा० राम कुमार वर्मा एम० ए० पी० एच० डी०, प्रयाग।

स्वर्गीय कौशिक जी

द्विवेदी युग के प्रकाशमान नक्षत्र कौशिक जी अब संसार में नहीं रहे। स्वर्गीय प्रसाद जी की तरह उनकी इस असामयिक मृत्यु ने हिन्दी जगत पर जो वज्रपात किया उससे हम सब हिन्दी सेवी और राष्ट्रभाषा हिन्दी के उपासक अधीर हो उठे हैं। पं० विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक' ने अनवरत रूप में हिन्दी साहित्य की सेवा प्रायः ३०-३२ वर्ष तक की है। उनकी कहानियाँ यही नहीं कि हिन्दी पाठकों के लिए ही रोचक और साहित्य रस की साधक रही बल्कि अन्य प्रान्तीय भाषाओं के पाठक यहाँ तक कि विद्वान भी उनसे प्रभावित होते रहे। गुजराती साहित्य के प्रसिद्ध लेखक और अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इस वर्ष के सभापति कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी के मन में हिन्दी साहित्य के प्रति अनुराग पैदा करने में भी उनका योग रहा। साधारणतः हम कौशिक जी को सफल कहानीकार के ही रूप में जानते रहे। किन्तु अब उनके मरने के बाद यह भी खुला है कि 'चाँद' के श्री विजयानन्द दूबे भी हमारे यही कहानीकार कौशिक जी थे। 'चाँद' की दुबे जी की चिट्ठियों ने हिन्दी साहित्य में हास्य रस की सुरुचिपूर्ण-धारा चलाई थी। हिन्दी साहित्य के इने-गिने सभ्य और सुरुचिपूर्ण हास्य लेखकों में 'कौशिक' जी का स्थान सदा बना रहेगा। उनके लिखित उपन्यास, कहानी-संग्रह के अलावा दूसरी भाषाओं से अनूदित ग्रन्थ भी हैं।

'कौशिक' जी व्यवहार के मधुर, मिलनसार और पहली ही भेंट में अपने शील से स्थायी प्रभाव छोड़ने वाले व्यक्ति थे। जिन लोगों का इनसे व्यक्तिगत परिचय था वे अपने इस अभाव के लिए अधिक दिनों तक रोते रहेंगे इसमें सन्देह नहीं। प्रेमचन्द जी की भाँति साहित्यिक दलबन्दियों से पृथक इन्होंने भी सच्चे और विकसित साहित्यकार का जीवन बिताया। आलोचकों की प्रशंसा या निन्दा का प्रभाव इन पर बस उतना ही पड़ा जितना कि पहाड़ की चोटी पर पानी बरसने का पड़ता है। यह भी एक संयोग है कि प्रेमचन्द जी की ही तरह ये भी उर्दू से हिन्दी में आये थे। उर्दू में साहित्य रचना करना इनके लिए भी उसी तरह अस्वाभाविक और अनुपयुक्त लगी जैसी कि वह श्री प्रेमचन्द जी को लगी थी। उर्दू शायरी में इन्होंने अपना नाम 'राग़िब' रखा था।

इनका जन्म अंबाला की एक फौजी छावनी में हुआ था। किन्तु चार बरस की अवस्था ही में ये कानपूर आ गये। यहीं इनकी शिक्षा हुई। शरीर और बुद्धि का विकास भी यहीं हुआ। कानपूर के कर्मशील वातावरण ने इन्हें साहित्यक्षेत्र में भी सदैव कर्मशील

रखा। श्री मैथिली शरण गुप्त, लोचन प्रसाद पाण्डेय आदि साहित्यसेवियों की तरह इन्हें भी सरस्वती के सम्पादनकाल में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से प्रेरणा मिली थी। इनकी रचनात्मक प्रतिभा का विकास क्रमशः होता गया और स्वर्गीय प्रेमचन्द की मृत्यु के बाद लोगों का विचार भी ऐसा हो चला था कि प्रेमचंद की जगह आगे चल कर इन्हें ही प्राप्त होगी। इनकी कहानियाँ, चरित्र, चित्रण घटनाओं का क्रम विकास और संवाद की शैली, मनोवैज्ञानिक और व्यापक अध्ययन पर अवलम्बित हैं। सामाजिक कहानियों में प्रेम, कर्तव्य और संघर्ष के जो चित्र ये दे गये, युगों तक उनका प्रभाव हिन्दी साहित्य पर बना रहेगा। इनकी मृत्यु से दुखी होते हुए भी हम इन्हें इनके साहित्य में पाते रहेंगे। अपने साहित्य में ये अमर रहेंगे इसमें हमें पूरा विश्वास है। इनके दुःखी कुटुम्ब के प्रति समवेदना प्रकट करना हमारा—सारे हिन्दी संसार का कर्तव्य है। सब ओर से समवेदना के शब्द सुनाई पड़ रहे हैं। उनका वह लोक भी मंगलमय हो, हमारी यही कामना है।

"हिन्दी के श्रेष्ठ उपन्यासकार तथा कहानी लेखक श्री विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक के असामयिक निधन पर इस समिति को बहुत शोक हुआ। श्री कौशिक जी हिन्दी के मौलिक कलाकार थे और हास्य और व्यंग लिखने में सिद्ध हस्त थे। समिति उनके परिवार के प्रति हार्दिक समवेदना प्रकट करती है।" सम्मेलन की कार्य समिति ने समवेदना में यह प्रस्ताव स्वीकार किया है।

———

प्राप्ति स्वीकार

(लेखक—लक्ष्मीनारायण मिश्र)

श्री महावीरसिंह गहलौत, एम० ए० की तीन पुस्तकें। प्रकाशक—हिन्दी-साहित्य-मंदिर, घंटाघर, जोधपुर।

१—मारवाड़ राज्य की हिन्दी आज्ञायें—मूल्य ।)

इस छोटी पुस्तिका में श्री गहलौत जी ने जोधपुर राज्य की हिन्दी सेवाओं का ऐतिहासिक अनुक्रमणिका के अनुसार विवरण दिया है। उर्दू जो आज इस तरह बढ़ रही है उसका प्रधान कारण निज़ाम हैदराबाद का राजाश्रय है। हैदराबाद की जन-भाषायें तो मराठी, कन्नड़, तेलगू और भी कई उप भाषायें हैं। उर्दू वहाँ की जनता की भाषा तो कभी नहीं रही किन्तु उस रियासत की लाड़ली उर्दू अस्वाभाविक रीतिं से वहाँ की जनता के धन पर बढ़कर किसी दिन आधे एशिया को अपनी बाहों में बाँध लेने का सपना देख रही है। राजपूताना की सभी रियासतों की भाषा राजस्थानी हिन्दी है। किन्तु अपने दुर्भाग्य से अपने

उस क्षेत्र में भी हिन्दी का मान अब उर्दू से नीचे उतरता जा रहा है। जयपुर के पिछले राजा हिन्दी के नामी कवि और सुलेखक हो गये हैं, किन्तु वहाँ भी उर्दू की बाँदी हिन्दी को बनना पड़ रहा है। यही दशा राजपूताने की अन्य रियासतों की भी है। ऐसी स्थिति में जोधपूर राज्य का यह परम्परागत हिन्दी प्रेम और इस प्रेम का इस पुस्तक में ऐतिहासिक क्रम, समय के अनुकूल है। जोधपूर राज्य का लोक-भाषा के प्रति आदर राजपूताने की अन्य रियासतों के लिए यही नहीं कि अनुकरणीय है, इससे हिन्दी सेवकों को भी जो रियासतों में हिन्दी के अधिकार के लिए तत्पर हैं बल मिलेगा। पुस्तक के आरम्भ में श्री सम्पूर्णानन्द जी की भूमिका है।

२—उर्दू लिपि पर विचार—मूल्य ॥=)

उर्दू लिपि इस देश के लिए व्यावहारिक और वैज्ञानिक है या नहीं, विद्वान् लेखक ने भाषा-विज्ञान के गंभीर दृष्टिकोण से विचार कर उर्दू की लिपि को सर्वत्र अयोग्य सिद्ध किया है।—"प्रस्तुत पुस्तक में इसी उर्दू (फारसी) लिपि पर विचार किया गया है और विद्वानों के आधार पर यह दिखाया गया है कि क्या यह कभी भारत की राष्ट्र-लिपि होने का दम भर सकती है? टीका-टिप्पणी में प्रामाणिक ग्रन्थों तथा विदेशी लिपि विशारदों के मत ही विशेष रूप से उद्धृत कर—हमने विचारों को स्पष्ट किया है। सत्य और तथ्य को स्वच्छ रखने के लिए हमने केवल विदेशी तथा मुस्लिम विद्वानों के वाक्यों को ही उद्धृत किया है जिससे हठी लोगों को इस पुस्तक में साम्प्रदायिकता की गन्ध न मिले।" विद्वान् लेखक की भूमिका के इन शब्दों से कोई भी पाठक सहमत होगा। लेखक ने वास्तव में अपनी विवेचना में साम्प्रदायिक गन्ध कहीं नहीं आने दी है। बुद्धि के इस युग में लेखक ने निस्सन्देह बुद्धि और तर्क से ही काम लिया है किन्तु इस देश में देश की प्रकृति के प्रतिकूल जो लोग सब कुछ करने पर उतारू हैं क्या इस बारे में समझ से काम लेंगे? इसकी आशा तो अभी कम है, किन्तु सत्य कहने वाले भी तो तब तक बैठे नहीं रहेंगे। हम हिन्दी पाठकों के लिए तो यह पुस्तक नितान्त उपयोगी है।

जमाल दोहावली—प्रकाशक पुस्तक भवन काशी। मूल्य १)

प्रस्तुत पुस्तक अकबर कालीन मुसल्मान कवि जमालुद्दीन के दोहों का एक सटीक संग्रह है। श्री गहलौत जी ने जमाल के नीति भक्ति तथा कूट विषयक दोहों को काव्यांग क्रम में स्थिर कर दोहों का साहित्यिक अर्थ दिया है। जमाल कवि के कूट दोहे अभी तक ठीक अर्थ में न समझे जा सके और विद्वान सम्पादक से भी अभी कितने ही कूट दोहे बिना अर्थ जाने ही रह गये। इससे तो मालूम होता है कि यदि हिन्दी के विद्वानों ने एक साथ प्रयत्न नहीं किया तो फिर आने वाली पीढ़ी के लिए यह धन निरर्थक होगा।

कवि जमाल के कूट दोहे जो गणेश, सरस्वती, लक्ष्मी, शंकर और दुर्गा आदि देवी

देवताओं की स्तुति में हैं सम्भवतः संस्कृति कूट श्लोकों के आधार पर लिखे गये हैं। चित्र रचना संस्कृति की पद्धति रही है। जमाल ने चित्र पद्धति को इतनी सफलता से अपना लिया है, और चित्र के सभी संकेत संस्कृत वस्तुजगत के नामों पर ही निर्भर हैं। अच्छा हो विद्वान लेखक संस्कृत पण्डितों के संसर्ग में इन कूट दोहों का संस्कृत रूपान्तर करा कर इनका अर्थ करें। पुस्तक संग्रहणीय है। एक युग था जब जमाल की कोटि के मुसल्मान कवि संस्कृत के पण्डित थे। संस्कृत साहित्य के सिद्धान्तों पर हिन्दी के जायसी, रहीम आदि कवियों ने भी रचनायें की थी। किसी भी देश का साहित्य उस देश की परम्परा से एकदम छूट नहीं सकता। प्राणि जीवन के विकास में भी यही क्रम है। इन मुसल्मान कवियों ने इस देश में जन्म लेने का ऋण समझा था। आज की स्थिति दूसरी है किन्तु हमें आशा है सत्य बराबर दब नहीं सकता। संस्कृति के क्षेत्र में क्या हिन्दू और मुसल्मान सब को एक होना होगा। जमाल दोहावली इसका प्रमाण है।

ग़बन एक अध्ययन—ले० श्री प्रेमनारायण टण्डन एम० ए० साहित्यरत्न, प्रकाशक विद्यामन्दिर, रानीकटरा, लखनऊ।

श्री प्रेमनारायण टण्डन ने हिन्दी के आलोचना क्षेत्र में अपना निश्चित स्थान बना लिया है। विद्यार्थियों में आपकी आलोचना का अच्छा प्रचार है और सफल अध्यापक होने के नाते आपको विद्यार्थियों की आवश्यकताओं का भी ठीक अनुभव है।

प्रस्तुत पुस्तक स्वर्गीय प्रेमचन्द के प्रसिद्ध उपन्यास ग़बन की आलोचना है। आठ शीर्षकों में गबन और उसके लेखक के सम्बन्ध की सभी आवश्यक बातें :—कथावस्तु, समस्यानिर्देश, चरित्रों की गठन, कला और कल्पना के सभी धरातल स्पष्ट हो चुके हैं। लेखक अपने निवेदन में ही विद्यार्थियों के लिए लिखने का दावा करते हैं इसलिए सिद्धान्त की पेचीदगी में पड़ने की ज़रूरत नहीं। विद्यार्थियों को तो इस पुस्तक से लाभ होगा ही साधारण साहित्य प्रेमी का भी यह पुस्तक सहारा हो सकती है। विद्यार्थियों के दृष्टिकोण से लिखते समय लेखक को कुछ बन्धनों के भीतर रहना ही पड़ता है, अन्यथा स्वाभाविक कला और इच्छितप्रचार का अन्तर भी लेखक प्रेमचन्द की इस कृति में देख पाते। प्रेमचन्द पर जितना ही अधिक लिखा जाय हमारे साहित्य के लिए उपयोगी होगा। श्री प्रेमनारायण टण्डन अपनी आलोचनाओं से हिन्दी साहित्य को समृद्ध कर रहे हैं इसमें सन्देह नहीं।

———

जातक

[प्रथम तथा द्वितीय खण्ड]

अनुवादक : भदन्त आनन्द कौसल्यायन

इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् पं० जयचन्द्र विद्यालंकार का कथन है कि "विश्व के वाङ्मय में 'जातक' जन-साधारण की सब से पुरानी कहानियाँ हैं, मनोरंजकता, सुरुचि, सरलता, आडम्बरहीन सौन्दर्य और शिक्षाप्रद होने में उनका मुक़ाबला नहीं हो सकता। ये बच्चों के लिये सरल और आकर्षक, जवानों और बूढ़ों के लिये भी रुचिकर और विद्वानों के लिये प्राचीन भारत के जीवन का जीता-जागता चित्रण करने के कारण अत्यन्त मूल्यवान हैं।"

प्रथम खंड, पृष्ठ संख्या ५४०—२२; डिमाई साइज़; सजिल्द मूल्य ५)
द्वितीय खंड, पृष्ठ संख्या ४६४—२४ डिमाई साइज़; सजिल्द मूल्य ५)

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अभूतपूर्व प्रकाशन

प्रेमघन-सर्वस्व

(प्रथम भाग)

'दो शब्द'-लेखक, माननीय श्री पुरुषोत्तमदास जी टंडन
परिचय-लेखक, स्वर्गीय आचार्य पंडित रामचंद्र शुक्ल

आधुनिक हिन्दी के एक निर्माता, हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के भूतपूर्व सभापति, स्वर्गीय उपाध्याय पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की सम्पूर्ण कविताओं का विशाल संग्रह-ग्रंथ। हिन्दी में प्रथम और अपूर्व काव्य। लेखक के चित्रों से सुसज्जित और सजिल्द।

मूल्य ४॥)

साहित्य मंत्री—हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

रजिस्टर्ड नं० ए० ६२६

हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित कुछ पुस्तकें

प्रकाशक—श्रीरमाप्रसाद घिल्डियाल, हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।
मुद्रक : श्रीगिरिजाप्रसाद श्रीवास्तव, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग